सुलभ-साहित्य-माला

तेईसवाँ-चौबीसवाँ भाग

शरत्-साहित्य

विप्रदास

साथमें

सती और तरुणोंका विद्रोह

२३-२४

अनुवादक

धन्यकुमार जैन

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, बम्बई-४

मूल्य : सुलभ संस्करण, तीन रुपये
चौथी आवृत्ति, नवम्बर १९५२

प्रकाशक—यशोधर मोदी, मैनेजिंग डायरेक्टर,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, हीराबाग, गिरगाँव, बम्ब.
मुद्रक—ओमप्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी (बनारस) १०४०–

कैफियत

गल्पसाहित्यके अबतक १३ भाग निकल चुके हैं। प्रत्येक भागमें लगभग १५० पृष्ठ देनेका आश्वासन दिया गया था। कई भागोंमें तो यह संख्या १६ २७५ तक पहुँच गई है, पर १४० से कम किसी भी भागमें नहीं रही। केवल यह २१ २४ भाग ही ऐसा था जिसकी कि पृ० सं २२४ अर्थात् साधारणसे ५०-६० पेज कम थी और यह न केवल पाठकोंको बल्कि प्रकाशकोंको भी बराबर खटकती रही। अब इस आवृत्ति में विप्लवके साथ दो नई रचनाएँ और देकर उस कमीकी कुछ पूर्ति करनेका प्रयत्न किया गया है। अब इसकी पृ सं० २०६ हो जाती है जो साधारण-से थोड़ी ही कम है।

'सती' अपने ढंगकी बेजोड़ कहानी है और जहाँतक हम यह जानते हैं कि किसी भी संग्रहमें प्रकाशित नहीं हुई है।

'तरुणोंका विद्रोह' तरुणोंके हृदयतक पहुँचनेवाला उच्च कोटि का निबन्ध है और उस समयकी राजनीतिक विचार धाराओंपर प्रकाश डालता है।

१०-८-५९]

—प्रकाशक

विप्रदास

१

बलरामपुर गाँव में रथ-थानके[1] नीचे किसान-मजदूरोंकी एक बैठक हो गई। निकटवर्ती रेलवे-लाइनके कुलियोंके दलने भी—रविवारकी छुट्टीकी फुरसतमें—सभामें शामिल होकर उनकी इज्जत बढ़ाई और कलकत्तेसे कुछ नामी वक्ताओंने आकर आधुनिक कालके असाम्य और अमैत्रीके विरुद्ध तीव्र प्रतिवाद करते हुए व्याख्यानमय भाषण दिये। असंख्य प्रस्ताव स्वीकृत हुए और बादमें जुलूस निकाल कर 'वन्देमातरम्' की ध्वनियोंके साथ गाँवकी परिक्रमा करके उस दिनके सम्मिलनका कार्य समाप्त किया गया।

बलरामपुर समृद्ध गाँव है। उसमें छोटे-बड़े अनेक तालुकेदारों और धनी गृहस्थोंका वास है। एक छोरपर मुसलमान किसानोंका मुहल्ला है, और उसीके पास कुछ घर 'बागदी'[2] और 'दूले' लोगोंके हैं। भागीरथी नदीकी एक धारा बहुत समय पहले यहाँतक आकर रुक गई थी और उसने अब कोसभर जमीन अर्ध-वृत्ताकारमें घेरकर एक ताल-सा बना दिया है; उसीके किनारे इन लोगोंकी झोपड़ियाँ हैं। इस गाँवमें सबसे ज्यादा धनी व्यक्ति हैं महेश्वर मुखोपाध्याय। जमीन-जायदाद, और तिजारत आदिके देखते हुए उनकी सम्पत्ति और सम्पदा को यदि बहुत ज्यादा या जरूरतसे ज्यादा कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। उनकी विशाल अट्टालिकाके सामनेवाले रास्तेसे जब यह जुलूस लाल पताकाओं

---

१ 'रथतला' बँगला शब्द है जिसके मानी रथ-स्थान या रथ-थान है। इस जगहसे (आषाढ़ मासमें) जगन्नाथ या अन्य किसी देवताका रथ निकलता और फिर वापस आकर इसी जगह रखा रहता है।

२. 'बागदी' = बंगालकी एक अछूत जाति है जो ढोली-पालकी वगैरह ढोती है। इस लोग प्रायः बलिष्ठ, मधुपायी और साहसी होते हैं। 'दूले'—डोलेवाले और एक जाति-विशेष।

पर लिखित नाना प्रकारके नारों और किसान मजदूरोंके जोर-शोरसे जयजयकार वहन करता हुआ गुजर रहा था तब उस मकानकी दूसरी मंजिलपर बरामदेमें खड़ा हुआ एक दीर्घाकृति बलिष्ठ युवक नीचेके जुलूसको चुपचाप देख रहा था। अकस्मात् उसपर दृष्टि पड़ते ही विक्षुब्ध जनताका उत्तेजना हुआ कण्ठस्वर एक ही क्षणमें बुझ-सा गया। आगे-आगे चलनेवाले नेतृस्थानीय दो तीन व्यक्तियोंने इधर उधर देखकर बहुतसे लोगोंकी दृष्टिका खींचकर अनुसरण करके ऊपरकी ओर मुँह उठाते ही देखा कि युवक सामनेकी आड़में धीरे-धीरे गायब हो गया। तब लोगोंने पूछा—"कौन है?"

बहुतोंने दबे हुए गलेसे कहा—"विप्रदास बाबू!"

"कौन विप्रदास? गाँवका जमींदार?"

किसी एक जनेने कहा—"हाँ।"

नेता ठहरते नहीं, किसीकी देखा और परवाह नहीं करते, ओठोंके साथ बोले—'ओः—यह बात है!' और दूसरे ही क्षण सिरके ऊपर हाथ घुमाते हुए बुलन्द आवाजसे एक साथ चीत्कार करते बोले—"बोलो मजदूरसभाकी जय! बोलो किसान मजदूरोंकी जय! बोलो वन्देमातरम्!"

किन्तु कोई खास नतीजा नहीं निकला। अधिकतर लोग चुप रहे या मन ही मन बोले, और जिन दो-चार जनोंने आवाज निकाली उनके भी क्षीण कण्ठ ज्यादा ऊँचे न जा सके—उनकी आवाज विप्रदासके बरामदेको लाँघकर उनके कानोंतक पहुँचा या नहीं, समझमें नहीं आया। नेताओंने अपनेको अपमानित अनुभव किया, वे हँसकर बोले—"गाँवका एक मामूली जमींदार, उससे इतना डर! ये ही तो हमारे शत्रु हैं और हमारे शरीरका खून रात-दिन चूसा करते हैं। हमारी असली लड़ाई तो इन्हींके खिलाफ है। ये ही तो—"

प्रबल वाग्मितामें सहसा बाधा आ पड़ी। बहुतसे पैदल चलते हुए साथ साथ भी उनके तरफदारोंमें शामिल थे, किन्तु उनका प्रभाव क्षणमें मिट सा गया। भीड़मेंसे एक आदमीने आहिस्तासे कहा—"उनके भाई साहब हैं!"

"किनके?"

एक पचीस छब्बीस सालका युवक झंडा लेकर सबके आगे आगे चल रहा था, उसने मुड़कर कहा—"वे मेरे ही बड़े भाई हैं!"

असल मजेकी बात यह कि इसी युवकके आग्रह, उद्यम और रुपयेसे आजका

यह अनुष्ठान सफल हो पाया था।

"ओः—आपका! आप भी शायद यहाँके जमींदार हैं?"

युवक लज्जासे सिर झुकाये चुप रहा।

° ° ° °

२

विप्रदासने अपनी बैठकमें छोटे भाईको बुलाकर कहा—"कलका आयोजन बुरा नहीं था, बहुत-कुछ धोखा देनेवाला था। 'वार-क्राइ' (War cry = रणक्षेत्रके चीत्कार) भी खूब सुने हुए थे। यह तो मानना ही पड़ेगा कि गर्मी है।" द्विजदास चुपचाप खड़ा रहा।

विप्रदासने प्रश्न किया—"जुलूस क्या जानकर मेरे ही लिए मेरी नाकके सामनेसे निकाला गया था? मैं डर जाऊँ इसलिए?"

द्विजदासने शान्त स्वरसे जवाब दिया—"सिर्फ आपके लिए ही नहीं। जुलूस चाहे जिस रास्तेसे ले जाया जाय, डर जिनके लिए है वे तो डरेंगे ही भाई साहब!"

विप्रदास मुसकरा दिये। मुसकराहट बिलकुल अवज्ञापूर्ण थी। बोले—"तुम्हारे भाई साहब उस श्रेणीके आदमी नहीं हैं, यह बात तुम्हारे कुसंगियोंमेंसे बहुतोंको मालूम है। नहीं तो, उनकी जयध्वनि सुननेके लिए मुझे बरामदेमें जाकर कान लगाके खड़ा नहीं होना पड़ता। घरके भीतर बैठे-बैठे ही सुन सकता। तुम लोगोंके तरह-तरहके झंडे और बड़े-बड़े व्याख्यानोंसे मैं डरता नहीं। मैं खूब अच्छी तरह समझता हूँ, चमचमाते हुए बनावटी दाँतोंसे आदमीको सिर्फ बन्दर घुड़की ही दी जा सकती है, उनसे काट खानेका काम नहीं लिया जा सकता।"

जिस कारणसे कल बहुतसे लोगोंका कण्ठरोध हो गया था वह छिपा नहीं था। और उसीका इशारा पाकर द्विजदासने मन ही मन गहरी लज्जाका अनुभव किया। वह स्वभावतः शान्त प्रकृतिका आदमी है, और अपने बड़े भाईका अत्यन्त सम्मान करनेके कारण शायद और किसी प्रसंगमें वह चुप ही रहता; किन्तु जिस बातको लेकर उन्होंने ताना मारा उसका सहना कठिन था। फिर भी मधुरकंठसे ही उसने कहा—"भाई साहब, बनावटी दाँतोंसे जितना हो

सकता है उससे ज्यादा नहीं होनेका, यह बात हम लोग जानते हैं, सिर्फ आप लोग ही नहीं जानते कि संसारमें सचमुचके दाँतवाले लोग भी हैं, काट खानेका दिन आनेपर उनकी कमी नहीं रहती।'

ऐसे जवाबकी आशा नहीं थी। विप्रदास आश्चर्यसे उसके मुँहकी ओर देखकर बोले—"अच्छा!"

द्विजदास मजुमदारसे कोई एक बात कहने जा रहा था, किन्तु डरकर रुक गया। डर विप्रदासका नहीं था, अकस्मात् दरवाजेके बाहर माँका कंठस्वर सुनाई दिया—"तुम लोग दरवाजेपर परदा क्यों लटकाये रखते हो बताओ तो! धुआँ दूर किये बिना घरमें घुसना मुश्किल है। घुटनसे मर गई हूँ।"

द्विजदासने व्यस्त होकर परदा हटा दिया और विप्रदास कुरसी छोड़कर उठ खड़े हुए। एक प्रौढ़ विधवा महिला भीतर घुस आई। उमर पचाससे ऊपर पहुँच चुकी है किन्तु रूपकी सीमा नहीं। जरा कुछ दुबला है, मुँहपर संयमकी कठोरताकी छाप है, यह बात जरा लक्ष्य देते ही समझमें आ जाती है। छोटे लड़केकी ओर पूरी तरह पीठ करके बड़े लड़केसे बोलीं—'क्यों रे विप्र, सुना है कि एकादशीके बारेमें इस महीनेमें पत्रामें गड़बड़ी है। ऐसा तो कभी नहीं होता!'

विप्रदासने कहा—"होना तो नहीं चाहिए माँ।"

"तू स्मृतिरत्न पंडितजीको एक बार बुलवा तो सही। उनका क्या मत है सुन लूँ।"

विप्रदास जरा-सा हँसकर बोले—"उन्हें बुलवाये देता हूँ। पर उनके समझाने पर माँ तुम्हारे मनोतक एक बार जब कि बात पहुँच चुकी है, तब मैं जानता हूँ कि उन दोनों दिनोंमेंसे एक भी दिन तुम जलतक न छुओगी।'

माँ हँस ही बोलीं—"झूठ मूठ उपासे मरनेका क्या किसीको शौक है रे! पर उपाय क्या है! इसके करनेसे पुण्य नहीं न करनेसे अनन्त नरक है। क्यों रे, यह जो अखबारमें लिखा है कि कोई एक बड़े भारी पंडित कलकत्तेमें बड़ी अच्छी 'भागवत' की व्याख्या कर रहे हैं। एक बार उन्हें तो बुला देता, क्या करूँ, इस घरमें उनके चरणोंकी धूल पड़ सकती है!"

"तुम्हारी आज्ञा होते ही बुला देंगे माँ।"

"क्यों, मेरी आज्ञाकी ही क्या जरूरत है? तुम लोगोंको सुननेकी इच्छा नहीं होती? कब हुई थी कथा हमारे यहाँ —"

विप्रदासने हँसकर माथा खुजलाते हुए कहा—"उसे तो अभी तीन महीने भी नहीं हुए माँ।"

माँने आश्चर्यके साथ कहा—"कुल तीन ही महीने! पर तीन महीने ही क्या कम हैं? खैर, जो भी हो बेटा अबकी बिना करे काम नहीं चलेगा। मेरी दोनों समधिनोंने चिट्ठी लिखी है। कैलाशनाथ मानसरोवरके दर्शनके लिए अबकी मैं अवश्य जाऊँगी।"

विप्रदासने हाथ जोड़कर कहा—"दुहाई है माँ यही आज्ञा तुम मत करना। तुम्हारे दोनों बेटोंमेंसे बगैर एकके साथ गये मामूली भरोसे तुम्हें तिब्बत नहीं भेज सकूँगा। और सब तरहकी हानि सह सकता हूँ, पर माँको खोनेकी हानि नहीं सह सकता।"

माकी दोनों आँखें भर आईं, बोलीं,—"डर मत रे, कैलासकी यात्रामें मरण हो ऐसा पुण्यका जोर तेरी माँका नहीं है। मैं फिर लौट आऊँगी। पर बेटोंमेंसे तू तो मेरे साथ जा नहीं सकेगा। तुझपर ही इतनी बड़ी घर-गिरस्तीका सारा भार है। और, मेरे पीछे जो बेटा खड़ा है उसे साथ लेकर तो मैं बैकुंठ भी जानेको राजी नहीं। ब्राह्मणका लड़का होकर सन्ध्या-पूजा तो बहुत दिनोंसे ही छोड़ रखी है, सुना है कि कलकत्तेमें भक्ष्य-अभक्ष्यका भी कुछ विचार नहीं करता। और फिर कल क्या किया है सुना है?"

विप्रदास भले आदमी जैसा मुँह बनाकर बोला—"और क्या किया! मैंने तो कुछ नहीं सुना।"

माँने कहा—"जरूर सुना है। बड़ी आँखोंको धोखा दे सके इतनी बुद्धि इस लड़केमें नहीं है। पर इसका तू कोई प्रतिकार कर। यह हमारा ही खायेगा पहिनेगा और हमारे ही रुपयोंसे कलकत्तेसे आदमी बुलाकर हमारी रिआयाको उभाड़नेका षड्यंत्र करेगा! इसका कलकत्तेका रास्ता तू बन्द कर दे।"

विप्रदासने आश्चर्यके साथ कहा—"यह कैसी बात है माँ, पढ़ाईका रास्ता बन्द कर दूँ? पढ़ेगा नहीं?"

माँने कहा—"जरूरत क्या है? मेरे ससुरके स्कूलके छात्रोंने कल एक साथ दल बाँधकर आकर कहा कि विदेशी शिक्षासे देशका सर्वनाश हो रहा है,

सकता है उससे ज्यादा नहीं होनेका यह बात हम लोग जानते हैं सिर्फ आप लोग ही नहीं जानते कि संसारमें सचमुचके होनेवाले लोग भी हैं, काट खानेका दिन आनेपर उनकी कमी नहीं रहती।"

ऐसे जवाबकी आशा नहीं थी। विप्रदास आश्चर्यसे उनके मुँहकी ओर देखकर बोले—"अच्छा!"

द्विजदास प्रत्युत्तरमें कोई एक बात कहने जा रहा था किन्तु डरकर रुक गया। डर विप्रदासका नहीं था, अकस्मात् दरवाजेके बाहर माँका कंठस्वर सुनाई दिया—"तुम लोग दरवाजेपर परदा क्यों लटकाये रखते हो बताओ तो! धुआँ-धुआँ किये बिना घरमें घुसना मुश्किल है। घर-गिरस्ती सिगारके धुएँसे भर गई है।"

द्विजदासने व्यस्त होकर परदा हटा दिया, और विप्रदास कुरसी छोड़कर उठ खड़े हुए। एक प्रौढ़ विधवा महिला भीतर घुस आईं। उमर पचासके ऊपर पहुँच चुकी है, किन्तु रूपकी सीमा नहीं। कद कुछ छोटा है, मुँहपर वैधव्यकी कठोरताकी छाप है यह बात जरा ध्यान देते ही समझमें आ जाती है। छोटे लड़केकी ओर पूरी तरह पीठ करके बड़े लड़केसे बोलीं—"क्यों रे विपिन, सुना है कि एकादशीके बारेमें इस महीनेमें पत्रामें गड़बड़ी है। ऐसा तो कभी नहीं होता!"

विप्रदासने कहा—"होना तो नहीं चाहिए माँ।"

"तू स्मृतिरत्न पंडितजीसे एक बार पुछवा तो सही। उनका क्या मत है सुन लूँ।"

विप्रदास जरा-सा हँसकर बोले—"सो पुछवाये देता हूँ। पर उनकी व्यवस्थाके क्रम माँ तुम्हारे अनोखेपन एक बार जब कि यहाँ पहुँच चुकी है, तब मैं जानता हूँ कि उन दोनों तिथियोंमेंसे एक भी दिन तुम जलतक न छुओगी।"

माँ हँस दी, बोलीं—"झूठ-मूठ उपवासे मरनेका क्या किसीको शौक है रे! पर उपाय क्या है! इसके करनेसे पुण्य नहीं न करनेसे अनन्त नरक है। क्यों रे, यह सच है न? अखबारमें लिखा है कि कोई एक बड़े भारी पंडित कलकत्तेमें बड़ी अच्छी 'भागवत' की व्याख्या कर रहे हैं। एक बार उन्हें दरिद्रपावन तो जरा देख क्या करनेसे इस घरमें उनके चरणोंकी धूल पड़ सकती है!"

"तुम्हारी आज्ञा होते ही जरा देखूँगा माँ।"

"क्यों, मेरी आज्ञाकी ही क्या जरूरत है ? तुम लोगोंको सुननेकी इच्छा नहीं होती ? कब हुई थी कथा हमारे यहाँ —"

विप्रदासने हँसकर बाधा पहुँचाते हुए कहा—"उसे तो अभी तीन महीने भी नहीं हुए माँ।"

माँने आश्चर्यके साथ कहा—"कुल तीन ही महीने ? पर तीन महीने ही क्या कम हैं ? खैर, जो भी हो बेटा, अबकी बिना कहे काम नहीं चलेगा। मेरी दोनों मामियोंने चिट्ठी लिखी है। कैलासनाथ-मानसरोवरके दर्शनके लिए अबकी मैं अवश्य जाऊँगी।"

विप्रदासने हाथ जोड़कर कहा—"दुहाई है माँ, यही आज्ञा तुम मत करना। तुम्हारे दोनों बेटोंमेंसे बगैर एकके साथ गये साथियोंके भरोसे तुम्हें तिब्बत नहीं भेज सकूँगा। और सब तरहकी हानि सह सकता हूँ, पर माँको खोनेकी हानि नहीं सह सकता।"

माँकी दोनों आँखें भर आईं, बोलीं,—"डर मत रे, कैलासकी यात्रामें मरण हो ऐसा पुण्यका जोर तेरी माका नहीं है। मैं फिर लौट आऊँगी। पर बेटोंमेंसे तू तो मेरे साथ जा नहीं सकेगा। तुझपर ही इतनी बड़ी घर-गिरस्तीका सारा भार है। और, मेरे पीछे जो खड़ा है उसे साथ लेकर तो मैं बैकुंठ भी जानेको राजी नहीं। ब्राह्मणका लड़का होकर सन्ध्या पूजा तो बहुत दिनोंसे ही छोड़ रखी है, सुना है कि कलकत्तेमें भक्ष्य-अभक्ष्यका भी कुछ विचार नहीं करता। और फिर कल क्या किया है सुना है ?"

विप्रदास भले आदमी जैसा मुँह बनाकर बोला—"और क्या किया ? मैंने तो कुछ नहीं सुना।"

माँने कहा—"जरूर सुना है। तेरी आँखोंको धोखा दे सके इतनी बुद्धि इस लड़केमें नहीं है। पर इसका तू कोई प्रतिकार कर। यह हमारा ही खायेगा पहिनेगा और हमारे ही रुपयोंसे कलकत्तेसे आदमी बुलाकर हमारी रिआयाको उभाड़नेका षड्यंत्र करेगा ? इसका कलकत्तेका खर्चा तू बन्द कर दे।"

विप्रदासने आश्चर्यके साथ कहा—"यह कैसी बात है माँ, पढ़ाईका खर्च बन्द कर दूँ ? पढ़ेगा नहीं ?"

माँने कहा—"जरूरत क्या है ? मेरे ससुरके स्कूलके छात्रोंने जब एक साथ दल बाँधकर आकर कहा कि विदेशी शिक्षासे देशका सर्वनाश हो रहा है,

सकता है उससे ज्यादा नहीं होनेका यह बात हम लोग जानते हैं, सिर्फ आप लोग ही नहीं जानते कि संसारमें सचमुचके रोनेवाले लोग भी हैं, काट खानेका दिन आनेपर उनकी कमी नहीं रहती।"

ऐसे जवाबकी आशा नहीं थी। विप्रदास आश्चर्यसे उसके मुँहकी ओर देखकर बोले— अच्छा!"

द्विजदास प्रत्युत्तरमें कोई एक बात कहने जा रहा था, किन्तु डरकर रुक गया। डर विप्रदासका नहीं था, अकस्मात् दरवाजेके बाहर माँका कंठस्वर सुनाई दिया—"तुम लोग दरवाजेपर परदा क्यों लटकाये रखते हो बताओ तो! छुआ छूत किये बिना घरमें घुसना मुश्किल है। घर-गिरस्ती विलायती फैशनसे भर गई है।"

द्विजदासने व्यस्त होकर परदा हटा दिया, और विप्रदास कुरसी छोड़कर उठ खड़े हुए। एक प्रौढ़ विधवा महिला भीतर घुस आईं। उमर चालीससे ऊपर पहुँच चुकी है, किन्तु रूपकी सीमा नहीं। जरा कुछ कृश हैं, मुँहपर वैधव्यकी कठोरताकी छाप है, यह बात जरा ध्यान देते ही समझमें आ जाती है। छोटे लड़केकी ओर पूरी तरह पीठ करके बड़े लड़केसे बोलीं—'क्यों रे विपिन, सुना है कि एकादशीके बारेमें इस महीनेमें [illegible] पड़ गयी है। ऐसा तो कभी नहीं देखा!"

विप्रदासने कहा—"होना तो नहीं चाहिए माँ!"

"तू स्मृतिरत्न पंडितजीको एक बार बुलवा तो सही। उनका क्या मत है सुन लूँ।"

विप्रदास जरा-सा हँसकर बोले—"सो बुलवाये देता हूँ। पर उनके व्याख्यानसे क्या माँ, तुम्हारे कानोंतक एक बार जब कि बात पहुँच चुकी है, तब मैं जानता हूँ कि उन दोनों दिनोंमेंसे एक भी दिन तुम अन्नजल न छुओगी।"

माँ हँस दी, बोलीं—"झूठ-मूठ उपवास करनेका क्या किसीको शौक है रे! पर उपाय क्या है! इसका करनेसे पुण्य नहीं, न करनेसे अनन्त नरक है। क्यों रे, यह सब छोड़ो भी, अखबारमें लिखा है कि कोई एक बड़े भारी पंडित कलकत्तेमें यहीं अच्छी 'भागवत' की व्याख्या कर रहे हैं। एक दफे परिचय तो करना देख, क्या करनेसे इस घरमें उनके चरणोंकी धूल पड़ सकती है!"

"तुम्हारी आज्ञा होते ही कोशिश करके देखूँगा माँ।"

"क्यों, मेरी आज्ञाकी ही क्या जरूरत है? तुम लोगोंको सुननेकी इच्छा नहीं होती? कब हुई थी कथा हमारे यहाँ —"

विप्रदासने हँसकर बाधा पहुँचाते हुए कहा—"उसे तो अभी तीन महीने भी नहीं हुए माँ।"

माँने आश्चर्यके साथ कहा—"कुल तीन ही महीने? पर तीन महीने ही क्या कम है? खैर, जो भी हो बेटा, अबकी बिना कहे काम नहीं चलेगा। मेरी दोनों भाभियोंने चिट्ठी लिखी है। कैलासनाथ मानसरोवरके दर्शनके लिए अबकी मैं अवश्य जाऊँगी।"

विप्रदासने हाथ जोड़कर कहा—"दुहाई है माँ, यही आज्ञा तुम मत करना। तुम्हारे दोनों बेटोंमेंसे बगैर एकके साथ गये भाभियोंके भरोसे तुम्हें हिम्मत नहीं भेज सकूँगा। और सब तरहकी हानि सह सकता हूँ पर माँको खोनेकी हानि नहीं सह सकता।"

माँकी दोनों आँखें भर आईं, बोलीं,—"डर मत रे, कैलासकी यात्रामें मरण हो ऐसा पुण्य और तेरी माँका नहीं है। मैं फिर लौट आऊँगी। पर बेटोंमेंसे तू तो मेरे साथ जा नहीं सकेगा। तुझपर ही इतनी बड़ी घर-गिरस्तीका सारा भार है। और, मेरे पीछे जो बेटा खड़ा है उसे साथ लेकर तो मैं बैकुंठ भी जानेको राजी नहीं। ब्राह्मणका लड़का होकर सन्ध्या पूजा तो बहुत दिनोंसे ही छोड़ रखी है, सुना है कि कलकत्तेमें भक्ष्य-अभक्ष्यका भी कुछ विचार नहीं करता। और फिर कल क्या किया है सुना है?"

विप्रदास भले आदमी जैसा मुँह बनाकर बोला—"और क्या किया? मैंने तो कुछ नहीं सुना।"

माँने कहा—'जरूर सुना है। तेरी आँखोंको धोखा दे सके इतनी बुद्धि इस लड़केमें नहीं है। पर इसका तू कोई प्रतिकार कर। यह हमारा ही खायेगा पहिनेगा और हमारे ही रुपयोंसे कलकत्तेसे आदमी बुलाकर हमारी रिआयाको उभाड़नेका षड्यंत्र करेगा? इसका कलकत्तेका खर्चा तू बन्द कर दे।"

विप्रदासने आश्चर्यके साथ कहा—"यह कैसी बात है माँ, पढ़ाईका खर्च बन्द कर दूँ? पढ़ेगा नहीं?"

माँने कहा—'जरूरत क्या है? मेरे ससुरके स्कूलके छात्रोंने कल एक साथ दल बाँधकर आकर कहा कि विदेशी शिक्षासे देशका सर्वनाश हो रहा है,

तब उन्हें तू मारने दौड़ा था। और अब जब कि तेरा अपना छोटा भाई ठीक वही बात कहता डोलता है, तो तू उसका कोई प्रतिकार नहीं करेगा! यह तेरा कैसा न्याय है!"

विप्रदासने मुसकराते हुए कहा—"उसमें एक कारण है माँ। स्कूलके इम्तहानमें प्रमोशन न पानेपर भी वैसी शिकायत करना मुझसे नहीं सहा जाता, मगर द्विजूकी तरह एम० ए० पास करके विलायती शिक्षाको कोई चाहे जितना ही कोसता फिरे, मुझे उसकी परवाह नहीं।"

मैंने कहा—"अगर यह? हमारे ही रुपयोंसे हमारी ही रैयतको भड़काना!"

द्विजदास अबतक चुप था, उसने एक भी बातका जवाब न दिया था। अबकी उसने जवाब दिया, बोला—"अपनी सभा-समितिके लिए तुम लोगोंकी इस्टेटका एक पैसा भी मैंने नहीं लिया है।"

माँने कमरेमें घुसनेके बाद एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा था, और अब भी नहीं देखा। विप्रदाससे पूछने लगीं—"तो इस अभागेसे पूछ तो कि रुपये आते कहाँसे? रोजगार कर रहा है?'

ठीक इसी समय घरके बाहरसे घुँघरुओंकी झुन-झुन आवाज हुई। विप्रदासने कान लगाके सुनकर कहा—"बाहरसे आवाज आ रहा है न। तुम्हारे घरकी बहू ही अगर रुपयेकी मदद दे, तो उसे कौन रोक सकता है बताओ माँ?"

माँको याद आ गया। बोलीं—"हाँ, यही बात है। कलियुग ही काम है यह। बड़े आदमीकी लड़की बापकी जमींदारीसे सालाना छै हजार रुपये पाती है, इसका तो मुझे खयाल ही नहीं था। जरा देर स्थिर रहकर फिर कहने लगीं—"तेरी सगाई करने जब समधी साहब खुद यहाँ आये, तभी मैंने तेरे बापूजीसे कहा था कि राय घरानेकी लड़की घरमें लानेकी जरूरत नहीं। मनाथ राय उन्हींके खानदानका तो था जो विलायत जाकर मेम ब्याह लाया था। वे लोग क्या नहीं कर सकते! उनके लिए दुनियामें असाध्य क्या है?"

विप्रदास उसी तरह मुसकराता हुआ चुप रहा। वह जानता था कि इसीके मायकेसे यह उलाहना कभी जानेका नहीं। उनके मायकेके खानदानका कोई मनाथ राय मेम ब्याह लाया था उस बातको माँ अबतक भूल नहीं सकी हैं।

जरासी चुप रहकर वे फिर कहने लगीं—"अच्छा रहने दे। बाबा कैलास नाथ अब मुझे खींच रहे हैं, उनके दर्शन करके लौट आऊँ, इसके बाद इसका

इन्तजाम करूँगी।" इतना कहकर वे वहाँसे चली गईं।

विप्रदासने कहा—"क्यों रे द्विजू, माँको रोक जा सकेगा? उन्होंने जब जानेकी ठान ली है तब भरोसा नहीं कि उन्हें रोका जा सकेगा।"

द्विजदासने उसी क्षण अस्वीकार करते हुए कहा—"आप तो जानते हैं, देवी-देवताओंपर मेरा विश्वास नहीं है। इसके सिवा मेरे साथ वे वैकुण्ठ जानेको भी तैयार नहीं इतना तो आप उनके मुँहसे ही सुन चुके हैं—"

विप्रदासने असन्तुष्ट होकर कहा—"हाँ रे पण्डित, सुना है। पर तू जा सकेगा या नहीं, सो कह?"

"मुझे तो अभी मरनेकी भी फुरसत नहीं।" इतना कहकर द्विजदास दूसरे प्रश्नके पहले ही घरसे बाहर चला गया।

विप्रदासने एक साँस छोड़कर कहा—"यही बात है। ऐसा ही काम है देखता कि माँको भी नहीं माना जा सकता!"

यहाँपर माँका जरा-सा परिचय देना आवश्यक है। विप्रदासकी ये विमाता हैं। विप्रदासकी माँ मरनेके एक वर्ष बाद ही यज्ञेश्वर दयामयीको ब्याह कर लाये थे, और उसी दिनसे इन्हींके हाथों वह बड़ा हुआ है। ये उसकी माँ नहीं हैं—यह बात विप्रदासको काफी उमर न होनेतक मालूम ही नहीं हो पाई थी।



३

इस घरमें द्विजदास सबसे ज्यादा आदर करता था अपनी भाभीका। उसके सब तरहके फिजूल-खर्चके लिए रुपये भी आते थे भाभीके सन्दूकसे। सती सिर्फ रिश्तेके हिसाबसे ही नहीं, उमरके हिसाबसे भी कई महीने उससे बड़ी थी। इसीसे, अक्सर वह उसका नाम लेकर पुकारा करती थी। इसी बातपर बचपनमें द्विजूने माँसे असंख्य बार शिकायत की है।

सिर्फ ग्यारह सालकी उमरमें सतीने बधूके रूपमें इस घरमें प्रवेश किया था, जिससे उनके स्नेह-प्यारकी सीमा नहीं थी। सास हँसकर कहती—"ऐसी बात है? पर यह तो तुम्हारी बड़ी बेजा बात है बहूरानी, देवरको नाम लेके पुकारना।" सती कहती—"क्यों है, मैं तो उमरमें बहुत बड़ी हूँ।"

"बहुत बड़ी? कितनी बड़ी हो बेटी?"

तब उन्हें तू मारने दौड़ा था। और अब जब कि तेरा अपना छोटा भाई ठीक वही बात करता फिरता है, तो तू उसका कोई प्रतिकार नहीं करेगा? यह तेरा कैसा न्याय है?"

विप्रदासने मुसकराते हुए कहा—"उसमें एक कारण है माँ। स्कूलके इम्तहानमें प्रमोशन न पानेपर भी ऐसी शिकायत करना मुझसे नहीं सहा जाता, मगर द्विजूकी तरह एम० ए० पास करके विलायती शिक्षाके जोर चाहे जितना ही कोसता फिरे, मुझे उसकी परवाह नहीं।"

माँने कहा—"मगर वह? हमारे ही रुपयोंसे हमारी ही रैयतको भड़काना?"

द्विजदास अबतक चुप था। उसने एक भी बातका जवाब न दिया था। अबकी उसने जवाब दिया, बोला—"उनकी सभा-समितिके लिए तुम लोगोंकी इस्टेटका एक पैसा भी मैंने नहीं बिगाड़ा।"

माँने कमरेमें घुसनेके बाद एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा था; और अब भी नहीं देखा। विप्रदाससे पूछने लगीं—"तो इस अभागेसे पूछ तो कि रुपये आये कहाँसे? रोजगार कर रहा है?"

ठीक इसी समय परदेके बाहरसे घुँघरुओंकी रुन-झुन आवाज हुई। विप्रदासने कान लगाके सुनकर कहा—"बाहरसे जवाब आ रहा है न। तुम्हारे घरकी बहू ही अगर रुपयेकी मदद दे, तो उसे कौन रोक सकता है बताओ भला?"

माँको याद आ गया। बोलीं—"हाँ, यही बात है। उसीका ही काम है यह। बड़े आदमीकी लड़की बापकी जमींदारीसे सालाना छै हजार रुपये पाती है इसका तो मुझे खयाल ही नहीं था।" जरा देर स्थिर रहकर फिर कहने लगीं—"तेरी सगाई करने जब समधी साहब खुद यहाँ आये, तभी मैंने तेरे बापूजीसे कहा था कि राय घरानेकी बहूको घरमें लानेकी जरूरत नहीं। अनाथ राय उन्हींके खानदानका तो था जो विलायत जाकर मेम ब्याह लाया था। वे लोग क्या नहीं कर सकते? उनके लिए दुनियामें असाध्य क्या है?"

विप्रदास उसी तरह मुसकराता हुआ चुप रहा। वह जानता था कि स्त्रीके मायकेसे यह उलाहना कभी जानेका नहीं। उसके मायकेके खानदानका कोई अनाथ राय मेम ब्याह लाया था, उस बातको माँ अबतक भूल नहीं सकी हैं।

लड़केको चुप देखकर वे फिर कहने लगीं—"अच्छा रहने दे। बाबा कैलाश-नाथ अब मुझे खींच रहे हैं, उनके दर्शन करके लौट आऊँ; इसके बाद इसका

इन्तजाम करूँगी।" इतना कहकर वे वहाँसे चली गईं।

विप्रदासने कहा—"क्यों रे द्विजू, माँको लेके जा सकेगा? उन्होंने जब जानेकी ठान ली है तब भरोसा नहीं कि उन्हें रोका जा सकेगा।"

द्विजदासने उसी क्षण अस्वीकार करते हुए कहा—"आप तो जानते हैं, देवी-देवताओंपर मेरा विश्वास नहीं है। इसके सिवा मेरे साथ वे बैकुण्ठ जानेको भी तैयार नहीं, इतना तो आप उनके मुँहसे ही सुन चुके हैं—"

विप्रदासने असन्तुष्ट होकर कहा—"हाँ रे पण्डित, सुना है। पर तू जा सकेगा या नहीं, सो बता?"

"मुझे तो अभी मरनेकी भी फुरसत नहीं।" इतना कहकर द्विजदास दूसरे प्रश्नके पहले ही घरसे बाहर चला गया।

विप्रदासने एक साँस छोड़कर कहा—"यही बात है! ऐसा ही काम है इसका कि माँको भी नहीं ले जा सकता!"

यहाँपर माँका जरा-सा परिचय देना आवश्यक है। विप्रदासकी ये विमाता हैं। विप्रदासकी माँ मरनेके एक वर्ष बाद ही यज्ञेश्वर दयामयीको ब्याह कर लाये थे, और उसी दिनसे इन्हींके हाथों पल बड़ा हुआ है। ये उसकी माँ नहीं हैं—यह बात विप्रदासको काफी उमर न होनेतक मालूम ही नहीं हो पाई थी।



३

इस घरमें द्विजदास सबसे ज्यादा आदर करता था अपनी भाभीका। उसके सब तरहके सिंगार-पटारके लिए रुपये भी आते थे भाभीके सन्दूकसे। सती सिर्फ रिश्तेके हिसाबसे ही नहीं, उमरके हिसाबसे भी कई महीने उससे बड़ी थी। इसीसे, अक्सर वह उसका नाम लेकर पुकारा करती थी। इसी बातपर बचपनमें द्विजूने माँसे असंख्य बार शिकायत की है।

सिर्फ ग्यारह सालकी उमरमें सतीने वधूके रूपमें इस घरमें प्रवेश किया था, जिससे उसके लाड़-प्यारकी सीमा नहीं थी। सास हँसकर कहती—"ऐसी बात है! पर यह तो तुम्हारी बड़ी बेजा बात है बहूरानी, देवरको नाम लेके पुकारना।" सती कहती—"क्यों है, मैं तो उससे उमरमें बहुत बड़ी हूँ।"

"बहुत बड़ी! कितनी बड़ी हो बेटी?"

"मैं जनमी हूँ बैसाख महीनेमें, वो जनमा है भादोंमें।"

माँ हँसकर कहतीं— "भादोंमें ही हुआ है न, मुझे ही याद नहीं था। अब अगर फिर कभी यह शिकायत करने आयेगा तो उसके कान ऐंठ दूँगी।"

अदालतमें हारकर हिरू जब गुस्सा होकर चला जाता तब बहूको गोदके पास खींचकर साथ स्नेहके साथ कहतीं—"अभी बच्चा है न, इसीसे नहीं समझता। 'भाभाजी' कहनेसे बड़ा खुश होता है। कभी-कभी 'भाभाजी' भी कह दिया करना, क्यों ठीक है बहूरानी?"

सतीने पानी होकर गरदन हिलाकर जवाब दिया था—"अच्छा माँ, कभी कभी भाभाजी ही कहूँगी।"

उस दिन वह थी बालिका आज है इतने बड़े घरकी गृहिणी। विधवा होनेके नाते सास तो लगी रहती हैं अपने जप-तप और धर्म ध्यानमें, फिर भी उनका उस दिनका उपदेश बादमें बहुत दिनोंतक सतीके बहुत काममें आया है। जैसे आज।

पिछले परिच्छेदमें वर्णित घटनाको लगभग पन्द्रह-सोलह दिन हो गये हैं। आज सवेरे ही सतीने देवरके पढ़नेके कमरेमें प्रवेश करते हुए पुकारा—"भाभाजी—"

हिरण्मयने हाथ उठाकर रोकते हुए कहा—"रहने दो भाभी, ज्यादा खुशामदकी जरूरत नहीं, मैं करूँगा।"

"क्या करोगे सुनूँ भी?"

"तुम जो हुक्म दोगी, सो ही। मगर भाई-साहबकी यह बड़ी बेजा बात है।"

"बेजा कैसे हुई बताओ?"

हिरण्मय वैसे ही नाराजीके साथ बोला—"मैं पढ़ता हूँ। कभी-कभी मैं भाई-साहबके कमरेके सामने होकर आ रहा हूँ। भीतर वे माँ और तुम तीनों मिलकर जो षड्यंत्र रच रहे थे, सो मेरे कानोंतक पहुँच गया है। उनमें साहस नहीं कि मुझसे कहें, इसीसे तुम्हें भेजा है काम हासिल करनेके लिए। कितनी बड़ी बेजा बात है बताओ भला?"

सतीने मुसकराते हुए कहा—"बेजा तो नहीं है भाभाजी। उन लोगोंको अच्छी तरह मालूम है कि उनके कहते ही जवाब मिलेगा, 'मुझे मरनेकी भी

फुरसत नहीं—पर भाभीके हुक्म करते ही किसकी मजाल नहीं कि 'नहीं' करे।

द्विजदासने गरदन हिलाते हुए कहा—"नहीं तो मेरे लिए मुश्किल है, और यहाँ उन्हें खबर मिल गया है। मगर करना क्या होगा?"

सतीने कहा—"माँ कैलास दर्शनको अवश्य जायेंगी और तुम्हें उनके साथ जाना पड़ेगा।"

द्विजदास कुछ क्षण चुप रहकर बोला—'दो-तीन महीनेसे कम नहीं लगेंगे। काममें कितनी हानि होगी, सोच देखा है भाभी?"

सतीने स्वीकार करते हुए कहा—"हानि तो कुछ होगी ही। पर एक नई जगह भी देख आओगे। अपनी तरफसे इसे वास्तविक हानि नहीं कहा जा सकता। राय महाशय हों न मेरे, बाबूजी इसमें कोई आपत्ति नहीं करता।"

द्विजदासने कहा—"तुम जब आदेश कर रही हो तो आपत्ति नहीं करूँगा,—साथ जाऊँगा। मगर माँने उस दिन बड़ी आसानीसे मझलासे कहा था, मेरा कलकत्तेका पढ़ाईका खर्च बन्द कर देनेके लिए।"

सतीने हँसकर कहा—'वह गुस्सेकी बात थी बबुआ। पर अभी हुक्म जिन्होंने दिया है वे माँके सिवा और कोई नहीं, यह बात भी तुम्हें न भूलना चाहिए।"

द्विजदासने उत्तर दिया—"भूला नहीं भाभी। उस दिनसे मैंने भी क्या तय कर रखा है जानती हो? मैं अकेला आदमी ठहरा, ब्याह करनेका मुझे कभी समय भी नहीं मिलेगा, और मौका भी नहीं आयेगा। लिहाजा खर्च मामूली समझो। जरूरत पड़ेगी तो लड़कोंको पढ़ाकर गुजर कर लूँगा, पर इनके स्टेटसे कभी एक पैसा भी नहीं माँगूँगा।"

सती फिर हँस पड़ी, बोली—"माँगनेकी जरूरत नहीं होगी बबुआजी, खुद ही आ हाजिर होगा। और अगर न होगा, तो भी तुम्हें लड़के पढ़ानेकी जरूरत न होगी। कमसे कम, मेरे जीते जी तो नहीं। उसका भार मुझपर रहा।"

यह भरोसा द्विजूके भी मनमें स्वतःसिद्धकी भाँति मौजूद था, क्षण-भरके लिए उसके पलक भारी हो उठे, किन्तु उस भावको तत्पर दूर करके उसने पूछा—"कब जानेका तय हुआ है इन लोगोंका? कभी मार्च, आखिर मुझे ही साथ जाना पड़ा। और मजेकी बात यह कि माँने उस दिन साफ-साफ ही कहा था कि मुझ-जैसे म्लेच्छाचारीके साथ वे वैकुण्ठ जानेको भी राजी नहीं। इसीको कहते

सम्मानका परिहास, क्यों भाभी ?"

सतीने इस उपहासका जवाब नहीं दिया, चुप रही।

द्विजू कहने लगा— "खैर, कुछ भी हो, तुम्हारा हुकम न टालूँगा भाभी — मुझे निश्चिन्त रहनेको कह देना।"

सती हँस दी, बोली—"मुझे भेजकर वे निश्चिन्त ही हैं। कमरेसे बाहर निकलते ही तुम्हारे भाई साहबकी बात मेरे कानोंमें पड़ी वे जोरसे साथ माँसे कह रहे थे, अब बेफिक्र बाबाकी तैयारियाँ करो माँ, जिन्हें [illegible] नियुक्त किया गया है उनके सामने मरना-जीना कुछ नहीं चलता। गरदन झुकाकर मंजूर कर लेगा तुम देख लेना।"

सुनकर द्विजदास मारे क्रोधके तमतमा कर बोला —"नामंजूर नहीं कर सकता, यह जानकर ही अगर उन लोगोंने यह षड्यन्त्र रचा हो कि किसीके मनमें बेवजह उठनेवाली किसी लहरको चरितार्थ करनेका भार मुझे ही उठाना पड़ेगा, तो मेरी तरफसे तुम दादा साहबसे यह बात कह देना भाभी कि उन्हें शरम आनी चाहिए।"

सतीने कहा— कहनेसे कुछ लाभ नहीं होगा लालाजी, जमींदार होकर जो प्रजाका खून चूसा करते हैं उनकी यही नीति है। अपना काम हासिल करनेमें वे लोग किसी तरहकी हया-शरम महसूस नहीं करते। सम्पत्तिके आधे मालिक होते हुए भी जब तुममें इनकी जमींदारीसे लेनेमें अभाव मालूम होता है तब एक तरफ जैसे मुझे दुःख होता है वैसे ही दूसरी ओर मन खुशीसे भर उठता है। तुम्हारा नाम लेकर माँको मैंने भरोसा दे दिया है कि उनके जानेमें विघ्न नहीं होगा तुम साथ जाओगे। तीर्थसे अच्छी तरह वापस लौट आओ लालाजी चाहे तुम्हारा कितना ही नुकसान हो मैं उसका सब पूरा कर दूँगी।"

द्विजदासने कुरसीसे चौकीपरसे उठकर भाभीके पाँवकी धूल माथेसे लगाई और फिर वापस अपनी जगहपर आ बैठा।

सतीने कहा—"जमींदार तो पराई उम्मीदवारी ही करती रही। अब मेरा अपना अनुरोध भी एक है।"

द्विजदासने हँसकर कहा— 'तुम्हारा अपना! वह लेकिन मुझसे नहीं हो सकेगा भाभी।"

सती भी हँसी, बोली—"तामसुक नहीं लालाजी डर लगता है क्यों तुमने

'ना' न कह बैठे।"

"अच्छी बात है, तो कहके ही न देख लो।"

सतीने कहा—"मेरे एक मझले चाचा हैं,—सगे नहीं, बाबूजीके चचेरे भाई—वे विलायत गये थे। तब कहीं यह खबर इन लोगोंके कानोंतक आ पहुँचती तो इस घरमें मैं आ ही नहीं सकती। माँके मुँहसे यह बात सुनी होगी शायद?"

"बहुत दफे। यहाँतक कि औसतन फी-रोज एक बारके हिसाबसे गिना जाय तो इन पन्द्रह-सोलह सालोंमें उसकी गिनती पाँच-छै हजारतक अवश्य पहुँच जायगी।"

सतीने हँसते हुए जवाब दिया—"मेरा अन्दाज भी यही है। चाचा बम्बई रहते हैं। उनके एक ही लड़की है और वहीं पढ़ती है। अगले साल वह विलायत जायगी अपनी पढ़ाई पूरी करने। तुम्हें जाकर उसे लिवा लाना होगा।"

"कहाँसे? बम्बईसे?"

"हाँ। वह लिखती है, आ तो वह अकेली भी सकती है, लेकिन इतनी दूरका सफर अकेली बुलानेकी मेरी हिम्मत नहीं होती।"

"उन्हें पहुँचा देनेवाला कोई नहीं है?"

"नहीं, चाचाजीको छुट्टी नहीं मिलेगी।"

विप्रदास सहसा राजी न हो सका, सोचने लगा। सती कहने लगी—"मेरा जब ब्याह हुआ था तब वह सात आठ सालकी बच्ची थी। उसके बाद एक बार सिर्फ भेंट हुई थी कलकत्तेमें, तब इसने मैट्रिक पास करके आइ० ए० पढ़ना शुरू ही किया था—इसे तो कई साल हो गये। उसे मैं बहुत ही प्यार करती हूँ लालजी, अगर तकलीफ उठाकर उसे एक बार लिवा लाते। लिवा लानेके लिए वह अकसर चिट्ठी लिखा करती है, पर कोई मौका ही नहीं लगता।"

विप्रदासने पूछा—"मगर अभी कौन-सा मौका लग गया? माँ क्या राजी हो गई हैं?"

सती इस सवालका सहसा जवाब न दे सकी। और न दे सकनेकी वजहसे ही एक तरहकी सचमुचकी व्याकुलता उसके चेहरेपर प्रकट हो उठी। जरा ठहरकर उसने कहा—"माँसे कहा है। अब भी ठीक राय तो उन्होंने नहीं दी है, पर अपनी तीर्थयात्राको लेकर वे इतनी चञ्चल हो रही हैं कि आशा है इनकार न

है मानका परिहास, क्यों भाभी ?"

सतीने इस उलाहनेका जवाब नहीं दिया, चुप रही।

द्विजू कहने लगा—"खैर, कुछ भी हो, तुम्हारा हुक्म न टालूँगा भाभी — उन्हें निश्चिन्त रहनेको कह देना।"

सती हँस दी, बोली—"मुझे भेजकर वे निश्चिन्त ही हैं। कमरेसे बाहर निकलते ही तुम्हारे भाई साहबकी बात मेरे कानोंमें पड़ी, वे जोरके साथ माँसे कह रहे थे, अब बेवकूफ बाबाजीकी तैयारियाँ करो माँ, फिर दोस्त-काममें नियुक्त किया गया है उनके सामने भरता ऐसा कई नहीं चलनेका। गरदन पकड़कर मंजूर कर लेगा तुम देख लेना।"

सुनकर द्विजदास मारे क्रोधके एकदम लाल होकर बोला—"नामंजूर नहीं कर सकता यह जानकर ही अगर उन लोगोंने यह षड्यन्त्र रचा हो कि किसीके मनमें देशसेवाको उठानेवाली किसी बातको चरितार्थ करनेका वाहन मुझे ही बनना पड़ेगा, तो मेरी तरफसे तुम दादा भाईको यह बात कह देना भाभी कि उन्हें शरम आनी चाहिए।

सतीने कहा—"कहनेसे कुछ काम नहीं होगा बाबूजी, जमींदार होकर जो प्रजाका खून चूस करते हैं उनकी यही नीति है। अपना काम हासिल करनेमें वे लोग किसी तरहकी दया धरम महसूस नहीं करते। सम्पत्तिके मालिक होते हुए भी जब तुम्हें इनका जमींदारीके खेलमें तकलीफ मालूम होता है तब ए तरफ जैसे मुझे दुःख होता है वैसे ही दूसरी ओर मन खुशीसे भर उठता है तुम्हारा नाम लेकर माँको मैंने भरोसा दे दिया है कि उनके जानेमें विघ्न नहीं होगा तुम साथ जाओगे। ठीकसे अच्छी तरह वापस लौट आना बाबाजी चाहे तुम्हारा कितना ही नुकसान हो मैं उसका सब पूरा कर दूँगी।"

द्विजदासने कुरसीसे चौकीसे उठकर भाभीके पाँवकी धूल माथेसे लगाई और फिर वापस अपनी जगहपर आ बैठा।

सतीने कहा—"अभीतक तो पराई उम्मेदवारी ही करती रही। अब मेरा अपना अनुरोध भी एक है।"

द्विजदासने हँसकर कहा—"तुम्हारा अपना! वह लेकिन मुझसे नहीं हो सकेगा भाभी।'

सती भी हँसी, बोली—"मालूम नहीं बाबूजी, डर लगता है कहीं तुमके

'ना' न कह बैठें।"

"अच्छी बात है, तो कहके ही न देख लो।"

सतीने कहा—"मेरे एक मौसेरे चाचा हैं,—सगे नहीं, बापूजीके चचेरे भाई—वे विलायत गये थे। तब कहीं यह खबर इन लोगोंके कानोंतक आ पहुँचती तो इस घरमें मैं आ ही नहीं सकती। माँके मुँहसे यह बात सुनी होगी शायद!"

"बहुत दूरके। यहाँतक कि औसतन पाँच-पाँच एक बारके हिसाबसे गिना जाय तो इन पन्द्रह-सोलह सालोंमें उसकी गिनती पाँचसे ग्यारहतक अवश्य पहुँच जायगी।"

सतीने हँसते हुए जवाब दिया—"मेरा अन्दाज भी यही है। चाचा बम्बई रहते हैं। उनके एक ही लड़की है और वहीं पढ़ती है। अगले साल वह विलायत जायगी अपनी पढ़ाई पूरी करने। तुम्हें जाकर उसे लिवा लाना होगा।"

"कहाँसे? बम्बईसे?"

"हाँ। वह लिखती है, आ तो वह अकेली भी सकती है, लेकिन इतनी दूरका सफर, अकेली आनेकी मेरी हिम्मत नहीं होती।"

"उन्हें पहुँचा देनेवाला कोई नहीं है?"

"नहीं, चाचाजीको छुट्टी नहीं मिलेगी।"

द्विजदास सहसा राजी न हो सका, सोचने लगा। सती कहने लगी—"मेरा जब ब्याह हुआ था तब वह सात-आठ सालकी बच्ची थी। उसके बाद एक बार सिर्फ भेंट हुई थी कलकत्तेमें, तब इसने मैट्रिक पास करके आइ० ए० पढ़ना शुरू ही किया था,—इसे तो कई साल हो गये। उसे मैं बहुत ही प्यार करती हूँ लालाजी, मगर तकलीफ उठाकर उसे एक बार लिवा लाते। लिवा लानेके लिए वह अक्सर चिट्ठी लिखा करती है, पर कोई मौका ही नहीं लगता।"

द्विजदासने पूछा—"मगर अभी कौन-सा मौका आ गया? माँ क्या राजी हो गई हैं?"

सती इस सवालका सहसा जवाब न दे सकी। और न दे सकनेकी वजहसे ही एक तरहकी असमंजसकी व्याकुलता उसके चेहरेपर प्रकट हो उठी। जरा ठहरकर उसने कहा—"माँसे कहा है। अब भी ठीक राय तो उन्होंने नहीं दी है, पर अपनी तीर्थयात्राको लेकर वे इतनी व्यस्त हो रही हैं कि आशा है इनकार न

करेंगी। इसके सिवा वे खुद जब यहाँ नहीं रहेंगी तब दो-तीन महीने यह भाभी मौके मेरे पास रह सकेगी।"

द्विजदासने मन ही मन समझ लिया कि सासकी आज्ञा न मिलनेपर भी इस मौकेपर वह अपनी प्रवासिनी बहनको एक बार पास बुलाना चाहती है। उसने पूछा—"तुम्हारे मामा क्या ब्राह्मसमाजी हैं?"

सतीने कहा—"नहीं। लेकिन हिन्दू-समाज भी उन्हें नहीं अपनाता। वे खुद भी शायद नहीं जानते कि उनका कहाँ स्थान है। इसी तरह दिन कट रहे हैं।"

ऐसी अवस्था बहुतोंकी है। द्विजदास मन ही मन खिन्न होकर बोला—"आनेमें मुझे कोई एतराज नहीं भाभी लेकिन मेरा कहना है कि माँके रहते तुम उसे यहाँ मत बुलाओ। माँको तो जानती ही हो, कुछ नहीं तो खाने-पीनेकी छुआ-छूतको लेकर ही ऐसा बखेड़ा कर देंगी कि बहनको लेकर तुम्हें इतना शर्मिन्दा होना पड़ेगा कि जिसकी हद नहीं। इससे तो बल्कि हम लोगोंके चले जानेपर बुलानेका इन्तजाम करना सब तरहसे अच्छा होगा।"

यह अच्छी सलाह है, इस बातको सती खुद भी समझती है; मगर उसने जब कि खुद चिट्ठी लिखकर आनेकी प्रार्थना जताई है, तब वह किस तरह उसे किसी अनिश्चित भविष्यकी सम्भावनासे मनाहीकी चिट्ठी लिख दे, यह उसकी समझमें न आया। इसका संकोच और दुःख क्या कुछ कम है! उसने कहा—"अपनी बहन होनेकी वजहसे नहीं कह रही बबुआजी, बल्कि कलकत्तेमें उस बार महीने-भरके लिए उसे बहुत ही नजदीक पाकर मैंने निश्चित-रूपसे समझ लिया है कि रूप और गुणमें वैसी लड़की हजारमें दुर्लभ है। दो दिन भी अगर माँ पास देख सकें तो म्लेच्छ लड़कियोंके बारेमें उनकी धारणा ही बदल जायगी। फिर कभी उनपर अभक्ति नहीं कर सकेंगी।"

द्विजदासने कहा—"लेकिन ये दो ही दिन माँको दिखाना तो कठिन है भाभी। वे देखना ही नहीं चाहेंगी, यह भी सच है।"

सतीने कहा—"पर उसका रूप भी तो देखनेमें आयेगा! उसे तो माँ आँख मींचकर अस्वीकार नहीं कर सकेंगी! वह भी तो एक परिचय है।"

द्विजदास चुप रहा। सती कहने लगी—"मेरा यह निश्चित विश्वास है कि वन्दनाकी उपेक्षा या अवहेलना दुनियामें कोई नहीं कर सकता। माँ भी नहीं।"

द्विजदासने अचम्भेमें आकर पूछा—"वन्दना ! नाम तो सुना हुआ-सा मालूम होता है भाभी। कहीं शायद देखा हो, अच्छा ठहरो, अखबारमें क्या —एक तसवीर भी शायद—"

बात खतम भी न हो पाई कि नौकरानी आहटके साथ भीतर आ पहुँची और बोली—"बहूजी, तुम यहाँ हो ! तुम्हारे कोई काका सा'ब अपनी लड़कीके साथ बम्बईसे आये हैं। बाहर कोई नहीं है, बड़े बाबू सा'ब भी नहीं हैं। गुमाश्ताजीने उन लोगोंको नीचेके कमरेमें बिठाया है।"

इस घटनाकी किसीको उम्मीद न थी। "ऐं—कहती क्या है ?"—कहते कहते सती आँधीकी तरह तेजीसे कमरेसे बाहर हो गई। पीछे-पीछे द्विजदास भी गया।

* * * *

४

निर्दोष साहबी पोशाकसे भूषित एक प्रौढ़ भद्रपुरुष कुरसीपर बैठे थे और उनके पास ही खड़ी हुई एक बीस-इक्कीस सालकी लड़की दीवारपर टँगी हुई जगद्धात्री देवीका विशाल चित्र बड़े ध्यानसे देख रही थी। उसकी पोशाक बिलकुल मेम-साहिबके जैसी न होनेपर भी, देखकर सहसा ऐसा नहीं लगता कि वह बंगालीकी लड़की है। खासकर शरीरका रंग बिलकुल गोरा और साफ था। बदनका गठन और चेहरेकी भी अनिन्द्य सुन्दर। देवरके सामने सती अभी-अभी गर्वके साथ कह रही थी कि उसका रूप तो सासकी नजरोंमें आवेगा, और भौंचक तो वे इससे इनकार नहीं कर सकतीं,—तो वास्तवमें यह बात सच है। बहनकी तरफसे इस रूपपर अहंकार या गुमान किया जा सकता है।

नीचेके कमरेमें पहुँचते ही सतीने झोक देकर प्रणाम किया, बोली—"मँझले काका, लड़कीके घर इतने दिनों बाद आखिर पाँवोंकी धूल पड़ी ?"

सतीके काका उठके खड़े हो गये और सतीके सिरपर हाथ रखकर हँसते हुए बोले—"हाँ री बेटी, पड़ी ! कब, किस जमानेमें काकाको न्योता देकर खबर भिजवाई थी जो मैंने इनकार किया था ? कभी कहा था आनेके लिए ? खुद ही जब बिना-बुलाये आ पहुँचा तब बात बना रही है—पाँवोंकी धूल पड़ी !"—द्विजदासकी तरफ नजर पड़ते ही पूछ उठे—"ये तेरे कौन हैं ?"

सतीने पीछेकी ओर देखकर कहा—"ये मेरे देवर हैं—द्विजदास।"

द्विजदासने दूरसे नमस्कार किया। वन्दना अपनी मौसीको प्रणाम करके हँसती हुई बोली—"ओह, ये ही हैं वे! जिनके मारे शायद जमींदारीका टिकना मुश्किल हो गया है। मुझे चिट्ठीमें लिखा था न! बंगाले निराले, योगके निराले मजालक स्वदेशी!"

"ऐसी बात तुझे कब लिखी थी!"

"अभी तो उस दिन। इतनेहीमें भूल गई!"

सतीने गरदन हिलाकर कहा—"नहीं, यह नहीं लिखा—मुझे याद नहीं।"

द्विजदास अकस्मात्, न जाने कैसे एक प्रकारके संकोचके मारे जड़वत् हो रहा था। इस विषयमें वह कुछ भी तय नहीं कर पा रहा था कि एक अनात्मीय और अपरिचित युवती महिलाके सामने उसे क्या करना चाहिए। इसके पहले कभी ऐसा मौका भी नहीं आया, जरूरत भी नहीं पड़ी—परन्तु इस नवागत तरुणीकी आश्चर्यजनक स्वच्छन्दतासे मानो उसने आज एक नई शिक्षा प्राप्त की। उसकी अकारण और अशोभन जड़ता क्षण-भरमें दूर हो गई; और उसने एक स्वच्छ आनन्दका स्वाद लिया। इस बातको वह अपनी बुद्धिके द्वारा बहुत समयसे स्वीकार करता आया है कि स्त्रियोंको भी शिक्षा और स्वाधीनताकी आवश्यकता है, और मा या भाई साहबसे बहस छिड़ जानेपर वह यही युक्ति देता आया है कि स्त्री होनेपर भी वे हैं तो मनुष्य ही, लिहाजा शिक्षा और स्वाधीनतापर उनका हक है। मूर्ख रखकर उन्हें घरमें बन्द रखना अन्याय है। किन्तु आज इस अतिथि युवतीके आकस्मिक परिचयसे उसने अपने मनमें पहले-पहल यह अनुभव किया कि उन सब मामूली तर्क-युक्तियोंकी युक्तियोंसे यह बहुत बड़ी बात यह है कि पुरुषके चरम और परम प्रयोजनके लिए ही स्त्रीको शिक्षा और स्वाधीनताकी आवश्यकता है, उसे वंचित रखकर पुरुष अपनेको कितना वंचित कर रहा है इस सत्यको उसने इतनी स्पष्टतासे इसके पहले कभी नहीं देखा। उस युवतीको लक्ष्य करके उसने मुसकराते हुए कहा—'आपकी बात ही ठीक है, भाभी भूल गई हैं। पर इस विषयको लेकर बहस करनेमें कुछ फायदा नहीं।"—इतना कहकर उसने बनावटी गम्भीरतासे चेहरा गम्भीर करके भाभीसे कहा, "भाभी तुम्हारे बोलते ही जो मेरा नाम चोर है, और तुम्हारी चिट्ठीमें ही ऐसी बातें! अच्छी बात है, मुझे

तुम लोग त्याग दो, और मैं भी अपना सारा अधिकार त्यागे देता हूँ। तुम लोगोंकी जमींदारी अटूट-अक्षय बनी रहे, तुम एक बार मुँह खोलके हुकुम दे दो, मैं आज ही वकीलको बुलाकर सब लिखा-पढ़ी किये देता हूँ। ये गवाह रहेंगी, देखो मैं कर सकता हूँ या नहीं।"

साहबने मुँह उठाकर सतीकी ओर देखते हुए कहा—"तेरे देवर जबरदस्त स्वदेशी हैं क्या?"

सतीने कहा—"हाँ, जबरदस्त।"

"तेरे कहते ही लिखा पढ़ी करके अपनी जमींदारीका हिस्सा छोड़ देना चाहते हैं?"

सतीने गरदन हिलाते हुए जवाब दिया—"बड़ी आसानीसे छोड़ सकते हैं। इनके लिए असाध्य कोई काम नहीं।"

वन्दना अपने कुतूहलको दबा न सकी, पूछ बैठी, "सच कहते हैं? हमेशाके लिए सचमुच ही सब त्याग सकते हैं?"

द्विजदासने उसके चेहरेकी तरफ क्षण-भर देखकर कहा,—"सचमुच छोड़ सकता हूँ। उसका मुझे रंचमात्र भी क्षोभ नहीं। देशके पन्द्रह आने लोगोंको एक वक्त भर-पेट खानेको नहीं मिलता, सुबहसे शामतक मेहनत करनेपर भी नहीं—और बगैर मेहनतके हमारे लिए पुलाव-कलिया तैयार रहता है,—ऐसा पापका अन्न मुझे नहीं भाता, गलेमें अटक जाना चाहता है। ऐसी सम्पत्तिका चला जाना ही अच्छा है। तब देशके अन्य सबोंकी तरह मेहनत-मजदूरी करके गुजर कर सकूँ तो भी चलूँ। जुट गया तो मंगल ही मंगल है, न जुटा तो उन लोगोंके साथ भूखों मरकर कभी शायद स्वर्ग भी जा सकूँगा, मगर इस रास्ते तो उसकी कभी कोई आशा नहीं।"

वन्दना एकटक उसकी ओर देखती हुई सुन रही थी, बात खतम हो जानेपर उसने कुछ कहा नहीं,—सिर्फ उसके मुँहसे एक लम्बी साँस निकल गई।

सहसा सतीकी अन्यमनस्कता मानो दूर हो गई। उसके स्वाभाविक पास इसके सिवा अपनी कोई बात ही नहीं। कहते-कहते यह कंठस्थ हो गई है। उसने कहा—"अपना यह पुराना लेक्चर पीछे देना बाबूजी, इसके लिए काफी वक्त मिलेगा। काकाजी ने अभीतक शायद हाथ-मुँह भी न धोया होगा। वन्दना, चल बहन, ऊपर चलके कपड़े-लत्ते बदल।"

साहबने पूछा—"कुँवर साहब तो नहीं देख पड़ते ?"

सतीने कहा—"वे सवेरे ही किसी एक जरूरी कामसे बाहर गये हैं, लौटनेमें शायद देर होगी।"

वन्दनाने पूछा—"जीजी, तुम्हारी सासजी भी तो नहीं दीखतीं ? हैं तो घरहीमें ?"

सतीने कहा—"अभी तो हैं पर जल्दी ही कैलास-मानस-सरोवरकी तीर्थ यात्राको जानेवाली हैं। सवेरेका वक्त तो सारा उनका पूजा-आह्निकमें ही बीत जाता है; अब थोड़ी ही देर बाद उन्हें देख सकोगी।"

वन्दनाने पूछा—"वे ज्यादातर धर्म-कर्ममें ही लगी रहती हैं न ?"

सतीने कहा—"हाँ।"

'विधवा होनेके बाद, सुना है, वे घर-संसारका कुछ भी नहीं देखतीं—सच है न ?"

"सच ही तो है। सब मुझे ही सँभालना पड़ता है।"

वन्दनाने उत्सुक होकर पूछा—"वे तुम्हारी सौतेली सास हैं न जीजी ?"

सती हँसके बोली—"आँखोंसे तो नहीं देखा बहन, लोग शायद यह कहते हैं।"

द्विजदास अचानक जोरसे बोल उठा—"झूठ ही कहते हैं। यदि सौतेली सासके मानी भाई साहबकी सौतेली-माँ है, तो झूठ बात है। सौतेली-माँ जरूर हैं, पर भाई साहबकी नहीं, मेरी। खैर जाने दो नहाने-खिलानेके बाद ये बातें होंगी,—अब ऊपर चलिए—अच्छा, मैं देखता हूँ जाकर भाभी, देर मत करो, इन्हें लेकर जल्दी आओ।"—इतना कहकर वह तैयारियोंकी देखभाल करने जा रहा था, इतनेमें माँको देखकर ठिठकके खड़ा हो गया।

बहुत सम्भव है कि दयामयी खबर पाकर पूजाके बीचमेंसे ही उठके चली आई हों। उमर ज्यादा न होनेसे वे वैधव्यके बाद भी साधारणतः बाहरके मर्दोंके सामने निकलती न थीं, परदे या ओटमें रहकर ही बात करती थीं, मगर आज एकबारगी कमरेके भीतर आ खड़ी हुईं। माथेका पल्ला [illegible] खिंचा हुआ था किन्तु चेहरा सारा-का-सारा दीख रहा था।

"ये मेरे मैकेके काकाजी हैं माँ। और यह मेरी वन्दना।"—इतना कहकर सतीने पास आकर सहसा सासके पाँव धोक दी। इस तरह बेमतलब पाँव

छोड़ देनेकी न तो प्रथा ही है और न कोई देता ही है। दयामयीके मन ही मन कुछ अखरा हुआ, किन्तु जैसे ही वह उठके खड़ी हुई वैसे ही दयामयीने स्नेहके साथ उसकी ठोड़ी छूकर अपनी उँगलियाँ चूमकर[1] आशीर्वाद दिया। परन्तु वन्दनापर निगाह पड़ते ही उनकी दृष्टि कड़ी-सी हो गई। अपनी बहनकी देखा-देखी उसने भी पास आकर ढोक देके प्रणाम किया, किन्तु उन्होंने उसे छुआ नहीं, बल्कि शायद छूनेसे बचनेके लिए ही वे एक कदम पीछे हट गईं और अस्फुट स्वरसे बोलीं—"जीती रहो।"

फिर बोलीं—"समधी साहब नमस्कार। बाल-बच्चोंके भाग्य हैं कि अबतक आपके पाँवोंकी धूल इस घरमें पड़ी।"

समधी साहबने प्रतिनमस्कार करते हुए कहा—"अनेक कारणोंसे समय नहीं मिलता समधिन साहिबा, लेकिन बगैर कहे-सुने इस तरह अचानक चले आनेकी भूल-चूक माफ कीजिएगा। अब जब कभी आऊँगा तब यथासमय सूचना देकर आऊँगा।"

दयामयीने इन बातोंका कुछ उत्तर नहीं दिया, सिर्फ इतना ही कहा—"अभी मेरी सन्ध्या-पूजा पूरी नहीं हुई है समधी साहब,—फिर मिलूँगी।—बहू, ऊपर ले जाओ, खाने-पीनेकी कोई तकलीफ न होने पावे। विपिन आए तो उसे मेरे पास भेज देना एक बार।"—इतना कहकर वे और किसी तरफ बगैर देखे बाहर निकल गईं। बाहरसे प्रकाशित सौजन्यमें खास कोई त्रुटि हुई हो सो बात नहीं, किन्तु भीतरकी तरफसे सबको ऐसा लगा कि चन्द्रमाकी शुभ्र चाँदनीके बीचों बीच एक काला बादल निर्मल आकाशके एक छोरसे दूसरे छोरतक उड़ता निकल गया।

५

वन्दना नहा-धोकर बैठकमें आई तो देखा कि उसके पिता पहलेहीसे फारिग होकर तैयार बैठे हैं और एक शौकियानी आराम-कुरसीपर बैठे आँखोंपर चश्मा चढ़ाये अखबार पढ़ रहे हैं। पास ही एक छोटी टेबिलपर अखबारोंका ढेर लगा हुआ है; और द्विजदास खोज-खोजके तारीख मिला-मिलाकर उन्हें तरतीबवार लगा रहे हैं। रेलमें तथा कामकी भीड़में कई दिनके अखबार वे देख न सके थे।

---

१. बंगालमें स्त्रियाँ अपनेसे छोटोंको इसी तरह आशीर्वाद दिया करती हैं।

लड़कीको कमरेमें प्रवेश करते देख उन्होंने आँख उठाकर कहा—"बेटी, हम लोग दो बजेकी गाड़ीसे कलकत्ते चलेंगे, यह तय किया है। वहाँ कुछ दिन रहनेकी अगर तुम्हारी तबीयत हो, तो लौटते वक्त तुम्हें यहाँ पहुँचाकर मैं सीधा बम्बई चला जाऊँगा। क्यों ठीक है न?"

"कलकत्तेमें तुम्हें कितने दिन लगेंगे?"

"पाँच-सात दिन—या आठ दिन, इससे ज्यादा नहीं।"

"लेकिन उसके बाद फिर मुझे बम्बई कौन ले जायगा?"

"इसका इन्तजाम आसानीसे हो जायगा।"—इतना कहकर उन्होंने जरा कुछ सोचा और कहा—"अच्छी बात है, तुम्हारी तबीयत हो तो तुम यहीं बनी रहो सतीके पास, लौटते वक्त मैं तुम्हें साथ लेता जाऊँगा—क्यों?"

वन्दना कुछ देर चुप रहकर बोली—"अच्छा, जीजीसे पूछ देखूँ।"

द्विजदासने कहा—"भाभी रसोईघरमें गई हैं। शायद उन्हें देर लगेगी।" फिर हाथका अखबार दिखाता हुआ बोला—"आपको क्या दूँ?"

वन्दनाने जवाब दिया—"अखबार? अखबार मैं नहीं पढ़ती।"

"अखबार नहीं पढ़तीं?"

"नहीं। उसमें मैं धीरज खो बैठती हूँ। शामको बापूजीके मुँहसे बातें सुन लिया करती हूँ, इसीसे मेरी भूख मिट जाती है।"

"आश्चर्य है। मैंने सोचा था आप बहुत ज्यादा पढ़ती होंगी।"

वन्दनाने कहा—"मेरे सम्बन्धमें बगैर कुछ भी जाने ऐसा क्यों सोचते हैं? बड़ा बेइन्साफ करते हैं।"

द्विजदास शरमिन्दा-सा होने लगा तो वन्दना हँसके बोली, "आप लोगोंमेंसे किसने कितना देशोद्धार किया और अँग्रेजोंने उसपर कितनी आँखें लाल कीं—इस विषयमें मुझे जरा भी कुतूहल नहीं। बापूजीका है। देखिए न अखबारोंके ढेरके ढेरमें डूब गये हैं, खानपान रहा ही नहीं।"

बापूजीके कानोंमें शायद लड़कीका सिर्फ 'बापूजी' शब्द पहुँच गया था, पर उन्हें आँख उठाकर देखनेका वक्त नहीं मिला, बोले—'जरा ठहर जा, बताता हूँ। ठीक यही जवाब मैं ढूँढ़ रहा था।"

लड़की मुसकराती हुई गरदन हिलाकर बोली—"तुम ढूँढ़-ढूँढ़कर दिन-भर पढ़ते रहो बापूजी, मुझे जरा भी जल्दी नहीं।"—फिर द्विजदासकी तरफ मुख

करके बोली—"मौसीके मुँहसे सुना था कि आपके बड़ी भारी लाइब्रेरी है, वहीं चलिए, देखूँ आपने कितनी किताबें इकट्ठी की हैं।"

"चलिए।"



लाइब्रेरीका कमरा तीसरी मंजिलपर था। जीना खूब चौड़ा था; चढ़ते-चढ़ते द्विजदासने कहा—"लाइब्रेरी काफी बड़ी है, पर मेरी नहीं है, भाई साहबकी है। मैं तो सिर्फ कहाँसे क्या-क्या किताबें निकलीं, इसकी खबर देता हूँ; और हुक्मके माफिक खरीद लाया करता हूँ।"

"किन्तु पढ़ते तो हैं आप?"

"सो एक तरहसे नहींके बराबर। पढ़ते हैं वे खुद जिनकी लाइब्रेरी है। आश्चर्यजनक शक्ति है उनमें और वैसी ही अद्भुत बुद्धि।"

"किनकी? भाई साहबकी?"

"हाँ। यह सच है कि युनिवर्सिटीकी छाप-वाप विशेष कुछ नहीं लगी उनकी देहपर, पर मालूम होता है इतना विशाल पाण्डित्य इस देशके बहुत कम लोगोंमें है। शायद नहीं भी हो। आपके तो वे पड़ोसी हैं, कभी देखा नहीं उन्हें?"

"नहीं। कैसे हैं देखनेमें?"

"ठीक मुझसे उल्टे। जैसे रात और दिन। मैं काला हूँ और उनका रंग सोने जैसा। शरीरकी ताकत उनकी इस प्रान्तमें मशहूर है। लाठी, तलवार और बन्दूक चलानेमें इधर उनका जोड़ नहीं। सिवा एक माँके और कोई उनके चेहरेकी तरफ देखकर बात करनेकी हिम्मत नहीं करता।"

वन्दनाने हँसते हुए पूछा—"मेरी मौसी भी नहीं?"

द्विजदासने जवाब दिया—"नहीं, आपकी मौसी भी नहीं।"

"बहुत ज्यादा गुस्सैल हैं?"

"नहीं, सो भी नहीं। अंग्रेजीमें एक 'ऐरिस्टोक्रैट'[1] शब्द है, मेरे भाई साहब शायद किसी जन्ममें उन्हींके राजा थे। कमसे कम मेरी धारणा तो ऐसी ही है। और गुस्सैल हैं या नहीं, आप पूछ रही थीं? सो किसी तरहका गुस्सा करनेका उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता।"

---

१ Aristocrat—सम्भ्रान्त या उच्च कुलके गौरवसे गौरवान्वित।

वन्दनाने कहा—"भाई साहबपर आपकी बड़ी जबरदस्त भक्ति है! है न?"

द्विजदास चुप रहा। थोड़ी देर बाद बोला—"इस बातका जवाब आपको अगर सम्भव हुआ तो और किसी दिन दूँगा।"

वन्दनाने कहा—"इसके मानी?"

द्विजदासने हँसकर कहा—"मानी अगर अभी ही बता दूँ तो फिर और किसी दिन जवाब देनेकी जरूरत ही न होगी। आज रहने दीजिए।"

विशाल लाइब्रेरी है। आलमारी, टेबिल कुरसी वगैरह जैसा कीमती असबाब है वैसे ही तरतीब और सफाईसे सजा हुआ है। गँवई-गाँवमें इतना बड़ा आयोजन देखकर वन्दनाको बहुत आश्चर्य हुआ। बम्बई शहरमें इस चीजका अभाव नहीं; उसकी तुलनामें यह शायद कुछ भी नहीं; किन्तु एक गाँवमें किसी एक व्यक्तिका इतना ज्यादा संग्रह करना सचमुच आश्चर्यकी बात थी। उसने पूछा—"क्या वास्तवमें इतनी किताबें भाई साहब पढ़ते हैं?"

द्विजदासने कहा—"पढ़ते हैं और पढ़ी हैं। आलमारियाँ बन्द नहीं हैं, कोई भी एक किताब निकालके देख लीजिए न, उनके पढ़नेके निशान शायद नजर आ जायँ।"

"इतना वक्त उन्हें कब मिलता है? दिन-रात क्या सिर्फ यही करते रहते हैं?"

द्विजदासने गरदन हिलाते हुए कहा—"नहीं। कमसे कम मैं तो नहीं जानता। इसके सिवा, हमारी जमींदारी या जमीन-जायदाद बहुत-भारी न होने पर भी निहायत कम भी नहीं कही जा सकती। उसमें कहाँ क्या है और क्या हो रहा है, सब भाई साहबकी नजरोंमें रहता है। सिर्फ आजकल ही नहीं, बल्कि बाबूजीके जमानेसे ही बराबर यही व्यवस्था चली आ रही है। वक्त मिलनेका रहस्य मुझे भी ठीक ढूँढ़े नहीं मिलता। आपकी तरह मेरा आश्चर्य भी कुछ कम नहीं,—मगर हाँ सिर्फ यही सोचकर रह जाता हूँ कि संसारमें कभी कभी ऐसे भी दो-एक व्यक्ति जन्म लेते हैं जो साधारण लोगोंके हिसाबके बाहर होते हैं। भाई साहब उसी श्रेणीके जीव हैं। हम लोगोंकी तरह शायद इन्हें तकलीफ उठाकर पढ़ना भी नहीं पड़ता, जैसेके हरफ आँखोंकी राह जाकर मगजमें अपने आप छप छपते चले जाते हैं। पर भाई साहबकी बात अभी रहने दो। आपने उन्हें अभीतक आँखोंसे देखा भी नहीं, मेरे मुँहसे एकतरफा

आलोचना अतिशयोक्ति मालूम हो सकती है।"

"मगर सुननेमें मुझे बहुत अच्छी ही लग रही है।"

"लेकिन सिर्फ 'अच्छी लगना' ही तो सब-कुछ नहीं है! संसारमें हम लोग और अत्यन्त साधारण और भी बहुतसे लोग हैं। एकमात्र असाधारण व्यक्ति ही अगर सारी जगह घेरकर बैठ जाय, तो फिर हम लोग जायँ कहाँ! भगवान्‌ने मुँह तो सिर्फ दूसरोंकी स्तुति करनेको नहीं दिया!"

वन्दना हँसती हुई बोली—"यानी बड़े भाईको छोड़कर अब जरा छोटे भाईकी स्तुति करना चाहते हैं—यही तो?"

द्विजदास भी हँस दिया, बोला—"चाहता तो हूँ, पर मौका कहाँ मिलता है! जो लोग परिचित हैं वे तो कान ही न देंगे, अपरिचितोंके पास ही जरा कुछ गुनगुनाया जा सकता है। पर साहस नहीं होता, डर लगता है कि अभ्यास की कमीके कारण अपने मुँहसे अपनी ही स्तुति शायद रुक-रुक जायगी।"

वन्दनाने कहा—"नहीं भी रुकती है,—कोशिश कर देखिए। मेरा तो विश्वास है कि पुरुषवर्ग इस विषयमें आजन्मसिद्ध होते हैं। अब देर न कीजिए, शुरू कीजिए।"

द्विजदासने सिर हिलाकर कहा—"नहीं, मुझसे न हो सकेगा। इससे तो बल्कि यह अच्छा है कि एकान्तमें बैठकर दो-चार किताबें देखिये आप, मैं भाभीको भेजे देता हूँ।" यह कहकर वह जानेको तैयार हुआ कि वन्दना ज़ोर देकर कह उठी—"आप तो खूब हैं! नहीं, आप मुझे अकेली छोड़कर न जाइए। किताबें मैंने बहुत पढ़ी हैं, उनकी जरूरत नहीं। आप बातचीत कीजिए, मैं सुनूँ।"

"काहेकी बातचीत?"

"अपनी खुदकी।"

"तो जरा सब्र कीजिए, मैं अभी नीचे जाकर बहुत अच्छा वक्ता भेजे देता हूँ।"

वन्दनाने कहा—"जीजीको भेज देंगे न? उनकी जरूरत नहीं। उन्हें जो कुछ कहना था, सब चिट्ठियोंमें ही खतम हो चुका है। वह सब सच है या नहीं—अब तो यही सुनना चाहती हूँ।'

द्विजदासने कहा—"नहीं, सच नहीं है। कमसे कम रुपयेमें बारह-आने झूठ है। अच्छा, सुना है कि आप बहुत जल्दी ही विलायत जा रही हैं?"

वन्दना समझ गई कि यह आदमी अपने प्रसंगकी चर्चा नहीं करना चाहता; और फिर करनेका अनुरोध घनिष्ठता भी अशोभन होगी। उसने कहा—"विवाहकी ऐसी ही रस्म है। सुननेमें विवाह वे यहाँ आकर समाप्त करनेको कहते हैं। आप भी क्यों नहीं चलते?"

द्विजदासने कहा—"मुझे अपनी तरफसे कोई आपत्ति नहीं, पर रुपये कहाँसे आवेंगे? वहाँ ट्यूशन पढ़ाकर भी गुजारा नहीं किया जा सकता और इतना भार भाभीपर भी नहीं डाल सकूँगा। यह भैयाकी आज्ञा है।"

सुनकर वन्दना हँस दी। बोली—"द्विजू बाबू, यह तो आपकी नाराजीकी बात है। नहीं तो, जितना धन आप लोगोंके पास है उससे सिर्फ आप अकेले ही नहीं, चाहें तो आप इस गाँवके आधे आदमियोंको साथ ले जा सकते हैं। अच्छा तो ठीक है, इसकी व्यवस्था मैं किये देती हूँ, आप चलनेको तैयार हो जाइए।"

द्विजदासने कहा—"सो व्यवस्था होनेकी नहीं। धन बहुत है, माना, पर वह सब भाई साहबका है, मेरा नहीं। अगर कहूँ कि मैं इसपर निर्भर हूँ तो अत्युक्ति न होगी।"

वन्दनाने फिर हँसनेकी कोशिश करते हुए कहा—"अत्युक्ति क्या और कौन सी होती है सो मैं भी समझती हूँ। पर यह भी नाराजीकी बात है। चौधरीकी चिट्ठीसे एक बार मालूम हुआ था कि जिस सम्पत्तिको आपने खुद नहीं कमाया उसे आप लेना नहीं चाहते। क्या यह बात ठीक नहीं?"

द्विजदासने कहा—"अगर ठीक भी हो तो वह मनुष्यकी धर्मबुद्धिकी बात है, नाराजीकी नहीं। परन्तु इतना ही सम्पूर्ण कारण नहीं।"

"सम्पूर्ण कारण क्या है क्या सुन नहीं सकती?"

द्विजदास चुप रह गया। वन्दना क्षण-भर उसके चेहरेकी ओर देखती रही, फिर आहिस्ते आहिस्ते बोली—"मैं स्वभावतः इतनी कुतूहली नहीं हूँ। पर मेरा यह आग्रह दुनियाके न्याय आतिथ्य या ज्यादती है, इतनी समझ मुझमें भी है, लेकिन समझ रहनेसे ही संसारकी सब समस्याएँ नहीं मिट जातीं—अभाव मुँह बाये ताकता ही रहता है। आपकी बात मैंने इतनी ज्यादा सुनी है कि आप पहले-पहल जब मेरे सामने उस कमरेमें दाखिल हुए तो अपरिचित से मालूम ही नहीं हुए,—ऐसी आसानीसे पहचान लिया कि जैसे कितनी ही बार देखा

हो। बीबीको इतनी बातें बता सके मुझे नहीं बता सकते ? और कुछ न होऊँ, उनकी तरह मैं भी तो आपकी एक आत्मीय हूँ।"

बात सुनकर हिरनदास दंग रह गया। और, अकस्मात् सारी बातें याद आ जानेसे उसके संकोच और आश्चर्यकी सीमा न रही। बिलकुल अपरिचित जवान लड़कीके साथ एकान्तमें इस तरह बातें करनेका इतिहास उसके लिए यह पहला ही था। दीवारपर टँगी घड़ीकी तरफ देखा तो घण्टे भरसे भी ज्यादा वक्त बीत चुका था। इस बीच अगर किसीने उसे ढूँढा हो तो, इस घरमें उसका जवाब क्या हो सकता है, उसे ढूँढे न मिला। हो सकता है कि भाई साहब घर वापस आ गये हों, हो सकता है कि माँकी सन्ध्या-पूजा हो चुकी हो – सहसा शरीर और मन व्याकुल होकर मानो एक क्षणमें जीनेकी तरफ दौड़ गया, किन्तु कुछ भी कह न सकनेके कारण ज्योंका त्यों सख होकर बैठा रहा।

"हाँ तो बताया नहीं ? बताइए।"

हिरनदास मानो सोतेसे जागा। बोला —"अगर बताऊँगा तो पहले-पहल आपको ही बताऊँगा। भाभीको भी आजतक नहीं बताया।"

"उसका फैसला मैं करूँगी। मैं लेकिन बगैर सुने—"

बताना उचित नहीं इसमें तो हिरनदासको कोई सन्देह ही नहीं था; मगर अनुरोधकी उपेक्षा करनेकी भी उसमें शक्ति नहीं रही।

मिनट भर हतबुद्धि-सा देखता रहा, फिर बोला—"पिताजी मुझे वास्तवमें कुछ भी नहीं दे गये हैं।"

वन्दना चौंक उठी, बोली—"ओह, झूठी बात है! ऐसा हो ही नहीं सकता।"

प्रत्युत्तरमें हिरनदासने सिर्फ सिर हिलाकर बताया—"हो सकता है।"

"मगर इसकी वजह ?"

"बापूजीकी शायद धारणा हो गई थी कि मुझे दे जानेसे उनकी सम्पत्ति नष्ट हो सकती है।"

"इस धारणाके लिए कोई सच्चा हेतु भी था ?"

"था। मुझे बचानेके लिए एक बार उनका बहुत रुपया नष्ट हुआ था।"

वन्दनाको याद आ गया, इस तरहका एक इशारा एक बार सतीकी चिट्ठीमें भी था। उसने पूछा—"पिताजी 'जिल' (जयोनिष्टाम) किया गये हैं ?"

द्विजदासने कहा—"यह तो भाई साहबको ही मालूम है। वे कहते हैं—नहीं।"

बन्दनाने एक भारी साँस लेकर कहा,—"फिर भी गनीमत है। मैंने समझा कि शायद वे सचमुच ही 'विल' लिखकर आपको वंचित कर गये हैं।"

द्विजदासने कहा—"उनकी इच्छा तो थी, मगर शायद भाई साहबने उन्हें वैसा करने नहीं दिया।"

"भाई साहबने नहीं करने दिया? आश्चर्य है।"

द्विजदासने हँसते हुए कहा—"भाई साहबको जान जायँगी तो फिर आश्चर्य नहीं मालूम होगा। एक रातकी बात है, शाम हो चुकी थी, नौकर लालटेन उस कमरेमें बत्ती नहीं रख गया था, मैं बगलवाले कमरेमें एक किताब ढूँढ़ रहा था, अचानक पिताजीकी बात कानोंमें आ पड़ी। भाई साहबने कहा, 'नहीं।' पिताजी जिद करने लगे 'नहीं क्यों विप्रदास? मैं अपनी बाप-दादोंके जमानेसे चली आई सम्पत्तिको नष्ट नहीं होने दे सकता। परलोकमें रहकर भी मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।' फिर भी भाई साहबने यही जवाब दिया कि 'नहीं, ऐसा किसी तरह भी नहीं हो सकता।' बाबूजीने कहा कि 'फिर भी तुम्हारे ही हाथ मैं सब छोड़े जाता हूँ। अगर अच्छा समझो तो दे देना, अगर वैसा न समझो तो मत देना।' इसके बाद भी पिताजी दो-तीन सालतक और जीवित रहे, पर मुझे निश्चित मालूम है कि उनकी राय नहीं बदली थी।"

बन्दनाने उत्सुकतासे पूछा—"इस बातको और भी कोई जानता है?"

"कोई नहीं। सिर्फ मैं ही जानता हूँ, छिपके सुना था इसलिए।"

बन्दना बहुत देरतक मौन रहकर अस्फुट स्वरमें बोली—"सचमुच ही आपके भाई साहब असाधारण आदमी हैं।"

द्विजदासने शान्त भावसे कहा—"हाँ। पर अब मैं नीचे जाता हूँ, बहुत देर हो गई मुझे। आप बैठी-बैठी किताब पढ़ती रहें—जबतक कि झपकी न आवे।"

बन्दना हँसती हुई बोली—"इस वक्त किताब पढ़नेकी रुचि नहीं है, बल्कि मैं जाती हूँ। कमसे कम आठ-दस दिन तो यहाँ हूँ ही,—किताब पढ़नेको बहुत वक्त मिलेगा।"

द्विजदास चलनेको तैयार हो गया था, पर तुरत ही ठिठककर खड़ा हो गया बोला—"अपने पिताजीके साथ आप कलकत्ते नहीं जायँगी?"

"नहीं। अब वे कलकत्तेसे वापस होंगे, तो उनके साथ ही बम्बई जाऊँगी।"

द्विजदासने कहा—"बल्कि, मैं तो कहता हूँ कि उनके वापस आते वक्त ही आप कुछ दिनके लिए यहाँ ठहर जायँ।"

वन्दनाने कहा—"पहले ऐसी ही इच्छा थी, पर अब देखती हूँ कि उसमें बहुत असुविधा है। मुझे पहुँचा देनेवाला कोई नहीं है। हाँ, आप अगर राजी हो जायँ तो आपको सत्पात्र ही मान लूँगी।"

"मगर मैं तो उस समय यहाँ रहूँगा नहीं। मुझे तो इसी सोमवारको माँको लेकर कैलासकी यात्रा करने जाना है।"

वन्दनाकी दोनों आँखें आनन्द और उत्साहसे चमक उठीं, बोली—"कैलास! कैलास जायँगे? सुना है कि परमाश्चर्यकी चीज है। आप लोगोंके साथ और कौन कौन जा रहे हैं?"

"ठीक नहीं मालूम, शायद और भी कुछ लोग जायँ।"

"मुझे भी साथ लो!"

द्विजदास चुप रहा। वन्दनाने क्षुण्ण अभिमानके कंठसे, जबरदस्ती हँसनेकी कोशिश करते हुए, कहा—"आप इसलिए ही शायद ठीक उसी समय मुझे यहाँ आकर रहनेका आग्रह कर रहे हैं?"

द्विजदास उसके मुँहकी ओर आँख उठाकर शान्त भावसे बोला—"सचमुच इसीलिए परामर्श दिया है। मामीने आपको इतनी बातें लिखीं, सिर्फ यही नहीं लिखा कि हमारा यह कितना जबरदस्त कट्टर हिन्दू घराना है? इसके आचार विचारकी कठोरताका कोई आभास चिट्ठीमें नहीं दिया आपको?"

वन्दनाने सिर हिलाकर जवाब दिया—"नहीं।"

"नहीं! आश्चर्य है।"—फिर जरा ठहरकर द्विजदासने कहा—"एक मेरे सिवा आपका छुआ पानीतक पीनेवाला इस घरमें कोई नहीं है।"

"लेकिन आपके भाई साहब?"

"नहीं।"

"माँजी?"

"नहीं, वे भी नहीं। हम लोगोंके चले जानेपर तो शायद दो-चार दिन रह भी सकोगी, पर माँके रहते हुए एक दिन भी आपका इस घरमें निबाह नहीं हो सकता।"

बन्दनाका चेहरा फक्-सा पड़ गया, बोली—"सच कह रहे हैं!"

"सच ही कहा है।"

ठीक इसी समय नीचेके जीनेमेंसे सतीकी आवाज सुनाई दी—"लालाजी! बन्दना! तुम दोनों कर क्या रहे हो!"

"आया भाभी"—कहता हुआ द्विजदास जल्दी-जल्दी कदम रखता हुआ चलने लगा, तो बन्दनाने फीके चेहरे और दबी जबानसे सिर्फ इतना ही कहा—"इतनी बातें मैं नहीं जानती थी। धन्यवाद!"

६

बन्दनाने नीचे आकर देखा कि पिताजी मजेसे खाने बैठे हैं। उस बैठकखानेमें ही एक छोटी-सी टेबिलपर चाँदीके थालमें खानेको परोसा गया है। एक दीर्घाकृति अत्यन्त सुन्दर व्यक्ति पास ही खड़ा है,—उसके शरीरका शक्तिसम्पन्न गठन और अत्यन्त गोरा रंग देखकर ही बन्दनाने पहचान लिया कि ये ही विप्रदास हैं। सती भी साथ ही आ रही थी, पर वह भीतर नहीं घुसी, दरवाजेकी आड़में खड़ी हो गई और बन्दनाको नमस्कार करनेका इशारा करके बता दिया कि 'हाँ ये ही हैं।'

भारतीय स्त्रियोंको यह बात सिखानेकी जरूरत नहीं थी, और इसके पहले माँको जैसे उसने ढोक देकर प्रणाम किया था बड़े बहनोईके लिए भी वैसा कर सकती थी किन्तु सहसा न जाने कैसे उसका सम्पूर्ण मन विद्रोह-सा कर उठा। उनकी अनन्यसाधारण शिक्षा और सुरुचिका बखान द्विजदासके मुँहसे न सुना होता तो शायद इस प्रचलित शिष्टाचारका पालन करनेकी बात उसके मनमें भी न उठती किन्तु इस परिचयने ही उसे कठोर कर डाला। औचित्यका मान रखनेके लिए उसने हाथ उठाकर नमस्कार तो किया किन्तु उसमें उसकी उपेक्षा ही स्पष्टतर हो उठी। बात उसने पितासे ही की बोली—"तुम अकेले खाने बैठे हो, मुझे बुलाया क्यों नहीं किया!"

साहबने मुँह उठाकर उसकी ओर देखा, और कहा—"मेरा तो गाड़ीका वक्त हो गया था बेटी, तुम्हें तो कोई जल्दी नहीं थी।" फिर बोले—"मेरे चले जानेके बाद तुम लोग धीरे-सुस्ते खा-पी सकोगी।"

सतीने ओटमेंसे गरदन हिलाकर इस बातका अनुमोदन किया। बन्दनाने

उसकी तरफ लक्ष्य करके कहा—"बौजी, इतने-सारे कीमती चाँदीके बरतन क्यों बिगाड़े ? बाबूजीको एनामेल या चीनी मिट्टीके बरतनमें परोस देनेसे ही काम चल जाता !"

साहबका चबाना रुक गया। अत्यन्त सरल प्रकृतिके आदमी थे वे, लड़की की बातका तात्पर्य कुछ भी न समझ सके; और इस तरह व्यस्त और लज्जित हो उठे—जैसे यह उनका अपना ही कसूर हो बोले—"हाँ, हाँ, ठीक तो है—इसका मैंने कुछ खयाल ही नहीं किया,—सही कहाँ गई—मुझे किसी डिशमें ही परोस देनेसे काम चल जाता,—एा—"

विप्रदासका चेहरा क्रोधसे कठोर और गम्भीर हो उठा। आजतक उसका इतना बड़ा अपमान करनेका किसीने साहस नहीं किया, जैसा कि इस नवागता रिश्तेदार लड़कीने कर डाला। बरतन नष्ट होनेकी दुश्चिन्ता तो मात्र एक छल है। असलमें यह उसके आचारनिष्ठ परिवारके प्रति निष्ठुर व्यंग्य है और जहाँ तक सम्भव है उसीके उद्देश्यसे किया गया है। ऐसी दुरभिसन्धि किसने उसके मगजमें भर दी, यह बात विप्रदासकी समझमें ही नहीं आई। मगर कोई भी क्यों न हो, इस भलेमानस वृद्ध व्यक्तिको उपलक्ष्य बनानेकी अभद्रतासे उसकी विरक्तिकी सीमा न रही। मगर उसने अपने उस भावको दमनकर जबरदस्ती जरा हँसकर कहा—"तुमने अपनी बौजीसे सुना नहीं कि यह कट्टर हिन्दूका घर है ? यहाँ एनामेल या चीनी मिट्टीकी कोई भी चीज घुस सकती है भला—सुना नहीं क्या ?"

वन्दनाने कहा—"मगर कीमती बरतन तो नष्ट हो गये !"

साहब व्याकुल होकर बोल उठे—"लेकिन सुना है कि घी चुपड़के जरा आगमें डाल देनेसे ही—"

विप्रदासने इस बातपर कान ही नहीं दिये, और जैसे कह रहे थे वैसे वन्दनाको ही लक्ष्य करके कहते गये—"इस घरमें चाँदीके बरतनोंकी कमी नहीं है, किन्तु विशेष किसी काममें नहीं आते। तुम्हारे पिताजी रिश्तेमें मेरे बुजुर्ग हैं, इस घरमें अत्यन्त सम्मानित अतिथि हैं, चाँदीके बरतनोंकी चाहे कितनी ही कीमत क्यों न हो उनकी इज्जतके सामने वह बिल्कुल ही तुच्छ है,—तुम लोगोंके आनेके उपलक्ष्यमें कुछ बरतन अगर नष्ट ही हो जायँ तो हो जाने दो।" इतना कहकर जरा मुसकराकर फिर बोले,—"तुम्हारी बौजीकी तरह तुम्हारा भी

अगर किसी कट्टर-पन्थी घरमें ब्याह हो तो तुम अपने बापूजीको मिट्टीके बरतनमें खाना परोस देना, फेंक देनेसे वह किसीको न खटकेगा। क्यों वन्दना, क्या कहती हो!"

"कभी नहीं! बापूजीके लिए मैं तो सोनेके बरतन बनवा रखूँगी।"

विप्रदासने हँसते हुए उत्तर दिया—"सो तुम नहीं कर सकोगी। जो कर सकती है वह पिताके सम्बन्धमें ऐसी बात जबानपर भी नहीं ला सकती। और तो क्या, अन्य किसीको अपमानित करनेके लिए भी नहीं। अपने पिताको तुम जितना प्यार करती हो, कोई और अपने काकाजीको शायद उससे भी ज्यादा प्यार करती है।"

यह सुनकर साहबके मनपरसे सिर्फ एक भार ही नहीं उतर गया, सम्पूर्ण हृदय खुशीसे भर उठा। बोले—"तुम्हारी यह बात, बेटा, बिलकुल सच है। माँ साहबकी जब अचानक मौत हो गई तब वह बहुत छोटी थी। मैं परदेशमें नौकरी करता था, हमेशा घर आ नहीं सकता था, और आता था तो समाजके शासनके मारे अकेला ही रहना पड़ता था, मगर वही मौका पाते ही मेरे पास दौड़ी आती थी—"

वन्दना चटसे बाधा देती हुई बोल उठी—"उन बातोंको रहने दो न बापूजी—"

"नहीं नहीं, मुझे सब याद है,—बहुत थोड़े ही है। एक दिन मेरे साथ एक थालीमें खाने ही बैठ गई—उसकी माँ तो यह देखके—"

"आह, बापूजी, तुम न जाने क्या कह रहे हो बिना ठीक-ठिकानेका। कब मेरी थाली तुम्हारे साथ,—तुम्हें कुछ भी याद नहीं।"

साहबने मुँह उठाकर प्रतिवाद किया—"याद, याद क्यों नहीं! और फिर इस बातको लेकर कहीं कोई झगड़ा न उठ खड़ा हो, इस खयालसे तुम्हारी माँने उस दिन कैसे डरते-डरते—"

वन्दनाने कहा—"बापूजी, आज तुम जरूर गाड़ी फेल करोगे! कितने बजे हैं मालूम है!"

साहबने व्यस्त होकर जेबसे घड़ी निकाली और समय देखकर निश्चिन्ततासे साँस छोड़ते हुए कहा, 'तू तो ऐसा डरा देती है कि चौंक जाना पड़ता है। अभी बहुत देर है,—आसानीसे गाड़ी मिल जायगी।"

विप्रदासने हँसकर उनकी हाँमें हाँ मिलाते हुए कहा—"हाँ, गाड़ीमें अभी बहुत देर है। आप निश्चिन्त होकर सोइए, मैं खुद स्टेशन जाकर आपको चढ़ा आऊँगा।"—इतना कहकर वह कमरेसे बाहर हो गया।

दरवाजेकी ओटसे निकलकर सती ज्यों ही उसके पास आके खड़ी हुई त्यों ही वन्दनाने उससे अत्यन्त मृदुस्वरसे कहा—"भाभी, बापूजीने क्या काण्ड कर डाला, सुना!"

सतीने सिर हिलाकर कहा—"हाँ।"

वन्दनाने कहा—"तुम्हारी सासके कानोंतक बात पहुँच गई तो तुम्हें दुःख उठाना पड़ेगा। है न भाभी!"

सतीने कहा—"पड़ेगा तो पड़ता रहे। अभी रहने दो, काकाजी सुन लेंगे।"

"लेकिन तुम्हारे पति,—वे भी तो अपने कानोंसे सब सुन गये हैं; इस अपराधके लिए क्षमा शायद उनके पास भी नहीं!"

सती हँस दी, बोली—"अपराध अगर सचमुच ही हुआ हो तो मैं भी उसके लिए माफी क्यों माँगने लगी! उसके विचारका भार उन्हींपर छोड़कर मैं निश्चिन्त हूँ। अगर तुम यहाँ रहीं, तो अपनी आँखोंसे ही देख लोगी। काकाजी, तुम्हारे लिए और क्या लाऊँ!"

साहबने मुँह उठाकर कहा—"काफी है, काफी है,—मेरा खाना हो चुका बेटी, और कुछ नहीं चाहिए।" इतना कहके वे उठ बैठे।

स्टेशन जानेका समय हो गया। नीचे गाड़ी-बरामदेमें मोटर खड़ी प्रतीक्षा कर रही है, बिस्तर-बैग वगैरह सामान दूसरी गाड़ीमें लादा जा रहा है, साहब पास खड़े हुए विप्रदासके साथ बात कर रहे हैं कि इतनेमें वन्दना कपड़े पहनके तैयार होकर पास आ खड़ी हुई। बोली—"बापूजी, मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।"

पिताको आश्चर्य हुआ, बोले—"इतनी धूपमें स्टेशन जानेसे क्या फायदा, बेटी!"

वन्दनाने कहा—"स्टेशन ही नहीं, कलकत्ते चलूँगी। और जब तुम बम्बई जाओगे तब मैं तुम्हारे साथ हो चलूँगी।"

विप्रदासको भी बड़ा आश्चर्य हुआ, बोले—"यह क्या! कुछ दिन यहीं रहोगी, मैं तो यही जानता था।"

वन्दनाने उत्तरमें सिर्फ इतना ही कहा—"नहीं।"

"लेकिन तुमने अभी खाया भी नहीं है।"

"नहीं, जरूरत नहीं। कलकत्ते पहुँचकर खाऊँगी।"

"तुम जा रही हो, तुम्हारी जीजीको मालूम है?"

वन्दनाने कहा—"ठीक नहीं जानती। मेरे चले जानेपर मालूम हो जायगा।"

विप्रदासने कहा—"तुम्हारे बिना खाये-पीये इस तरह चले जानेसे उन्हें बड़ा भारी दुःख होगा।"

वन्दनाने मुँह उठाकर कहा—"दुःख किस बातका? मुझे तो उन्होंने न्यौता देकर नहीं बुलाया जो बिना खाये-पीये चले जानेसे उनका आयोजन नष्ट हो जायगा। वे नासमझ नहीं हैं समझ जायँगी।"—इतना कहकर वह आगे बात न बढ़ाकर, जल्दीसे गाड़ीमें जा बैठी।

साहबने मन ही मन समझ लिया कि कोई बात हो गई है। नहीं तो अब तक बिना कारण कुछ कर डालनेवाली लड़की नहीं है वह। उन्होंने कहा—"मैं भी यही जानता था कि कुछ दिन यह यहीं पास ही रहेगी। मगर एक बार जब गाड़ीमें बैठ गई है तो अब यह न उतरेगी।"

विप्रदासने कुछ जवाब नहीं दिया चुपचाप उनके पीछे-पीछे जाकर गाड़ीमें बैठ गये।

गाड़ी चल दी। अकस्मात् ऊपरकी ओर निगाह करते ही वन्दनाने देखा कि तीसरी मंजिलके जालीदार बरामदेके खुले जंगलेको दृढ़ पकड़ द्विजदास चुपचाप खड़ा है। आँखें चार होते ही उसने हाथ उठाकर नमस्कार किया।

७

स्टेशन पहुँचनेपर मालूम हुआ कि कहीं कोई एक आकस्मिक दुर्घटना हो जानेसे गाड़ी आनेमें अभी काफी देर है। शायद घंटे भरसे भी ज्यादा लेट है। परिचित स्टेशन-मास्टरके अचानक बीमार पड़ जानेसे एक मद्रासी रिलीविंग हैण्ड उनकी जगह काम कर रहा था, वह ठीक-ठाक खबर न दे सका, सिर्फ अनुमान ही कर सका, कि देर एक घंटेकी भी हो सकती है और दो घंटेकी भी। विप्रदासने साहबके मुँहकी ओर देखकर कहा—"कलकत्ता पहुँचनेमें रात हो जायगी, आज खाना बगैर खाये नहीं चलेगा।"

"क्यों नहीं चलेगा ? मेरी—"

वन्दना बीचहीमें बोल उठी—"नहीं बाबूजी, सो नहीं हो सकता। एक बार घरसे निकलके लौटा नहीं जा सकता।"

विप्रदासने अनुनयके स्वरमें कहा—"क्यों नहीं लौटा जा सकता वन्दना ? खासकर तुम बिना खाये चली आई हो, दिन-भर उपासी ही रह जाओगी !"

वन्दनाने सिर हिलाकर कहा—"मुझे भूख नहीं है। वापस लौटनेपर भी मैं न खा सकूँगी।"

साहब मन ही मन क्षुब्ध हुए, बोले—"इन लोगोंकी शिक्षा-दीक्षा ही अलग है। एक बार जिद पकड़ लेनेपर फिर नहीं डिगाया जा सकता।"

विप्रदास चुप रह गया, उसने और अनुरोध नहीं किया।

× × ×

स्टेशन बड़ा न होनेपर भी उसपर एक छोटा-सा वेटिंग-रूम था। वहाँ जाकर देखा कि एक अधेड़-उमरके बंगाली साहब और उनकी स्त्रीने पहलेसे ही दखल जमा रखा है। साहब सम्भवतः बैरिस्टर या डाक्टर होंगे अथवा विलायत-पास प्रोफेसर भी हो सकते हैं। इस तरफ वे कहाँ आये थे, सो भी एक रहस्यकी बात है। आराम-कुरसीके दोनों हाथोंपर टाँग पसारकर अलसाये-से पड़े थे। आकस्मिक जन-समागमसे सिर्फ जरा आँख खोल दीं,—भद्रता या शराफत दिखलानेका उद्यम इससे अधिक आगे न बढ़ा। परन्तु उनकी स्त्री कुरसी छोड़कर जल्दीसे उठकर खड़ी हो गईं। शायद अभीतक पूरी तौरसे मेम-साहब नहीं बन पाई हैं, किन्तु ऊँची एड़ीदार जूते और पहनाव उढ़ावका आयोजन देखकर मालूम होता है कि इस विषयकी कोशिशमें जरा कमी नहीं की गई है।

कमरेमें एक और आराम-कुरसी मौजूद थी। वन्दना पिताको उसपर बिठा-कर खुद एक दूसरी बेंचपर जा बैठी; और अत्यन्त सम्मानके साथ विप्रदासको बुलाकर बोली—"जीजाजी, झूठमूठ खड़े क्यों हैं, मेरे पास आकर बैठ जाइए। बड़े काठपर बैठनेमें दोष नहीं लगता, आपकी जाति नष्ट नहीं होगी।"

सुनकर वन्दनाके पिता जरा-कुछ हँस दिये; बोले—"विप्रदासके छुआछूतका विचार क्या बहुत ज्यादा है ?"

विप्रदास खुद भी हँस दिये, बोले—"विचार तो है, पर क्या होनेसे 'बहुत

प्यारा' होता है, इसे बगैर जाने इस प्रश्नका जवाब कैसे दूँ ?"

द्विजूने कहा—"यही समझ लो जैसा कि वन्दनाने कहा ।"

विप्रदासने कहा—"ये बगैर खाये-पीये बहुत ज्यादा गुस्सेमें हैं । व्यक्तियाँ गुस्सेमें जो कुछ कह डालती हैं, उसपर आलोचना नहीं चल सकती ।"

वन्दनाने कहा—"मैं गुस्सेमें नहीं हूँ,—जरा भी नहीं ।"

विप्रदासने कहा—"हो, और बहुत ही ज्यादा गुस्सेमें हो । नहीं तो आज तुम कलकत्ता न जाकर घर लौट जातीं । इसके सिवा तुम्हें खुद ही खयाल रहता कि अभी-अभी हम सब एक ही गाड़ीमें बैठके आये हैं, जाति नष्ट हुई हो तो वह पहले ही हो चुकी है, बेकार बैठनेकी बात कहना तो सिर्फ तुम्हारा छल है ।"

वन्दनाने कहा—"खैर, छल ही सही, पर आप सच तो बताइए मुखर्जी-साहब, क्या हम लोगोंसे छू-छा जानेसे घर लौटकर आपको फिरसे नहीं नहाना पड़ेगा ?"

"चलो न, घर चलकर अपनी आँखोंसे देख लेना ।"

"नहीं । आप जानते हैं कि माँको जब मैं प्रणाम करने लगी तब वे छू जानेके डरसे दूर हट गई थीं !" कहते-कहते ही वन्दनाका चेहरा मारे क्रोध और लज्जाके सुर्ख हो उठा ।

विप्रदासने इसे देखा । उत्तरमें उसने शान्त भावसे सिर्फ इतना ही कहा—"बात झूठ नहीं है मगर सच भी नहीं । इसका असल कारण उनके पास बगैर गये तुम नहीं समझ सकोगी । लेकिन उसकी तो अब सम्भावना ही नहीं रही ।"

"हाँ, नहीं रही ।"

इस तीव्र अस्वीकारका कारण अब जाकर विप्रदासको साफ-साफ मालूम हुआ । मन ही मन उसके क्षोभकी सीमा न रही । क्षोभ नाना कारणोंसे हुआ । विमाताके सम्बन्धकी बात आंशिक रूपसे ही सत्य है और उसमें वह खुद भी कुछ-कुछ हेर-फेर किया गया है । इसपर मजा यह कि समझाकर कहने-सुननेका न तो मौका है और न वक्त ही । दूसरी तरफ, धीर-स्थिरसे समझने-लायक मनोवृत्तिका भी वन्दनामें बिलकुल अभाव है । लिहाजा चुप रह जानेके सिवा और कोई चारा ही न था; और वह बिलकुल चुप ही रहा ।

[illegible]-साहब पैर नीचे उतारकर जम्हाई लेते हुए उठ बैठे, पूछ उठे—

"आप ही ज़मींदार विप्रदास बाबू हैं ?"

"हाँ ।"

"आपका नाम सुना है । पासके गाँवमें मेरी मौसीकी ननसाल है —बंगालमें जब आना हुआ ही है तो इच्छा हुई कि एक दफे भेंट-मुलाकात करता चलूँ । इसीसे आया था । मैं पंजाबमें प्रैक्टिस करता हूँ ।"

विप्रदासने उसकी ओर गौरसे देखा कि वह उन्हींके बराबरकी उमरका है —एक-आध सालकी कमी-बेशी हो सकती है, इससे ज्यादा नहीं ।

साहब कहने लगा—"कल ही आपकी बात हो रही थी । लोग कहते हैं कि आप बड़े ज़बरदस्त, यानी बहुत बड़े ज़मींदार हैं । अवश्य ही दो-चार आधुनिक पण्डितोंने कट्टर-हिन्दू होनेकी वजहसे आपकी बहुत तारीफ भी की । अब देख रहा हूँ कि बात बिलकुल झूठ नहीं है ।"

एक अपरिचितकी इस बिन-चाही आलोचनासे वन्दना और उसके पिता दोनोंको ही आश्चर्य हुआ; परन्तु विप्रदासने कोई उत्तर नहीं दिया । शायद वे इतने अन्यमनस्क थे कि सारी बातें उनके कानोंतक पहुँची ही नहीं ।

साहबने फिर कहना शुरू कर दिया—"अपने लेक्चरोंमें मैं अक्सर कहा करता हूँ कि ज़रूरत है 'ब्रेव' (साहस) चीज़की, 'सॉलिड्' (ठोस) शिक्षाकी,—ढकोसला या फकीराकी नहीं चाहिए । आपको चाहिए कि एक बार योरोप घूम आवें । वहाँकी आब-हवा, वहाँकी 'फ्री एयर ब्रीद' (स्वच्छन्द आब-हवा में साँस लेना) बगैर किये मनमें 'फ्रीडम' (स्वाधीन विचारशक्ति) आती ही नहीं,—मन कुसंस्कारोंसे छुटकारा ही नहीं पाना चाहता । मैं लगातार पाँच सालतक उस देशमें था ।"

वन्दनाके पिता इस आखिरी बातपर खुश होकर बोले—"यह बात तो सच है ।"

उत्साह पाकर नौजवान साहब गरम हो उठा, बोला—"इस डिमोक्रेसी (प्रजातन्त्र) के युगमें सभी समान हैं, कोई किसीसे छोटा नहीं है; और ज़रूरत इस बातकी है कि हर एक व्यक्ति अपने अधिकारको ज़बरदस्ती ऐसर्ट (assert = निःसन्दिग्ध भावसे कहे) करे, कान्सिक्वेन्स (consequence परिणाम) उसका कुछ भी क्यों न हो । मेरे पास रुपया होता तो आपकी ज़मींदारीमें रहनेवाली प्रत्येक विधवाको मैं अपने खर्चसे योरोप घुमा लाता ।

फिर वे इस बातको खुद ही समझ जाते कि अपना राइट (right = अधिकार) किसे कहते हैं।"

वन्दनाको शायद बहुत बुरा लगा, उसने आहिस्तेसे कहा—"मौसाजी अपनी प्रजापर अत्याचार करते हैं यह खबर आपको किसने दी? मुझे आशा है कि आपके मामा-ससुरपर कोई जुल्म न हुआ होगा।"

"ओह—वे आपके बहनोई हैं क्या? थैंक्स (धन्यवाद), नहीं, उन्होंने कोई शिकायत नहीं की।"—फिर अपनी बीबीको लक्ष्य करके हँसते हुए बोला—"काश तुम्हारी बहनें अगर ऐसी होतीं!"—और फिर वन्दनासे कहने लगा—"आप शायद विलायत घूम आई हैं? नहीं गईं? जाइए, जाइए। फ्रीडम (स्वच्छन्द मनोवृत्ति), चार्म, यानि, किसे कहते हैं, उस देशकी महिलाएँ वास्तवमें क्या हैं, एक बार अपनी आँखोंसे देख आइए। मैं नेक्स्ट टाइम (अबकी बार) जाते समय इन्हें साथ ले जाऊँगा, तय कर लिया है।"

किसीके कुछ बोलनेके पहले ही स्टेशनके उस रिफ्रेशिंग रूमके दरवाजेके पाससे मुँह बढ़ाकर बताया कि गाड़ी डिस्टेन्स-सिग्नल पार कर चुकी है,—आ ही पहुँची समझिए।

सब व्यस्त होकर प्लेटफॉर्मपर आ खड़े हुए।

गाड़ी खड़ी होनेपर देखा कि छुट्टियोंके कारण मुसाफिरोंकी बेशुमार भीड़ है। कहीं भी तिल रखनेको जगह मिलना मुश्किल है। सिर्फ एक डब्बा फर्स्ट क्लासका और एक ही सेकेण्ड क्लासका। सेकेण्ड क्लासमें फिरंगी रेलवे कर्मचारियों-का दल ठसाठस भर रहा है, जो कोई खेल देखनेके लिए कलकत्ते जा रहा है; और शायद उन्हींमेंसे कुछ लोग जगहकी कमीसे फर्स्ट क्लासमें आ बैठे हैं। ज्यादा शराब और 'बीयर' पीनेसे उन लोगोंका चेहरा जितना भीषण हो रहा था व्यवहार भी उतना ही बदतर और अ-भद्रताईका था। डब्बेका दरवाजा भीतरसे बन्द करके सबके सब बुरी तरह चिल्ला उठे—ह्ह—भागो—भागो।

स्टेशन-मास्टर आया, गार्ड साहब भी आ पहुँचा, पर उन लोगोंने किसीको कुछ समझा ही नहीं।

प्रोफेसर-साहब बोला—'अब उपाय?'

वन्दना डरती हुई बोली—"चलिए, आज घर लौट चलें।"

विप्रदासने कहा—"नहीं।"

"नहीं तो क्या किया जाय? न हो तो रातकी गाड़ीसे—"

छोकरा-साहब कहने लगा—'इसके सिवा और चारा ही क्या है! तकलीफ तो होगी, पर हो।'

विप्रदासने गरदन हिलाकर कहा—"नहीं। डब्बेमें चार ही पाँच जने हैं, और भी चार-पाँच जनोंके लिए जगह होनी चाहिए।"

वन्दनाके पिता व्याकुल होकर कहने लगे—"चाहिए, सो तो जानता हूँ, मगर ये सबके सब मतवाले जो हैं।"

विप्रदासका सारा शरीर मानो कठिन लोहेकी तरह सीधा हो उठा, उन्होंने कहा—"यह उन लोगोंका दोष है,—हमारा कसूर नहीं। चलिए,—मैं साथ चलूँगा।" और दूसरे ही क्षण गाड़ीका हत्था पकड़कर जोरसे धक्का मारके दरवाजा खोल डाला। फिर वन्दनाका हाथ पकड़के उसे भीतर खींचते हुए कहा—"आओ।' नौजवान साहबसे कहा—"राइट रिजर्व्ड (अधिकार रक्षा) करना चाहते हैं तो ज्यादा लेकर आ जाइए। अत्याचारी जमींदारके साथ रहते हुए जोर नहीं।"

मतवाले साहब लोग इस आदमीके चेहरेकी तरफ क्षण-भर ताकते रहे और फिर चुपकेसे ऊपरकी बेंचपर जाकर बैठ गये।

८

शोर-गुल सुनकर बगलके डब्बेके सहयात्री साहब लोग प्लेटफार्मपर उतर आये, और सबके सब एक साथ पूछ उठे—What's up? ("क्या मामला है?") उनका ढंग यह था कि साथियोंकी तरफसे वे अपना विक्रम या शौर्य दिखानेको तैयार हैं।

विप्रदासने पास ही खड़े हुए गार्डको इशारेसे पास बुलाकर कहा—"ये लोग शायद फर्स्ट क्लास पैसेंजर नहीं हैं, आपकी ड्यूटी है कि इन लोगोंको उतार दें।"

वह बेचारा भी साहब था, किन्तु अत्यन्त काला-साहब। लिहाजा इच्छा कुछ भी हो, वह बगलें झाँकने लगा। दूरसे लोग तमाशा देख रहे थे, एक मद्रासी रिफ्रेशिंग-बैरा खड़ा था उसे हाथके इशारेसे पास बुलाकर विप्रदासने पाँच रुपयेका नोट देते हुए कहा—"मेरा नाम मेरे नौकरोंसे मालूम हो जायगा,—आप अपने अफसरोंके पास एक तार भेज दें कि ये मतवाले व्यक्ति जबरदस्ती

फर्स्ट क्लासमें चढ़ गये हैं, उतरना नहीं चाहते। और यह बात अवश्य दीजिए कि गाड़ीके गार्ड खड़े-खड़े तमाशा देखते रहे और कोई मदद नहीं की।"

गार्डने अपनी आनेवाली विपत्तिको समझ लिया और फिर साहबपर सवार हो उन लोगोंसे कहा— D n't you see hey are big p op e ! तुम लोग रेलवे-सरवेण्ट हो रेलके 'पास' पर जा रहे हो—be careful !" ('देखते नहीं आप लोग, ये लोग बड़े आदमी हैं,—होशियार हो जाओ!') बात मातहतोंके लिए भी उपेक्षणीय नहीं थी। लिहाजा वे उतरकर बगलके डब्बेमें चले गये लेकिन ठीक अदिब सिखलाके नहीं। सभी जबानसे न जो कुछ कह गये, उससे मन बिल्कुल निश्चिन्त नहीं हो सका। खैर कुछ भी हो, पंजाबके बैरिस्टर साहबने गार्डको धन्यवाद देते हुए कहा—'आप न होते तो शायद आज हम लोगोंका जाना ही न होता।"

"नो—नो। यह तो मेरी ड्यूटी है।"

गाड़ी छूटनेकी घंटी बजी। विप्रदास उतरनेको उद्यत होकर बोले—"अब शायद मेरे साथ जानेकी जरूरत नहीं। वे अब कुछ नहीं करते।"

बैरिस्टरने कहा—"हिम्मत नहीं पड़ती। नौकरीका भी तो डर है!"

वन्दना दरवाजा रोककर खड़ी हो गई, बोली—"सो नहीं होगा। नौकरीका डर ही चरम गैरन्टी नहीं,—साथ आपको चलना ही पड़ेगा।"

विप्रदासने हँसकर कहा—"पुरुष होतीं तो समझतीं कि इससे बड़ी गैरन्टी संसारमें और कोई नहीं है।— लेकिन मैं तो कुछ खा-पी नहीं आया!"

"खा-पी तो मैं भी नहीं आई।"

"यह तुम्हारा ठीक है। लेकिन थोड़ी ही देर बाद 'रोस्ट' बाला बड़ा स्टेशन आयगा, वहाँ चाहो तो खा-पी सकोगी।"

वन्दनाने कहा—"पर उसकी चाह नहीं होगी। उपवास मैं भी कर सकती हूँ।"

विप्रदासने कहा—"पर सकनेसे किसीको भी आराम नहीं होगा —मैं उतर जाऊँ।" फिर बैरिस्टर साहबसे कहा—"आप साथ हैं ही, जरा देखियेगा। अगर जरूरत पड़े तो—"

वन्दना चीख उठी—"जंजीर खींचकर गाड़ी खड़ी करा दें! सो तो मैं भी कर सकती हूँ।" इतना कहकर खिड़कीसे मुँह निकालकर घरके नौकरोंसे कह दिया—"तुम लोग घर जाकर माँसे कह देना कि बाबू साहब हम लोगोंके साथ

चले गये हैं। कल या परसों लौट आयेंगे।"

गाड़ी छूट गई।

वन्दना विप्रदासके पास आकर बैठ गई, बोली—"अच्छा मुखर्जी साहब आप भी तो कम जिद्दी नहीं हैं!"

"क्यों?"

"आपने तो जबरदस्ती इन लोगोंको गाड़ीमें चढ़ा लिया, और वे लोग थे मतवाले,—अगर वे न उतरकर मारपीट कर बैठते?"

विप्रदासने कहा—"तो उनकी नौकरी चली जाती!"

वन्दनाने कहा—"लेकिन हम लोगोंका क्या जाता? देहकी हड्डी-पसली? नौकरीसे बढ़ भी तो कोई तुच्छ वस्तु नहीं!"

विप्रदास और वन्दना दोनों ही हँसने लगे। दूसरी महिलाने भी जरा जरा हँसकर मुँह फेर लिया। सिर्फ उसके पति पंजाबके नवीन बैरिस्टर मुँह गम्भीर बनाये बैठे रहे।

वन्दनाके पिताने अबतक इधर विशेष ध्यान नहीं दिया था, बातचीतके अन्तिम शब्द कानमें पड़ते ही वे सीधे होकर बैठ गये और बोले—"नहीं नहीं, हँसीकी बात नहीं, ऐसी वारदातें ट्रेनमें अक्सर हुआ ही करती हैं, अखबारोंमें देखता हूँ। इसीसे जोर-जबरदस्ती करनेकी मेरी इच्छा नहीं थी—रातकी गाड़ीसे आते तो सब तरहसे ठीक रहता।"

वन्दनाने कहा—"रातकी गाड़ीमें भी अगर मतवाले साहब होते तो?"

पिताने कहा—"तो क्या सचमुच ही होते बेटी! तब तो फिर शरीफ लोगोंको आना-जाना ही बन्द कर देना पड़े।" इतना कहकर वे एक मोटी चुरट सुलगानेमें लग गये।

वन्दनाने आहिस्तेसे कहा—"मुखर्जी साहब, 'शरीफ' शब्दपर बापूजीसे जिरह मत करने लगियेगा।"

विप्रदासने गरदन हिलाकर हँसते हुए कहा—"नहीं। सो मैं समझ गया।"

"अच्छा मुखर्जी साहब, बचपनमें आपने कभी किलेके मैदानमें इन साहबोंके साथ मारपीट की है? सच कहियेगा?"

"नहीं, ऐसा सौभाग्य कभी नहीं हुआ।"

वन्दनाने कहा—"लोग कहते हैं कि अपने देशवासियोंके लिए आप एक

'टेरर' (terror = आतंक) हैं। सुनती हूँ, घरके सब आपसे शेरकी तरह डरते हैं। क्या यह सच है?"

"लेकिन तुमने सुना किससे?"

बन्दनाने धीमे कण्ठसे कहा—"मीजीसे।"

"क्या कहा उन्होंने?"

"कहती थीं, डरके मारे देहका खून पानी हो जाता है।"

"देहका पानी! मक्काके फिरंगियोंको देखकर जैसा हम लोगोंको हो गया था—वैसा?"

बन्दना हँसती और फिर छिपाती हुई बोली—"हाँ, करीब-करीब वैसा ही।"

विप्रदास बोले—"उसकी जरूरत है। नहीं तो किसीको शासनमें नहीं रखा जा सकता। तुम्हारे शादी हो जानेपर यह विद्या मैं भैयाजीको सिखा आऊँगा।"

बन्दनाने कहा—"जरूर। अगर सब विद्याएँ सबके लिए मौजूँ नहीं होतीं, यह भी ध्यान रखिएगा। मीजी मेरी तुमसे ही भली मानस हैं, अगर मैं होती तो और सबोंको मुझसे ही डरकर चलना पड़ता।"

विप्रदासने कहा—"अर्थात्, डरते घर भरके लोगोंका खून पानी हो जाता! कोई ज्यादा आश्चर्यकी बात नहीं। कारण, थोड़े ही समयमें जो नमूना दिखा आई हो, उससे विश्वास करनेको ही जी चाहता है। इससे कम भी तो जल्दी नहीं भूल सकोगी।"

बन्दना मन ही मन जरा उत्तेजित हो उठी, बोली—"आपकी माँने क्या किया है जानते हैं? मैं छूके देने लगी तो वे पीछे हट गईं?"

विप्रदासने जरा भी आश्चर्य प्रकट न किया, कहा—"मेरी माँका सिर्फ इतना ही देख आई हो, और कुछ देखनेका मौका न मिला। मिलता तो समझतीं कि इस जरा-सी बातपर गुस्सा होकर बगैर खाये-पीये चले आनेके बराबर भूल कुछ हो ही नहीं सकती।"

बन्दनाने कहा—"मनुष्यके आत्म-सम्मान नामकी भी तो कोई चीज होती है?"

विप्रदासने जरा हँसकर कहा—"यह आत्म-सम्मानकी धारणा पाई कहाँसे? स्कूल-कालेजकी मोटी मोटी किताबें ही पढ़के तो! मगर माँ तो अँगरेजी नहीं जानतीं, किताबें भी नहीं पढ़तीं। उनके जाननेके साथ तुम्हारी धारणा मेल कैसे

आ सकती है ?"

बन्दनाने कहा—"पर मैं सिर्फ अपनी ही धारणाको लेकर चल सकती हूँ।"

विप्रदासने कहा—"चलनेसे अधिकांश क्षेत्रोंमें गलती होगी, जैसे कि आज तुमसे हुई है। विदेशकी किताबोंसे जो सीखा है उसीको एकान्त रूपसे मान लेनेके कारण ही माँसे इस तरह चली आ सकीं; नहीं तो न आ सकती। बड़े बूढ़ोंका अकारण अपमान करनेमें संकोच होता। आत्म-मर्यादा और आत्म-अभिमानमें क्या फर्क है सो समझ जातीं।"

बन्दनाने बातको भले ही न समझा हो, पर यह समझ गई कि उसके आजके आचरणने विप्रदासके हृदयमें चोट पहुँचाई है। और वह अपने लिए नहीं अपनी माँके लिए।

दो-तीन मिनट चुप रहकर बन्दना सहसा पूछ उठी—"माँकी तरह आप खुद भी बहुत कट्टर हिन्दू हैं, नहीं ?"

विप्रदासने कहा—"हाँ।"

"उतना ही छुआ-छूतका विचार करके चलते हैं ?"

"हाँ चलता हूँ।"

"और लोग देखकर प्रणाम करने आवें तो उन्हींकी तरह पीछे हट जाते हैं ?"

"हाँ, हट जाता हूँ। हम लोगोंको समय-असमयका हिसाब मानकर चलना पड़ता है।"

"मेरी दीदीको भी शायद इसी तरह आपके संग चलना होगा ?"

"यह तुम अपनी दीदीसे ही पूछना। हाँ, पारिवारिक नियम उनको भी मानकर चलना पड़ता है।"

बन्दना हँसके बोली—"यानी, घेरेके भीतर बगैर चलनेका और कोई रास्ता ही नहीं ?"

विप्रदास भी हँसा, और बोला—"नहीं, और नहीं। जैसे दिनकी गाड़ीसे छोड़कर घर हो तो आदमीको रातको गाड़ीसे आना पड़ता है,—यह साफ-सफा स्वाभाविक नियम है।"

बन्दनाने कहा—"जीजी स्त्री हैं, स्वभावतः दुर्बल हैं—उनपर सभी नियम लागू किये जा सकते हैं, मगर द्विजूबाबू भी तो, सुना है, पारिवारिक नियम मानकर नहीं चलते, इस विषयमें और महाशयका क्या अभिमत है ?"

यह प्रश्न वन्दनाने चुटकी लेनेके लिए ही किया था, और वह चुभ जायगा, ऐसी ही उसे आशा थी; किन्तु विप्रदासके चेहरेपर उसका कोई चिह्न ही नहीं नजर आया, उन्होंने वैसे ही हँसते हुए उत्तर दिया—"ये सब गूढ़ तथ्य हैं और इनका अधिकारीके सिवा अन्य किसीको बताना निषिद्ध है।"

"द्विजू बाबू कुछ तो जान सकेंगे ?"

विप्रदासने गरदन हिलाते हुए कहा—"समय आनेपर जान सकेगा। वह जानता है कि रक्त-मांसके विषयमें वेदको किसी तरहका पक्षपात नहीं है।'

क्षण-भरके लिए वन्दनाका चेहरा फक पड़ गया। इसके बाद वह क्या पूछे, कुछ सोच न सकी।

उसका यह परिवर्तन विप्रदासकी तीक्ष्ण दृष्टिसे छिपा न रहा।

इतनेमें वन्दनाके पिताने पुकारा—"बिटिया, मुझे जरा पानी तो दे, पीनेको।"

वन्दना उठी और सुराहीसे पानी देकर वापस अपनी जगहपर बैठ गई। इसके बाद फिर द्विजदासकी बात छेड़नेमें उसे डर मालूम हुआ। अन्य प्रसंग छेड़ते हुए उसने कहा—"दीदीकी खातिर लिए नहीं, पर स्वयं माँजीको अगर मेरे बगैर खाये-पीये चले आनेसे दुःख हुआ हो तो मुझे भी दुःख होगा। मैं अब यही बात सोच रही हूँ।"

विप्रदासने कहा—"तुम्हारी दीदीको दुःख होगा—यह तो हुई बड़ी बात, और मेरी माँ जो अव्यक्त होगी वेदना अनुभव करेंगी—वह हो गई तुच्छ बात। इसके मानी हुए, आदमी असल चीजका नहीं पहचान सकनेपर वैसी उल्टी चिन्ता करने लगता है।'

वन्दनाने कहा—"इसे उल्टी चिन्ता क्यों कहते हैं? बल्कि यही तो स्वाभाविक है।"

विप्रदास चुप हो रहे। उनके क्षुब्ध मनका चेहरा वन्दनाने देख लिया।

बाहर अँधेरा होता आ रहा था कुछ भी दीख नहीं पड़ता, फिर भी खिड़कीके बाहर देखती हुई वन्दना बहुत देरतक चुपचाप बैठी रही। और दिन इस समय गाड़ी हावड़ा पहुँच जाया करती थी, किन्तु आज अब भी तीन घण्टेकी देर है। उसने मुँह फेरकर देखा कि विप्रदास बेगमेंसे एक छोटी-सी पॉकेट-बुक निकालकर उसमें कुछ लिख रहे हैं। पूछा—"अच्छा मुखर्जी साहब,

एक बातका जवाब दीजियेगा ?"

"कौनसी बातका ?"

"आप कह रहे थे न, हम लोगोंका आत्म सम्मान-ज्ञान सिर्फ स्कूल-कालेजों-की किताबोंसे पाई धारणा है। मगर आपकी माँ तो स्कूल-कालेजमें नहीं पढ़ीं, उनकी धारणा कहाँकी सिखी है ?"

विप्रदास विस्मित हो गये, पर कुछ बोले नहीं।

वन्दनाने फिर कहा—"उनके सम्बन्धमें अपने कुसंस्कारको मैं अपने मनसे हटा नहीं पा रही हूँ। गुरुजन हैं, मैं इनकार नहीं करती, पर संसारमें वही बात क्या सब बातोंसे बड़ी है ?"

विप्रदास पूर्ववत् स्थिर बैठे रहे।

वन्दना कहने लगी—"आज हम लोग थे उनके घरपर बिन-बुलाये मेहमान। यह तो मेरी किताबोंमें पढ़ी विदेशी शिक्षा नहीं है ? फिर भी,—यह सब कुछ नहीं—सिर्फ उम्रमें छोटी होनेसे ही मेरे अपमानको आप लोग अग्राह्य कर देंगे ?"

अब भी विप्रदास कुछ नहीं बोले—वैसे ही चुप रहे।

वन्दना कहने लगी—"फिर भी उनसे मैं क्षमा माँगती हूँ। मेरे आचरणके लिए वोभी दुःख ना पावें।" फिर जरा ठहरकर बोली—"मेरे माँ-बाप विलायत गये थे इसलिए उन लोगोंको मेम और साहब सिवा वे और कुछ सोच ही नहीं सकते। सुना है कि इसी अपराधसे मामाके आजतक मौसीकी कामनाकी सम्मति नहीं हुई है। उनकी धारणासे मेरी धारणा मेल नहीं खावेगी फिर भी उनसे कहियेगा कि मैं कुछ भी क्यों न होऊँ, अपमान सिवा अपमानके और कुछ नहीं हो सकता। बीबीजी साथ करें तो भी नहीं।"—कहते-कहते उसकी आँखोंकी कोरें आँसुओंसे भर आईं।

विप्रदासने धीरेसे कहा—"मगर उन्होंने तो तुम्हारा अपमान किया नहीं।"

वन्दनाने जोर देकर कहा—"जरूर किया है।"

विप्रदासने उसी क्षण जवाब नहीं दिया, कई क्षण चुप रहकर कहा—"नहीं, अपमान तुम्हारा माँने नहीं किया। मगर, खुद उनके सिवा यह बात तुम्हें और कोई समझा भी नहीं सकेगा। बहस करके नहीं, उनके पास रहकर ही तुम्हें यह बात समझनी होगी।"

वन्दना खिड़कीके बाहर देखती रही।

विप्रदास कहने लगे—"एक दिन पिताजीके साथ माँका झगड़ा हो गया था। कारण तुच्छ था किन्तु वह उठा बहुत बड़ा। तुमसे सब बातें कही नहीं जा सकतीं मगर उसी दिन मैंने समझा था कि मेरी इस बिना पढ़ी-लिखी माँका आत्म-सम्मानका ज्ञान कितना गहरा है।"

वन्दनाने सहसा मुड़कर देखा कि अपरिसीम मातृ-गर्वसे विप्रदासका चेहरा मानो उद्भासित हो उठा है। परन्तु वह कुछ भी बोली नहीं और खिड़कीके बाहर ही देखती रही।

विप्रदास कहने लगे—"बहुत दिनों बाद किसी एक बातके सिलसिलेमें एक दिन यही बात माँसे मैंने पूछी थी—माँ इतना जबरदस्त आत्म-सम्मानका ज्ञान तुमने पाया कहाँसे!"

वन्दनाने मुँह फेरे बगैर ही कहा—"क्या कहा उन्होंने?"

विप्रदासने कहा "जानती होगी शायद कि मैं माँका अपना लड़का नहीं हूँ। उनकी अपनी दो सन्तानें हैं—द्विजू और कल्याणी। माँने कहा,—तुम तीनोंको एक साथ एक सिंहासनपर जिन्होंने आदमी बनानेका भार सौंपा था उन्होंने ही यह किया मुझे भी भी बेटा और किसीने नहीं। उसी दिनसे जानता हूँ कि माँके इस गम्भीर आत्म-सम्मान जानने ही किसीको एक दिनके लिए भी वह जानने नहीं दिया कि वे मेरी जननी नहीं हैं, विमाता हैं। समझ सकती हो इसका अर्थ?"

क्षण-भर चुप रहकर फिर वे कहने लगे—"अभिवादनके उत्तरमें किसने कितना हाथ उठाया, कौन कितना पीछे हट गया, नमस्कारके प्रति-नमस्कारमें किसने कितना सिर झुकाया—इस बातको लेकर मर्यादाकी लड़ाई सभी देशोंमें है अहंकारके नशेकी खुराक तुम्हें अपनी पाश्चात्य-पुस्तकोंके पन्ने-पन्नेमें मिलेगी, किन्तु माँ न होकर भी पराये लड़केकी माँ होकर जिस दिन माँने हमारे बड़े परिवारमें प्रवेश किया था, उस दिन आश्रित आत्मीय-परिजनोंके प्रत्येक गलेमेंसे जिनकी बैठी मानो बाहर निकली पड़ती थी। परन्तु जिस चीजसे उन्होंने सारे विषको अमृतमें परिणत कर दिया वह गृहस्वामिनीका अभिमान नहीं था, गृहिणीपनेकी जबरदस्ती नहीं थी बल्कि माँकी स्वकीय मर्यादा थी। वह इतनी ऊँची है कि उस कोई कल्पना नहीं कर सका। परन्तु यह सब है सिर्फ

हमारे ही देशमें। विदेशी तो इस बातकी खबर ही नहीं रखते, वे अखबारोंकी खबरें देखकर ही इन लोगोंको 'दासी' कह दिया करते हैं अन्तःपुरकी बेड़ी पड़ी बाँदी बताते हैं। बाहरसे शायद ऐसा ही दीख पड़ता हो—उन्हें मैं दोष नहीं देता—किन्तु घरकी दास-दासियोंकी भी सेवाके पीछे अन्नपूर्णाकी राजेश्वरी मूर्तिपर यदि उन लोगोंकी दृष्टि नहीं पड़ती तो न सही, पर क्या तुम लोगोंकी भी नहीं पड़ेगी!"

वन्दना अभिभूत दृष्टिसे विप्रदासके मुँहकी ओर देखती रह गई।

बैरिस्टर साहब अकस्मात् जोरसे बोल उठे—"ट्रेन हावड़ा-प्लेटफार्ममें 'इन' कर रही है।"

वन्दनाके पिताको शायद तन्द्रा आ गई थी, वे चौंककर बोले—"आ गयी।"

वन्दनाने मृदु कण्ठसे चुपकेसे कहा—"मुझे कलकत्ते उतरनेमें अब अच्छा नहीं लग रहा है, मुखर्जी साहब! इच्छा होती है कि आपकी माँके पास लौट जाऊँ और जाकर कहूँ कि, माँ, मैंने अच्छा नहीं किया, मुझे क्षमा करें।"

विप्रदास सिर्फ हँस दिये, कुछ बोले नहीं। स्टेशनपर उतरकर पूछा—"आप कहाँ जायँगे?"

रे-साहबने कहा—"मैं ग्रेट-होटलमें ठहरा करता हूँ, उन लोगोंको तार भी कर दिया है—वहीं जाऊँगा।"

इस आदमीके सामने 'ग्रेट होटल' की बातसे वन्दनाको मानो कुछ लज्जा सी मालूम होने लगी।

पंजाबके बैरिस्टर साहब गाड़ीके अत्यन्त लेट होनेपर इससे ज्यादा क्षोभ प्रकट करते हुए बार-बार जताने लगे कि उन्हें भी एन० आर० की लाइनसे जाना है किन्तु वेटिंगरूमके सिवा अब और कोई चारा नहीं।

विप्रदास चुपचाप खड़े हैं रायसाहब खुद भी मानो कुछ लज्जित होकर बोले—"लेकिन विप्रदास, तुम—तुम भी जान पड़ता है हम लोगोंके साथ—"

"ग्रेट होटलमें?"—कहकर विप्रदास हँस दिया, बोला—"मेरे लिए चिन्ता न कीजिए। बहूबाजारमें हिस्सेका एक मकान है,—यहाँ अक्सर आना-जाना पड़ता है—वहाँ नौकर-चाकर सभी हैं,—अच्छा, आज वहीं क्यों न चलिए?"

वन्दना पुलकित हो उठी—"चलिए, सब वहीं चलें।"

उसके सिरसे मानो एक बोझ-सा उतर गया। आनन्दके आवेशसे अब

दोनों सहभागियोंको उन्होंने सादर आह्वान किया और फिर सबके सब मोटरमें आ बैठे।

९

वन्दनाने सुबह उठकर देखा कि इस मकानके सम्बन्धमें उसने जैसा सोचा था, वैसा नहीं है। समझा था कि मरलोक रहनेका वासा सदैला होगा; शायद कोने-कोनेमें कूड़ा करकट, सीढ़ियोंपर थूक, दीवालोंपर पानकी पीक, टूटा-फूटा असबाब मैले-कुचैले बिछौने, छतकी धरनी-कड़ियोंमें धुएँकी कालिख, सब मिलाकर सब—इस तरह सब निर्लज्जताका राज्य होगा। कल रातको मामूली रोशनीमें थोड़े-से समयमें कुछ देख नहीं पाया था, किन्तु आज उसे मकानकी सुव्यवस्था और स्वच्छतापर सचमुच ही आश्चर्य हुआ। भारी मकान है, बहुतसे कमरे हैं कई बरामदे हैं, सब-कुछ साफ-सुथरा चमक रहा है। दरवाजेके बाहर एक अधेड़ उमरकी विधवा सी खड़ी था; देखनेमें भले-घरानेकी सी लगती है उसने गलेमें आँचल डालकर[1] प्रणाम करते ही वन्दना मारे संकोचके चंचल हो उठी।

उसने कहा—"दीदीबाई, आपके लिए ही खड़ी हूँ, चलिए नहान-घर दिखा दूँ। मैं इस घरकी दासी हूँ।"

वन्दनाने पूछा—"बाबूजी उठ गये?"

"नहीं कल उन्हें सोनेमें देर हो गई थी, शायद उठनेमें भी देर हो।"

"हम लोगोंके साथ और भी दो जने जो आये थे वे?"

"नहीं वे भी अभी नहीं उठे।"

"तुम्हारे बड़े बाबू साहब? वे भी सो रहे हैं?"

दासीने हँसकर कहा—"नहीं, वे गंगास्नान संध्या-पूजासे निवृत्त होकर आफिसमें चले गये हैं। उन्हें खबर भेजूँ क्या?"

वन्दनाने कहा—"नहीं, इसकी जरूरत नहीं।"

नहान-घर यहाँसे कुछ दूर है, एक छोटेसे बरामदेको पार करके जाना पड़ता है। वन्दनाने जाते-जाते कहा—"तुम्हारे यहाँ 'बाथ-रूम' सोनेके कमरेके

---

१ बंगालमें स्त्रियाँ देवी-देवता और गुरुजन या पूजनीय जनोंको इसी तरह नमस्कार करती हैं।

पास नहीं रह सकता, क्यों ?"

दासीने कहा—"नहीं। माँ जी जब कभी-कभी कालीजीके दर्शनके लिए कलकत्ते आती हैं तो वे इसी मकानमें रहती हैं न, इसीसे ऐसा यहाँ नहीं हो सकता।"

वन्दनाने मन ही मन कहा, यहाँ भी वही प्रबल प्रतापी माँ! आचार-अनाचारका कठोर शासन। वह जाकर धोती-अंगोछा-कुरती वगैरह ले आई, फिर बोली— "यहाँ दो-चार रोज रहना पड़ा तो तुम्हें क्या कहकर बुलाया करूँ? तुम्हारे सिवा शायद कोई दासी नहीं है?"

उसने कहा—"है, पर उसे बहुत काम रहता है। ऊपर आनेका समय ही नहीं मिलता। जो भी कुछ जरूरत हो मुझहीसे कहिएगा, बीबीबाई, मेरा नाम अन्नदा है। लेकिन मैं गँवार-गौवारी हूँ, सम्भव है, मुझसे गलतियाँ हो जायँ, कुछ खयाल न कीजिएगा।"

उसके विनय-वचनसे वन्दनाने मन ही मन खुश होकर पूछा—"तुम्हारा घर कहाँ है अन्नदा? घरपर तुम्हारे कौन-कौन हैं?"

अन्नदाने कहा—"घर मेरा इन्हींके गाँवमें है, बलरामपुरमें। एक लड़का है, उसे इन्हीं लोगोंने पढ़ा-लिखाकर काम दे दिया है, बहूको लेकर वह वहीं देशमें रहता है। मजेमें है, बीबी-बाई।"

वन्दनाने कुतूहलसे पूछा—"तो फिर तुम खुद क्यों नौकरी कर रही हो, चाहो तो बहू-बेटाके साथ घरपर ही रह सकती हो?"

अन्नदाने कहा—"चाहती तो बहुत हूँ बीबी-बाई, लेकिन बनता नहीं। तकलीफके दिनोंमें बाबू लोगोंको जबान दी थी कि मेरा लड़का अगर आदमी बन जाय तो मैं दूसरोंके लड़कोंको आदमी बनानेका भार लूँगी। उस भारको माथेसे उतारते नहीं बनता। देशके बहुतसे लड़के यहाँ परदेशमें पढ़ते हैं। मैं न देखूँ, तो उन्हें देखनेवाला और कोई नहीं है।"

"वे शायद इसी मकानमें रहते हैं?"

"हाँ इसी मकानमें रहकर कालेजमें पढ़ते हैं। पर आपको देर हुई जा रही है, मैं बाहर ही हूँ, बुलाते ही आ जाऊँगी।"

वन्दनाने बाथ-रूममें जाकर देखा कि भीतर सब तरहकी व्यवस्था है। पास ही-पास तीन कमरे हैं, घुमा-फूलसे नहानेके लिए जितनी तरहकी तरकीबें आदमीके दिमागमें आ सकती हैं उनमेंसे कोई भी छूटी नहीं है। समझ गई कि

यह सब माँके व्यवहारके लिए है। संगमरमरका फर्श, संगमरमरकी नहानेकी चौकी और संगमरमरका परिण्डा है; एक तरफ तीन-चार ताँबेके हण्डे—शायद गंगाजल रखनेके लिए,—रोज माँजने-घिसनेसे चमक रहे हैं। माँ यहाँ कब आई थी और फिर कब आयेंगी निश्चित किसीको नहीं मालूम, फिर भी, साफ-सफाईका सिलसिला कहीं नजर नहीं आ सकता। ऐसी जतनके साथ सारी व्यवस्था है कि मालूम होता है जैसे वे यहीं मौजूद हों। ऐसी व्यवस्था सिर्फ हुक्म चलाकर या शासन करके नहीं कराई जा सकती; देखते ही कल्पनाने इस बातको महसूस किया कि उससे भी कोई बड़ी बात सब-कुछ नियंत्रण कर रही है। और यह माँ—यह स्त्री—इस गृहस्थीमें सर्वसाधारणसे कितने ऊँचे स्थान पर है इस बातको वह बहुत देरतक अपने मनमें स्तब्ध होकर खड़ी-खड़ी सोचती रही। कहानी, निबन्ध और पुस्तकोंमें भारतीय नारी-जातिके अनेक दुःखोंकी बात उसने पढ़ी है उनकी हीनताकी अवस्थाके मारे स्वयं नारी होकर वह मन-ही-मन मर-मर गई है—यह झूठ भी नहीं है, पर इस घरमें अकेली खड़ी होकर उन सब बातोंको सत्य मान लेनेमें आज उसे संकोच होने लगा।

उसके बाहर आनेपर ममताने हँसते हुए कहा—"बहुत देर हो गई दीदी भाई, करीब दो घंटे हुए—सब नीचे ड्रॉइंगरूममें आपकी बाट देख रहे हैं। चलिए।"

"तुम्हारे बड़े बाबू ऑफिससे आ गये?"

"हाँ, वे भी नीचे आ गये हैं?"

"शायद हम लोगोंके साथ नहीं खायेंगे?"

ममता हँसती हुई बोली—"खायेंगे, तो भी वह दोपहर बाद बीबी, और आज तो भी नहीं। एकादशी है,—शामके बाद शायद कुछ फल-फलहरी खायेंगे।"

कल्पना किसी तरह मानो समझ गई थी कि वह भी इस घरमें ठीक दासी जैसी नहीं है; उसने कहा—"वे तो कोई आजकल घरकी विधवा नहीं हैं, फिर एकादशीका उपवास भला क्यों करने लगे? कल रेलमें एकादशीका न सही दशमीका उपवास तो उनका यों ही हो चुका है।"

ममताने कहा—"जो होने दो, उपवाससे उन्हें कोई तकलीफ नहीं होती। माँ कहा करती हैं कि पहले जनममें तपस्या करके जितने इस जनममें उपवास

सिद्धिका घर पाया है। उनका खाना देखकर दंग रह जाना पड़ता है।"

वन्दनाने नीचे आकर देखा कि उन लोगोंके अभ्यासके अनुसार वहाँ चाय, पावरोटी, अण्डे आदि सब चीजें टेबिलपर सजी हुई हैं और पिता तथा सतीक बैरिस्टर साहब भूखसे चंचल हो रहे हैं। अधैर्य उन लोगोंका लगभग दोष सीमा तक पहुँच चुका है। वन्दनाको देखते ही अखबार एक तरफ फेंककर पिताने शिकायतके स्वरमें कहा—'अह्—इतनी देर कर दी बेटी, इस रूल तो अब कोई काम होता नहीं दीखता।"

विप्रदास पास ही बैठे थे, वन्दनाने पूछा—"मुखर्जी साहब, आप नहीं पीयेंगे ?"

विप्रदास बातको समझ गये, हसके बोले—"चाय मैं नहीं पीता, सिर्फ दाल भात खाया करता हूँ। उसका अभी वक्त नहीं हुआ,—मेरे लिए चिन्ता मत करो, तुम बैठ जाओ।"

वन्दनाने इसका उत्तर नहीं दिया पिता और अन्य दोनों अतिथियोंको लक्ष्य करके कहा— मुझसे गलती हो गई है; मुझे कहला भेजना चाहिए था, मगर भूल गई। मेरी चाय पीनेकी इच्छा नहीं है, आप लोग अब देर न कीजिए,—शुरू कर दीजिए। मैं बल्कि आप लोगोंका चाय तैयार किये देती हूँ।"—इतना कहकर वह उसी काम काममें लग गई।

सब कोई व्यस्त हो उठे। नौकर एक तरफ खड़ा हुआ था वह मारे संकोचके सिकुड़-सा गया; पिताने उद्वेगके साथ पूछा— 'तुम्हारी तबीयत तो खराब नहीं है बेटी ?" सतीक बैरिस्टर साहब क्या करें कुछ सोच ही न सके।

वन्दनाने चाय बनाते-बनाते कहा—"नहीं बापूजी तबीयत खराब नहीं है, ऐसे ही खानेकी रुचि नहीं है।"

"तो रहने दो। कल ज्यादा रात गये खाया था, शायद अच्छी तरह हजम नहीं हुआ होगा। इसके सिवा काफी दिन चढ़ चुका, पित्त भी चढ़ गया होगा।"

"शायद यही बात होगी। दोपहर होनेपर मुखर्जी साहबके साथ बैठके दाल-भात खाऊँगी, इस घरमें उसे शायद हजम कर सकूँगी।"

उसकी बातपर और किसीने उतना खयाल नहीं किया, पर विप्रदासके चेहरेके सामनेसे क्षणभरके लिए एक काली छाया-सी तैर गई।

यह सब माँके व्यवहारके लिए है। संगमरमरका फर्श, संगमरमरकी नहानेकी चौकी और संगमरमरका परिण्डा है एक तरफ तीन चार ताँबेके हण्डे—शायद गंगाजल रखनेके लिए,—रोज माँजने-घिसनेसे चमक रहे हैं। माँ यहाँ कब आई थीं और फिर कब आयेंगी निश्चित किसीको नहीं मालूम, फिर भी, लापरवाहीका चिह्नतक कहीं नजर नहीं आ सकता। ऐसे यत्नके साथ सतर्क व्यवस्था है कि मालूम होता है जैसे वे यहीं मौजूद हों। ऐसी व्यवस्था सिर्फ हुक्म चलाकर या शासन करके नहीं कराई जा सकती; देखते ही वन्दनाने इस बातको महसूस किया कि उससे भी कोई बड़ी बात सब-कुछ नियंत्रण कर रही है। और वह माँ—यह भी—इस घरानेमें सर्वसाधारणसे कितने ऊँचे स्थान-पर है इस बातको वह बहुत देरतक अपने मनमें स्तब्ध होकर खड़ी-खड़ी सोचती रही। कहानी, निबन्ध और पुस्तकोंमें भारतीय नारी-जातिके अनेक दुःखोंकी बात उसने पढ़ी है उनकी हीनताकी व्यथाके मारे स्वयं नारी होकर वह मन-ही-मन मर-मर गई है—यह झूठ भी नहीं है, पर इस घरमें अकेली खड़ी होकर उन सब बातोंको सत्य मान लेनेमें आज उसे संकोच होने लगा।

उसके बाहर आनेपर अन्नदाने हँसते हुए कहा—"बहुत देर हो गई बीबी बाई करीब दो बजे हुए—सब नीचे रसोईघरमें आपकी बाट देख रहे हैं। चलिए।"

"तुम्हारे बड़े बाबू आफिससे आ गये?"

"हाँ, वे भी नीचे आ गये हैं।"

"शायद हम लोगोंके साथ नहीं खायेंगे?"

अन्नदा हँसती हुई बोली—"खायेंगे, तो भी वह दोपहर बाद तीसरे, और आज तो भी नहीं। एकादशी है,—शामके बाद शायद कुछ फल-फलहरी खायेंगे।"

वन्दना किसी तरह मानो समझ गई थी कि यह भी इस घरमें ठीक दासी जैसी नहीं है; उसने कहा—"वे तो कोई मामूली घरकी विधवा नहीं हैं, फिर एकादशीका उपवास भला क्यों करने लगीं? कल रेलमें एकादशीका न सही दशमीका उपवास तो उनका यों ही हो चुका है।"

अन्नदाने कहा—"सो होने दो, उपवाससे उन्हें कोई तकलीफ नहीं होती। माँ कहा करती हैं कि पहले जन्ममें तपस्या करके जिन्होंने इस जन्ममें उपवास

रात्रि सब सामान आयेगा।"

वन्दना चकित रह गई, बोली—"यह कैसी बात! यह समाचार तुम लोगोंको किसने दी!"

"बड़े बाबू खुद ही हुक्म दे गये हैं।"

"मगर वहाँका असबाब-कुलाब ये लोग लायेंगे कहाँ? इसी मकानमें? तुम लोगोंकी माँ सुनेंगी तो क्या कहेंगी?"

अनदा सकपका-सी गई, बोली—"नहीं, वे नहीं सुन पायेंगी। नीचेके एक कमरेमें इन्तजाम किया गया है। बासन-बरतन होटलवाले ही ले आयेंगे। कोई दिक्कत न होगी।"

वन्दनाने कहा—"हुक्म तो दे गये हैं, पर उसे तामील किसने किया? उसके पास एक बार मुझे ले जा सकती हो?"

"चलिए।"

मुखर्जियोंका एक बड़ा-भारी तिजारती कारोबार कलकत्तेमें चालू है। नीचेके मंजिलके तीन-चार कमरोंमें उसका दफ्तर है, मुनीम-गुमाश्ते, क्लार्क, दरबान, मैनेजर वगैरह, कारबारमें जितने तरहके कर्मचारियोंकी जरूरत होती है, सब वहीं काम करते हैं। वन्दनाके पहुँचते ही सब उठके खड़े हो गये। उमर और ओहदेके लक्षणोंसे मैनेजरको उसने सहजमें ही पहचान लिया, और इशारेसे बुलाकर कहा—"होटलमें क्या आप खुद जाकर हुक्म दे आये हैं?"

मैनेजरके गर्दन हिलाकर स्वीकार करनेपर उसने कहा—"तो फिर और एक दफे जाइए, उन लोगोंको मना कर आइए।"

मैनेजर अचम्भेमें पड़ गया, बगलें झाँकता हुआ बोला—"बड़े बाबूके बगैर पूछे—"

वन्दनाने कहा—"तब तो शायद मना करनेका समय न रहेगा। मुखर्जी साहब नाराज होंगे तो मुझपर हो लेंगे। आपको कोई डर नहीं। जाइए, देर न कीजिए।"—इतना कहकर वह बिना उत्तरकी प्रतीक्षा किये ही चलनेको उद्यत हुई।

हतबुद्धि मैनेजरने सोचा, यह खूब रही! विप्रदासका हुक्म न मानना कठिन बात है यहाँतक कि उसे असम्भव भी कहा जा सकता है किन्तु इस अपरिचित लड़कीके सुनिश्चित संशयहीन शासनकी अपेक्षा करना भी कठिन

नौकर न-जाने क्या सोचकर कह बैठा—"आज एकादशी है, बाबू साहब तो उस रूज फल-फलहरीके सिवा और कुछ खायेंगे नहीं।"

वन्दना अभी-अभी यह बात सुन आइ थी कि आज एकादशी है फिर भी अनजान बनकर बोली—'सिर्फ फल फलहरी? बहुत हलकी खुराक है। वही मेरे लिए अच्छी रहेगी। क्यों, मुखर्जी साहब?"

विप्रदासने हँसते हुए गरदन तो हिलाई; पर कोई उनका इस तरह स्वच्छ-न्दतासे उपहास कर सकता है, यह बात आज ही उन्हें पहले-पहल मालूम हुई और उससे मानो वे मन ही मन दंग रह गये। और, उनके चेहरेकी तरफ देखकर वन्दनाने भी शायद यह बात महसूस की।

शहरका काम-काज निबटाकर जब वन्दना पिताके साथ घर लौटी तब तीसरा पहर बीत चुका था। वकील बैरिस्टर साहब आदि पर, चिड़ियाखाना, किलेका मैदान, विक्टोरिया-मेमोरियल वगैरह कलकत्तेकी देखने लायक सारी चीजें देखकर अबतक नहीं लौटे थे। रातकी गाड़ीसे ही उन लोगोंके आनेकी बात थी, किन्तु मौसम बदलकर विप्रदास आना उन लोगोंने स्थगित कर दिया है।

रायसाहब कपड़े बदलनेके लिए अपने कमरेमें चले गये। वन्दनाकी अपने कमरेके सामने अन्नदासे भेंट हो गइ। अन्नदाने हँसमुख हो शिकायतके स्वरमें उससे कहा—"जीजीबाइ सारा दिन तो बिना खाये-पीये बिता दिया,—अब जरा जल्दीसे हाथ-मुँह धो लीजिए, आपके लिए फल-फलहरी सब आ गई है, तबतक मैं उसे तैयार कर रखती हूं। क्यों ठीक है न?"

'मगर बड़े बाबू—मुखर्जी साहब? वे?"

अन्नदाने कहा—"उनके लिए व्याकुल होनेकी जरूरत नहीं जीजीबाई, यह तो उनका रोजका हाल है। खानेकी बनिस्बत न खाना ही उनका नियम है।"

"मगर वे हैं कहाँ?"

'दक्षिणेश्वर कालीजीके दर्शन करने गये हैं। आते ही होंगे।"

वन्दनाने कहा—'अच्छा तो ठीक है, उनके आनेपर तैयारी करना। लेकिन और सब लोग? उनका क्या इन्तजाम हुआ? अच्छा, चलो तो अन्नदा, तुम लोगोंका रसोईघर देख आऊं।'

अन्नदाने कहा—"चलिए, लेकिन इस बार उन लोगोंके खाने-पीनेका इन्तजाम रसोई-घरमें नहीं हुआ, जीजीबाई होटलसे इन्तजाम किया गया है—

आया वन्दना ! यह गुस्सा क्या नहीं उतरेगा !" उसके कण्ठ-स्वरमें अबकी बार कुछ स्नेहका पुट लगा हुआ था ।

वन्दनाने मृदु कण्ठसे जवाब दिया—"गुस्सा दिखाया क्यों था ! लेकिन सुनिए, आपके खानेकी फल-फलहरी सब आ चुकी है, तबतक आप, सन्ध्या पूजा कर लीजिए, इतनेमें मैं सँवार-सुधारकर तैयार कर देती हूँ। लेकिन यदि और किसीने किया तो मैं आज भी नहीं खाऊँगी, कहे देती हूँ।"

'अच्छा, मैं आया ।"—कहकर विप्रदास ऊपर चले गये ।

लगभग घण्टे भर बाद वन्दना एक सफेद संगमरमरके थालमें फल-फलहरी और कुछ मिठाई लेकर विप्रदासके कमरेमें आ खड़ी हुई। अन्नदाके हाथमें आसन और पानीका गिलास था। उसने पानी छिड़ककर और सावधानीसे पोंछके आसन बिछा दिया ।

विप्रदासने वन्दनाकी ओर देखकर विस्मयके साथ कहा—"तुम क्या अभी फिर नहाई हो !"

'आप खाने तो बैठिए ।"—कहकर उसने थाल सामने रख दिया ।

* * *

१०

विप्रदासने आसनपर बैठकर फिर वही सवाल किया—"सचमुच ही फिरसे नहा आई क्या ! यदि तबीयत खराब हो गई !"

"भले ही हो जाय, पर मेरे हाथसे न-खानेकी बहानेबाजी या छल अब मैं आपको नहीं करने दूँगी। यह मेरा प्रण है। साफ-साफ कहना पड़ेगा कि तुम्हारा छुआ नहीं खाऊँगा, तुम म्लेच्छ-घरकी लड़की हो !"

विप्रदासने हँसकर कहा—"किताबोंमें नहीं पढ़ा कि पुण्यात्माओंके लिए छूत-छातका सवाल नहीं होता ?"

वन्दनाने कहा—"पढ़ा है, पर आप न तो पुण्यात्मा हैं, और न भगवान्—हमारे जैसे ही गुण-दोषोंसे युक्त आदमी हैं। ऐसा नहीं होता तो मैं सचमुच ही उन बेचारोंका डिनर बन्द कराने न जाती।"

"मगर सच्चा कारण क्या है ?"

"सच्चा कारण ही आपको बता रही हूँ। आपके परिवारमें उसका चलन

नहीं समझना कैसा ही असम्भव है। क्षण भर विमूढ़की भाँति स्तब्ध रहकर वह दुविधाके स्वरमें बोला—"जी, जाऊँ तो फिर,—मना कर आऊँ? कुछ पेशगी भी लिया जा चुका है—"

"तो जाओ, जाने दीजिए, आप देर न कीजिए।" कहकर वन्दना ऊपर लौट आई।

शामके बाद लौटनेपर विप्रदासने यह बात सुनी। वह कुछ सोच ही न सके कि उन्हें खुश होना चाहिए या नाराज। रसोईघरमें जाकर देखा कि तैयारियाँ करीब-करीब पूरी हो चुकी हैं, वन्दना छोटे-से स्टूलपर बैठी हुई रसोइया महाराजके साथ काम करनेमें व्यस्त है। वह उठकर खड़ी हो गई और कृत्रिम विनयके स्वरमें बोली—"गुस्सेमें आकर मैनेजर बाबूको बरखास्त तो नहीं कर आये मुखर्जी साहब?"

विप्रदासने कहा—"मुखर्जी साहब ऐसे गुस्सैल हैं यह खबर तुम्हें किसने दी?"

वन्दनाने कहा—"लोग कहते हैं कि चोरकी गन्ध एक कोसपर दूसरे पा जाती है।"

विप्रदासने हँसकर कहा—"मेहमानोंके लिए क्या इन्तजाम होगा? उन सबको तो पक्के डिनरका अभ्यास है—उसका क्या?"

वन्दनाने कहा—"जिनका बिना डिनरके काम ही नहीं चल सकता उन्हें किसीके साथ होटल भिजवा दीजिएगा। टिकट रुपये मैं दूँगी।"

"मजाक नहीं है वन्दना, शायद यह अच्छा नहीं हुआ।"

"शायद अच्छा तब होता जब उन चीजोंको मँगाया जाता? माँ सुनतीं तो क्या करतीं—बताइए तो?"

विप्रदासने यह बात सोची नहीं हो, सो बात नहीं; पर वह कुछ तय नहीं कर पाये थे, बोले—"वे जान नहीं पातीं।"

वन्दनाने सिर हिलाकर कहा—"जान जातीं। मैं चिट्ठी लिखके बता देती।"

"क्यों?"

"क्यों? जो बात कभी नहीं की दो दिन इन बाहरके लोगोंको खुश करनेके लिए क्यों आप करें? हरगिज नहीं।"

सुनकर विप्रदास सिर्फ खुश ही नहीं हुए, आश्चर्यान्वित भी हुए।

कुछ देर चुप रहकर वह बोले—"मगर तुमने तो कल सुबहसे ही कुछ नहीं

बन्दनाने क्षणभर चुप रहकर पूछा—"लेकिन इसके बाद क्या कीजियेगा?"

"घर जाकर गोबर खाके प्रायश्चित्त करूँगा।"—कहकर वे हँस दिये। परन्तु उनके हँसनेपर भी बन्दना यह समझ न सकनेके कारण कि सच है या परिहास स्तब्ध रह गई।

विप्रदासने कहा—"माँके साथ तो समझौता कुछ-न-कुछ होगा ही, पर तुम्हारी दीदीको लजाने से जो छुटकारा पाऊँगा, वह उससे भी बड़ी बात होगी।" —इतना कहकर सिर हँसकर कहा, "क्यों, विश्वास नहीं हुआ? अच्छा, पहले ब्याह हो जाने दो, तब तुम मुखर्जी साहबकी बात समझ जाओगी।"—कहते हुए वे मेजपरका थाल बिलकुल साफ करके उठ खड़े हुए।

उधर डिनर तो रह हुई, पर अन्यान्य रुचिकर खाद्योंके आयोजनमें अवहेला नहीं की गई। विदाकी परितृप्तिके लिहाजसे कुछ भी कमी नहीं रही। परन्तु इन कामोंसे छुट्टी पाकर बन्दना जब बिस्तरपर लेटी तब सोचने लगी, उसके सम्बन्धमें विप्रदासका आचरण अप्रत्याशित भी नहीं था और शायद उसे रंग भी नहीं कहा जा सकता; और निकट आत्मीय या अच्छा होनेपर भी जिस बचपनसे अबतक उनसे घनिष्ठता और परिचय नहीं था वह भी इतने दिनोंकी पुरानी कहानी है कि उससे नये प्रकारसे आघात अनुभव करना हास्यास्पद नहीं बल्कि विडम्बना है। बन्दनाके दोष देते वक्त विप्रदासको माँ जो छू जानेके विचारने पीछे हट गई थीं उनके प्रतिवादमें बन्दना सबेरे खाने-पीने पहलेसे चली आई है। एक पिता-विहीन नास्तिक उद्धत धर्मसमनने उसे आघात न पहुँचाया हो सो बात नहीं तथापि उस मूढ़ताको भी किसी दिन भूल जाना आसान है; किन्तु विप्रदासने जो कुछ किया उसके प्रतिवादमें उसे क्या करना उचित है, यह उसकी समझमें न आया। विप्रदासने उसके हाथके छुए फल-मूल और मिठाई खाई सो सही पर अपनी तबीयतसे नहीं, संकटमें पड़कर, इस डरसे कि बलरामपुरकी तरह कहीं यहाँ भी वैसी बेहूदा वारदात न हो जाय। यह एक तरहसे पागलके हाथसे आत्म-रक्षा करनेका-सा हुआ। परन्तु विप्रदासने जो यह अनाचार हो गया है सो घर जाकर यह प्रायश्चित्त करेगा—इस बातको मन जाने कैसे उसने निश्चित सत्य समझ लिया और उससे उसकी आँखोंकी नींद जाती रही। और साथ ही यह बात भी उसने बहुत सोची कि बात ऐसी महत्त्व पूर्ण भी क्या है? हमारा उनका चलनेका मार्ग तो एक नहीं है,—संसारमें

नहीं है। न देशके घरमें, न यहाँ। फिर किसलिए आप वैसा काम करें?"

"पर तुम तो जानती हो ये सभी विलायत-फिरता हैं,—ऐसा खाना खानेके ही ये आदी हैं।"

वन्दनाने कहा—"आदी चाहे जिस बातके हों पर ये हैं तो भारतीय ही। भारतीय अतिथि डिनर बगैर खाये मर गये हों, ऐसी तो कोई नज़ीर नहीं है। सिवाय, यह बखेड़ा अथाह है। यह आपकी फिजूलकी बात है।"

विप्रदासने कहा—"तो कामकी बात क्या है सो बताओ?"

वन्दना—"सो मैं ठीक नहीं जानती। पर शायद यह बात ठीक है कि जो आप मुँहसे कहते हैं भीतरसे आप पूर्णरूपसे नहीं मानते। नहीं तो माँसे छिपाकर इस तरहकी व्यवस्था करनेको हरगिज राजी न होते। लोग आपसे फिजूल ही इतना डरते हैं। जिनसे डरना चाहिए वह आप नहीं, आपकी मा है।"

सुनकर विप्रदास ज़रा भी नाराज़ नहीं हुए, बल्कि हँसकर बोले—"तुमने दोनोंको पहचान लिया। पर यह इन्तज़ाम माँसे छिपाकर किया जा रहा था, यह बात तुमने किससे सुनी?"

वन्दनाने नाम नहीं बताया, सिर्फ़ इतना ही कहा—"मैंने दरियाफ्त करके जान लिया है। यह इतनी बड़ी दुर्घटना होती कि जीजी मुझे कभी भी क्षमा नहीं करतीं, हमेशा अभियोग करती रहतीं कि वन्दनाके कारण ही ऐसा हुआ। इसीसे ऐसा काम मैं आपको हरगिज नहीं करने दे सकती थी।"

विप्रदासने कहा—"तुम परम आत्मीय हो, रिश्तेदारीमें सबसे बड़ी हो। यह तुम्हारे लायक बात है। पर, चुपका-चोरी बगैर किये तुम्हारे हाथका मैं खा सकता हूँ कि नहीं, यह बात उस आदमीसे पूछी थी क्या? नहीं तो अब जाकर मालूम कर आओ, तबतक मैं इन्तज़ार करूँगा।" इतना कहकर उन्होंने हँसते हँसते सामनेके थालको ज़रा अलग हटा दिया।

वन्दनाका चेहरा पहले तो मारे शर्मके सुर्ख हो उठा, फिर अपनेको सँभाल-कर उसने कहा—"नहीं, यह बात मैं उनसे पूछने नहीं जा सकती, आपको खानेकी ज़रूरत नहीं!"

विप्रदासने कहा—"पर मुश्किल तो यह है कि अपने घरमें मैं तुम्हें उपासी भी तो नहीं रख सकता।" यह कहते हुए उन्होंने खाना शुरू कर दिया।

वन्दनाने क्षणभर चुप रहकर पूछा—"लेकिन इसके बाद क्या कीजियेगा?"

"घर जाकर गोबर खाके प्रायश्चित्त करूँगा।"—कहकर वे हँस दिये। परन्तु उनके हँसनेपर भी वन्दना यह समझ न सकनेके कारण कि सच है या परिहास स्तब्ध रह गई।

विप्रदासने कहा—"माँके साथ तो समझौता कुछ-न-कुछ होगा ही, पर तुम्हारी जीजीकी दयासे जो छुटकारा पाऊँगा, यह उससे भी बड़ी बात होगी।'—इतना कहकर फिर हँसकर कहा, "क्यों, विश्वास नहीं हुआ? अच्छा, पहले ब्याह हो जाने दो, तब तुम मुखर्जी साहबकी बात समझ जाओगी।"—कहते हुए वे भोजनका थाल बिल्कुल अछूता करके उठ खड़े हुए।

उधर डिनर तो रद हुई, पर अन्यान्य रुचिकर खाद्योंके आयोजनमें अवहेला नहीं की गई। क्षुधाकी परितृप्तिके हिसाबसे कुछ भी कमी नहीं रही। परन्तु सब कामोंसे छुट्टी पाकर वन्दना जब बिस्तरपर लेटी तब सोचने लगी, उसके सम्बन्धमें विप्रदासका आचरण अप्रत्याशित भी नहीं था और शायद उसे वेग भी नहीं कहा जा सकता और निकट आत्मीय या अपना होनेपर भी जिस वजहसे अबतक उनसे घनिष्ठता और परिचय नहीं था वह भी इतने दिनोंकी पुरानी कहानी है कि उससे नये प्रकारसे आघात अनुभव करना बाहुल्य नहीं बल्कि विडम्बना है। वन्दनाके छोड़ देते वक्त विप्रदासकी माँ भी छू जानेके विचारसे पीछे हट गई थीं, उसके प्रतिवादमें वन्दना बगैर खाये-पीये वहाँसे चली आई है। एक शिक्षा-विहीन नारीके उद्धत असम्मानने उसे आघात न पहुँचाया हो सो बात नहीं तथापि उस मूढ़ताको भी किसी दिन भूल जाना आसान है किन्तु विप्रदासने जो कुछ किया उसके प्रतिवादमें उसे क्या करना उचित है, यह उसकी समझमें न आया। विप्रदासने उसके हाथके छुए फल-मूल और मिठाई खाई तो सही, पर अपनी तबीयतसे नहीं संकटमें पड़कर, इस डरसे कि बलरामपुरकी तरह कहीं यहाँ भी वैसी बेहूदा वारदात न हो जाय। यह एक तरहसे पागलके हाथसे आत्म-रक्षा करनेका-सा हुआ। परन्तु विप्रदासने जो यह अनाचार हो गया है सो घर जाकर वह प्रायश्चित्त करेगा—इस बातको न जाने कैसे उसने निश्चित सत्य समझ लिया और उससे उसकी आँखोंकी नींद जाती रही। और साथ ही यह बात भी उसने बहुत सोची कि यह ऐसी महत्त्व-पूर्ण भी क्या है? हमारा उनका चलनेका मार्ग तो एक नहीं है,—संसारमें

दोनोंके लिए ही काफी प्रचार स्थान पड़ा हुआ है। दैववश संघर्ष अगर हो ही गया है तो हो जाने दो। इस प्रकार इसके लिए सामना करनेका आयोजन इस जीवनमें उस कौन दे रहा है! इस तरहसे वह अपने आपको शान्त करनेकी बहुत कोशिश करती रही, किन्तु फिर भी इस आदमीकी नीरव अवज्ञाको वह किसी भी तरह मनसे निकाल बाहर नहीं कर सकी।

सोचते-सोचते वह कब सो गई, उसे पता नहीं किन्तु अस्वस्थ बाधाग्रस्त निद्रा अकस्मात् उचट गई। अभीतक भोर नहीं हुआ था, असमाप्त निद्राकी असह्य जड़तासे दोनों आँखें आच्छन्न हो रही थीं, किन्तु उससे बिस्तरपर भी पड़ा नहीं रहा गया, बाहर निकलकर बरामदेकी रेलिंगपर कोहनी टेककर खड़ी हो गई देखा कि काला आकाश दिगन्तके अन्धकारमें और भी गाढ़ा हो गया है, दूर कहीं सड़कपर बीच-बीचमें गाड़ियोंकी अस्पष्ट आवाज सुनाई दे रही है, लोगोंका आना-जाना शुरू होनेमें अब भी कुछ देर है, आसपास सारा मकान बिलकुल नीरव है। सहसा वह क्या देखती है कि दूसरी मंजिलपर माँके पूजाके कमरेमें बत्ती जल रही है, और उसीके प्रकाशकी एक बारीक रेखा खिड़कीकी संधमेंसे निकलकर सामनेके खम्भेपर पड़ रही है। पहले तो उसे ऐसा लगा कि शायद नौकर बत्ती बुझाना भूल गया है, पर दूसरे ही क्षण खयाल आया कि शायद विप्रदास हैं और पूजा करने बैठे हैं।

उसका कुतूहल असह्य हो उठा। उसने समझा कि सहसा भेंट हो जानेसे मारे शर्मके वह मर मिटेगी, इतनी रातमें कमरेमेंसे निकलकर नीचे आनेका कोई कारण ही नहीं समझाया जा सकेगा; मगर फिर भी वह अपने आपको न रोक सकी।

ध्यानकी बात कहानी-पुस्तकोंमें पढ़ी है, तसवीरोंमें देखी है, किन्तु इससे पहले कभी उसने अपनी आँखोंसे किसीको ध्यानस्थ नहीं देखा। निस्तब्ध रात्रिके निःसंग अंधकारमें वही दृश्य आज उसके दृष्टिगोचर हुआ। विप्रदासकी दोनों आँखें मुँदी हुई हैं, उनका बलिष्ठ दीर्घ शरीर आसनपर सरल होकर विराज रहा है,—ऊपरकी बत्तीका प्रकाश उसके [illegible] और कमरपर पड़कर प्रतिबिम्बित हो रहा है,—कोई खास बात नहीं थी। शायद और किसी वक्त देखनेसे वन्दनाको हँसी आ जाती, किन्तु तन्द्रा-जड़ित आँखोंसे आज इस मूर्तिने उसे मुग्ध कर दिया। इस तरह वह कितनी देरतक खड़ी रही, उसे

होश नहीं; किन्तु सहसा जब चैतन्य हुआ तब पूर्वका आकाश अरुण हो गय
था, और नौकर चाकर जागने लग चुके थे। तकदीर अच्छी थी जो इस बी
कोई जागकर उसके सामने नहीं आ पड़ा। अब वह नहीं ठहरी, धीरे धी
ऊपर अपने कमरेमें जाकर बिस्तरपर पड़ रही और पड़ते ही गहरी नींद आने
उसे जरा भी देर न लगी।

दरवाजेपर हाथ ठोककर अन्नदाने पुकारा—"बीबीबाई, बहुत दिन च
गया है, उठोगी नहीं!"

वन्दना व्यस्तताके साथ दरवाजा खोलकर बाहर आ खड़ी हुई, देखा कि
वास्तवमें बहुत अबेर हो चुकी है, लज्जित होकर उसने पूछा—"वे सब शाय
आज भी मेरी बाट देखते होंगे! जरा सवेरे मुझे जगा क्यों नहीं दिया! नहा
धोकर घंटे-भरसे पहले तो तैयार न हो सकूँगी अन्नदा!"

उसके विपन्न चेहरेकी तरफ देखकर अन्नदाने हँसते हुए कहा—"डरनेक
कोई बात नहीं बीबीबाई, आज वे लोग सब्र नहीं कर सके, सब खतम क
चुके हैं,—अब जबतक चाहो नहाओ-धोओ, कोई टोकेगा नहीं।"

सुनकर वन्दनाके जीमें जी आया। वह हँसमुख हो बोली—"सचमुच
तुम लोगोंकी बहुत-सी बात मुझे पसन्द नहीं, पर यह पसन्द है। सब लोग द
बाँधकर चहीका फंदा मिलाकर निगलने नहीं बैठ जाते, इससे बड़ा आराम
मिलता है।"

अन्नदाने कहा—"पर सवेरे क्या आपको भूख नहीं लगती बीबीबाई!"

वन्दनाने कहा—"कभी नहीं। मगर फिर भी बचपनहीसे रोजमर्रा चाय पीत
रही हूँ। अच्छा, जाती हूँ अब देर नहीं करूँगी।"—यह कहकर वह चली गई

करीब दो घंटे बाद नीचे विप्रदाससे उसकी भेंट हुई। वे आह्निकका काम
खतम करके निकल रहे थे। वन्दनाने नमस्कार किया।

"चाय पी ली?"

"हाँ।"

"वे लोग ठहर नहीं सके, लेकिन तुम्हें भी—"

वन्दना रोककर जल्दीमें बोल उठी—"उसके लिए तो मैं शिकायत नहीं
कर रही हूँ मुखर्जी साहब।"

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"तुम्हारे मिजाजमें बहादुरी है, इस बातसे मैं

इन्कार नहीं करता, परन्तु दोनों बहनोंमें उतना ही फर्क है जितना चन्द्र और सूर्यमें। सुना है कि तुम जल्दी ही विलायत जा रही हो—शिक्षाको पक्की करनेके लिए। जाओ,—वापस आनेपर खबर देना, आकर एक बार तुम्हारी मूर्ति देख जाऊँगा।"

वन्दना यह सुनकर हँस दी, कुछ बोली नहीं।

विप्रदासने कहा—"सुना है कि उस देशमें लोगोंको दिनके बारह बजेतक सोना पड़ता है। बड़ी कठोर साधना है। लेकिन तुम्हें उस साधनाके लिए वहाँ कष्ट नहीं करना पड़ेगा—इस देशमें ही तुमने उसकी साधना शुरू कर दी है।"

वन्दना अबकी भी हँस दी, और उसी तरह चुपचाप विप्रदासके चेहरेकी तरफ देखती रही। निहायत सीधे सादे ढंगका मर्द चेहरा है। हास्य-परिहासमें स्नेहशील, दर्दमिजा एक आदमी। फिर भी रात्रिकी नीरवतामें निर्जन कमरेको उस स्तब्ध-मौन मूर्तिको जैसा रहस्यमय समझा था, उस बातको याद करके उसके कुतूहलकी सीमा न रही।

वन्दनाने पूछा—"मुखर्जी साहब, सब लोग कहाँ हैं? किसीको देख नहीं रही हूँ?"

विप्रदासने कहा—"इसके मानी हैं कि वे हैं नहीं। अर्थात् बाबूजी साहब और वकील बैरिस्टर साहब, तीनों जनें हवड़ा स्टेशन गये हैं सीट्स रिजर्व कराने।"

वन्दनाने विस्मयके साथ पूछा—"वकील बैरिस्टर साहब तो सीट्स रिजर्व करा सकते हैं, पर बाबूजी क्यों कराने लगे? उनकी छुट्टियाँ खतम होनेमें अभी तो आठ-दस दिन बाकी हैं। इसके सिवा मुझे बिना बताये?"

विप्रदासने कहा—"कहनेका समय नहीं मिला, शायद वापस आकर बतायेंगे। सवेरे बम्बईके आफिससे जरूरी तार आया था,—चेहरेका भाव देखकर तो यही मालूम होता था कि बगैर गये काम नहीं चल सकता।"

"लेकिन मैं? इतनी जल्दी मैं क्यों जाने लगी?"

विप्रदासने भी उसके स्वरमें स्वर मिलाकर कहा—"जरूर, तुम क्यों जाने लगी? मैं भी ठीक यही कहता हूँ।"

वन्दना कुछ समझ न सकनेके कारण विमूढ़ दृष्टिसे मुँहकी ओर देखती रह गई।

विप्रदासने कहा—"बासनको एक बार कह दो न,—देवरको साथ लेकर हों आ जायें। तुम लोगोंकी पटरी भी खूब बैठ जायगी, और अतिथि-सत्कारके दायित्वसे छुटकारा पाकर मेरी भी जान बच जायगी।"

वन्दना डरते हुए व्यग्र स्वरसे पूछ उठी—"ऐसा क्या सम्भव हो सकता है मुखर्जी साहब! माँ क्या इस प्रस्तावपर कभी राजी हो सकती हैं! मैं तो उन्हें को नहीं सुहाती।"

विप्रदासने कहा—"एक बार कोशिश कर देखो न। कहो तो तारका एक मर्म भेज दूँ—क्या कहती हो?"

वन्दना उत्सुक दृष्टिसे क्षण भर चुपचाप देखती रही फिर न जाने क्या सोचकर बोली—"रहने दीजिए मुखर्जी साहब,—यह मुझसे न होगा।"

"तो रहने दो।"

"मैं बल्कि पिताजीके साथ चली ही जाऊँ।"

"सो ही ठीक है।"—कहकर विप्रदास चले गये।

खानेकी टेबिलपर पिताके नाम आया हुआ टेलिग्राम पड़ा हुआ था; वन्दनाने उसे खोलकर देखा कि सचमुच ही बम्बई-आफिसका तार है। बहुत जल्दी—देर नहीं की जा सकती।

वन्दना अपने कमरेमें जाकर फिर एक बार अपना सामान सजानेमें लग गई।

पिता अभीतक वापस नहीं आये थे। कई घण्टे बाद अन्नदाने कमरेमें आकर कहा—'आपके नाम एक तार आया है दीदीबाई, यह लीजिए।"

"मेरे नाम टेलिग्राम!"—आग्रहके साथ उसे हाथमें लेकर खोलके देखा कि बलरामपुरसे माँने उसीको तार भेजा है। बड़े आग्रहके साथ अनुरोध किया है कि पिताके साथ वह हर्गिज वापस न आय; बड़ी बहू द्विजदासके साथ रातकी गाड़ीसे कलकत्ते आ रही है।

११

रातकी गाड़ीसे माँजी आ रही हैं और उनके साथ है द्विजदास। वन्दना खुशीसे फूली नहीं समाई। माँजीकी ससुरालके अपने उस दिनके आचरणके लिए वह मन ही मन बड़ी लज्जित थी, परन्तु उसके प्रतिकारका कोई उपाय वह नहीं पा रही थी। आज अत्यन्त अनिच्छा होनेपर भी पिताके साथ उसे बम्बई और

जाना पड़ता, किन्तु अकस्मात् एक भिन्न-ओरके रास्तेसे उस समस्याका हल हो गया। दयामयीको बन्दनाने बहुत बार हिलाया-डुलाया, अखबारको पढ़कर सुनाया और उत्सुक भावसे सितारके आनेकी इसलिए राह देखने लगी कि उनके हाथमें वह छोटा-सा कागज रख दे। विप्रदास घरपर नहीं हैं, पूछतानेसे मालूम हुआ कि कुछ देर पहले ही बाहर चले गये हैं। यह व्यवस्था उन्हींकी है, सिवाय उन्हें बतानेकी कोई जरूरत नहीं,—फिर भी एक बार कहना ही पड़ेगा। और उसके भीतरका हाल यह कि उनसे कहनेकी भाषा वह मन ही मन ढूँढ़ने लगी तो देखा कि कोई बात ही उसे पसन्द नहीं आ रही है। आनन्द प्रकट करनेका स्वाभाविक रास्ता मानो कभीका बन्द हो गया है। बहु-निन्दित जमीं-दार श्रेणीका यह बड़ा और कठोर आदमी उसे शुरूसे ही बुरा लगा था, अब भी उसके लिए काफी दुर्बोध्य है, फिर भी धीरे-धीरे उसके मनमें एक परिवर्तन हो रहा था। वह देख रही थी कि इस आदमीका आचरण परिमित है, बातें वह कम करता है, व्यवहार भद्र और मीठा है फिर भी न जाने कैसा एक व्यवधान उसके प्रत्येक व्यवहारमें प्रतिक्षण अनुभूत होता है। सबके बीच रहता हुआ भी यह सबसे दूर रहता है। आश्रित लोग, दास-दासियाँ, कर्मचारी सभी इनपर श्रद्धा करते हैं, परन्तु उससे भी ज्यादा डरते हैं सब। उन लोगोंके मनका भाव मानो कुछ इस तरहका है: बड़े बाबू अन्नदाता हैं बड़े बाबू रक्षाकर्ता हैं, बड़े बाबू दुखके दिनोंके अवलम्बन हैं, किन्तु बड़े बाबू किसीके आत्मीय नहीं हैं। पितृ-वियोग होनेपर उनसे अपनी विपदा कही जा सकती है, किन्तु पुत्रके विवाहोत्सव में जीमनेका निमन्त्रण नहीं दिया जा सकता। इस घनिष्ठ सम्बन्धकी बात ये सोच ही नहीं सकते।

कल बन्दनाने रसोईघरकी दासीको सरल और कुछ निर्बोध समझकर बातों ही बातोंमें उससे इसका कारण दरियाफ्त करना चाहा था, मगर बहुत जिरह करनेके बाद भी सिर्फ इतनी ही बात निकाल सकी कि वह इसका कारण नहीं जानती, सब कोई डरते हैं इसीलिए वह भी डरती है, और अन्य किसीसे पूछने-पर भी शायद यही उत्तर मिलता। मुखर्जी-परिवारमें मानो यह एक संक्रामक व्याधि है। उस दिन रेलमें, उस आकस्मिक छोटी-सी घटनाको आश्रय करके विप्रदासकी जो प्रकृति उसी क्षण भरके लिए दिखाई दे गई थी, उसने तुरन्त ही अपनेको सम्पूर्ण रूपसे छिपा लिया था। गाड़ीमें उस दिन पास बैठकर

हास्य-परिहासकी कितनी ही बातें हो गईं—किन्तु भाव मालूम ही नहीं होता कि यही आदमी इस मकानका बड़ा-बाबू है।

सहसा नीचेसे एक शोर उठा, किसी आदमीने दौड़कर खबर दी कि उसके पिता राय-साहब, स्टेशनसे लँगड़े होकर लौटे हैं। बन्दनाने बंगलेमेंसे झाँककर देखा कि पंजाबके बैरिस्टर और उनकी पत्नी पिताकी दोनों बाँहें पकड़कर उन्हें मोटरसे नीचे उतार रहे हैं। उनके एक पैरका जूता-जुराब खुला हुआ है और उसपर दो-तीन भीगे हुए रूमाल लिपटे हैं। प्लेटफार्मपर भीड़की धक्कापेलमें किसीने उनके पाँवपर एक भारी बक्स पटक दिया, जिससे यह हाल हुआ। लोगोंने पकड़-पकड़के उन्हें ऊपर लाकर बिस्तरपर लिटा दिया,—दरबान डाक्टर बुलाने दौड़ा। डाक्टरने आकर बैन्डेज बाँधा और दवा दी,—विशेष कोई बात नहीं, पर कुछ दिनके लिए घूमना फिरना बन्द हो गया।

दूसरे दिन तीसरे पहर सती आ पहुँची। बन्दना बकरके साथ उसकी अभ्यर्थना करनेके लिए नीचे पहुँची तो ठिठकके खड़ी हो गई, देखा कि मोटरसे सिर्फ उसकी भाभी ही नहीं उतर रही साथमें सास भी हैं—दयामयी। बन्दना का उच्छ्वसित आनन्द-कलरव घुट-सा गया, वह लकड़ी तरह किसी प्रकार प्रणाम करके एक तरफ हटके खड़ी हो रही थी, पर दयामयीने पास आकर भाव उसकी ठोड़ी छूकर चूमी और हँसते हुए पूछा— 'अच्छी तरह तो हो बेटी!'

बन्दनाने सिर हिलाके हामी भरी—"अच्छी हूँ माँ, अचानक आप कैसे चली आईं!"

दयामयीने कहा—"आती नहीं तो क्या करती बताओ! एक पगली लड़की नाराज होकर बगैर खाये-पीये चली आई है, उसे शान्त करके जबतक घर वापस नहीं ले आ सकती तबतक मुझे शान्ति कहाँ बेटी!"

बन्दना कुण्ठित हँसी हँसके बोली—"कैसे जाना कि मैं नाराज होकर चली आई हूँ!"

दयामयीने कहा—"पहले तुम्हें लड़के-बाले हों, मेरी तरह उन्हें पाल-पोसकर बड़ा करो, तब अपने आप ही समझ जाओगी कि लड़कीके नाराज होनेपर माँ कैसे जान जाती है।"

यह बात उन्होंने ऐसी मिठासके साथ कही कि बन्दनाने फिर कोई जवाब न देकर झुकके उनके पाँव छू लिये। फिर खड़े होकर कहा—"बापूजीकी

जाना पड़ता, किन्तु अकस्मात् एक दिन सोचे रास्तेसे उस समस्याका हल हो गया। टेलिग्रामको बन्दनाने बहुत बार छिपाया-दुराया, अखबारको पढ़कर सुनाया और उत्सुक भावसे विप्रके आनेकी इसलिए राह देखने लगी कि उनके हाथमें वह छोटा-सा कागज रख दे। विप्रदास घरपर नहीं हैं, पूछनेपर मालूम हुआ कि कुछ देर पहले वे बाहर चले गये हैं। यह अवस्था उन्हींकी है, सिवाय उन्हें बतानेकी कोई जरूरत नहीं,—फिर भी एक बार कहना ही पड़ेगा। और उसके भीतरका हाल यह कि उनसे कहनेकी भाषा वह मन ही मन ढूँढ़ने लगी तो देखा कि कोई बात ही उसे पसन्द नहीं आ रही है। आनन्द प्रकट करनेका स्वाभाविक रास्ता मानो कमीका बन्द हो गया है। बहु-निन्दित जमींदार सेवीका वह बड़ा और कठोर आदमी उसे शुरूसे ही बुरा लगा था, अब भी उसके लिए काफी दुर्बोध है, फिर भी धीरे-धीरे उसके मनमें एक परिवर्तन हो रहा था। वह देख रही थी कि इस आदमीका आचरण परिमित है, बातें वह कम करता है, व्यवहार भद्र और मीठा है फिर भी न जाने कैसा एक व्यवधान उसके प्रत्येक पदक्षेपमें प्रतिक्षण अनुभूत होता है। सबके बीच रहता हुआ भी वह सबसे दूर रहता है। आश्रित लोग, दास-दासियाँ कर्मचारी सभी इसपर श्रद्धा करते हैं, परन्तु उससे भी ज्यादा करते हैं भय। उन लोगोंके मनका भाव मानो कुछ इस तरहका है। बड़े बाबू अन्नदाता हैं बड़े बाबू रक्षाकर्ता हैं, बड़े बाबू बुरे दिनोंके अवलम्बन हैं किन्तु बड़े बाबू किसीके आत्मीय नहीं हैं। सिर्फ विपद्ग्रस्त होनेपर उनसे अपनी विपदा कही जा सकती है, किन्तु पुत्रके विवाहोत्सवमें जीमनेका निमन्त्रण नहीं दिया जा सकता। इस घनिष्ठ सम्बन्धकी बात वे सोच ही नहीं सकते।

एक बन्दनाने [illegible] बातोंको सरल और कुछ निर्बोध समझकर बातों ही बातोंमें उससे इसका कारण दरियाफ्त करना चाहा था, मगर बहुत जिद करनेके बाद भी सिर्फ इतनी ही बात निकाल सकी कि वह इसका कारण नहीं जानती, सब कोई डरते हैं इसीलिए वह भी डरती है, और अन्य किसीसे पूछने-पर भी शायद यही उत्तर मिलता। मुखर्जी-परिवारमें मानो यह एक सनातन व्याधि है। उस दिन रेलमें, उस आकस्मिक छोटी-सी घटनाको आश्रय करके विप्रदासकी जो वास्तविक प्रकृति उसे क्षण भरके लिए दिखाई दे गई थी, उसने तुरन्त ही अपनेको सम्पूर्ण रूपसे छिपा लिया था। गाड़ीमें उस दिन पास बैठकर

हास्य-परिहासकी कितनी ही बातें हो गईं—किन्तु आज मालूम ही नहीं होता कि वही आदमी इस मकानका बड़ा-बाबू है।

सहसा नीचेसे एक शोर उठा, किसी आदमीने दौड़कर खबर दी कि उसके पिता राय-साहब, स्टेशनसे लँगड़े होकर लौटे हैं। बन्दनाने बंगलेमेंसे झाँककर देखा कि पंजाबके बैरिस्टर और उनकी पत्नी पिताकी दोनों बाँहें पकड़कर उन्हें मोटरसे नीचे उतार रहे हैं। उनके एक पैरका आधा-हिस्सा सूजा हुआ है और उसपर दो-तीन भीगे हुए रूमाल लिपटे हैं। प्लेटफार्मपर भीड़की धकापेलमें किसीने उनके पाँवपर एक भारी बकस पटक दिया, जिससे यह हाल हुआ। लोगोंने पकड़-पकड़ाके उन्हें ऊपर लाकर बिस्तरपर लिटा दिया,—दरबान डाक्टर बुलाने दौड़ा। डाक्टरने आकर बैन्डेज बाँधा और दवा दी,—विशेष कोई बात नहीं, पर कुछ दिनके लिए घूमना-फिरना बन्द हो गया।

दूसरे दिन तीसरे पहर सासें आ पहुँचीं। बन्दना कस्तूरके साथ उसकी अभ्यर्थना करनेके लिए नीचे पहुँची तो ठिठकके खड़ी हो गई, देखा कि मोटरसे सिर्फ उनकी बीबी ही नहीं उतर रहीं साथमें सास भी हैं—दयामयी। बन्दना का उच्छ्वसित आनन्द-कलरव घुस-सा गया, वह लड़की तरह किसी प्रकार प्रणाम करके एक तरफ हटके खड़ी हो रही थी, पर दयामयीने पास आकर आज उसकी ठोड़ी छूकर चूमी और हँसते हुए पूछा—"अच्छी तरह तो हो बेटी!"

बन्दनाने सिर हिलाके हामी भरी—"अच्छी हूँ माँ, अचानक आप कैसे चली आई!"

दयामयीने कहा—"आती नहीं तो क्या करती बताओ! एक पगली लड़की नाराज होकर बगैर खाये-पीये चली आई है, उसे शान्त करके जबतक घर वापस नहीं ले जा सकती तबतक मुझे शान्ति कहा बेटी!"

बन्दना कुण्ठित हँसी हँसके बोली—"कैसे जाना कि मैं नाराज होकर चली आई हूँ!"

दयामयीने कहा—"पहले तुम्हें लड़के-बाले हों, मेरी तरह उन्हें पाल-पोसकर बड़ा करो, तब अपने आप ही समझ जाओगी कि लड़कीके नाराज होनेपर माँ कैसे जान जाती है।"

यह बात उन्होंने ऐसी मिठासके साथ कही कि बन्दनाने फिर कोई जवाब न देकर झुकके उनके पाँव छू लिये। फिर खड़े होकर कहा—"बापूजीको

तबीयत खराब हो गई है माँ।"

"तबीयत खराब! क्यों, क्या हुआ उन्हें?"

"पाँवमें चोट लग जानेसे कलसे खाटपर पड़े हैं, उठ नहीं सकते।"—यह कहते हुए उसने दुर्घटनाका कारण कह सुनाया।

दयामयी व्यस्त हो उठीं —"इनकी सेवामें किसी तरहकी त्रुटि तो नहीं हुई? चलो तो बहू, किस कमरेमें तुम्हारे पिताजी हैं, मुझे ले चलो वहीं। पहले उन्हें देख आऊँ, पीछे दूसरा काम।" इतना कहकर वे सतीके साथ बन्दनाके पीछे-पीछे ऊपर जाकर राय साहबके कमरेमें पहुँचीं। आज उनके पाँवमें विशेष दर्द न था; इन लोगोंको देखकर बिस्तरपर उठ बैठे और नमस्कारादि किया। दयामयीने हाथ उठाकर प्रति-नमस्कार किया और हँसते हुए कहा—"ब्याईजी साहब, टाँग कैसे टूटना थी, कहाँ चूक पड़े थे?"

सती और बन्दना दोनोंने दूसरी तरफ मुँह फेर लिये। राय-साहब निरीह आदमी ठहरे, प्रतिवादके स्वरमें समझाने लगे कि कहीं चूक पड़नेके कारण नहीं, बल्कि स्टेशनके प्लेटफार्मपर फिसलकर यह दुर्गति हुई है।

दयामयीने हँसते हुए कहा—"जो होना था सो हो चुका, अब रहिए कुछ दिन ब्याहियोंके दुःखसे घरमें बन्द। एक लड़कीसे शासन करते न बने, इसलिए मैं दूसरीको भी पकड़ लाई हूँ ब्याई साहब! दोनों बहनें बारी-बारीसे कुछ दिन सेवा करेंगी।"

राय साहबने गम्भीर विषाद प्रकट किया और इस अनुग्रह और सहानुभूतिके लिए बहुत धन्यवाद दिया।

"फिर मिलूँगी,—जाऊँ, जरा हाथ-पैर धो आऊँ।"—कहकर दयामयी उनसे बिदा होके अपने कमरेमें चली गईं।

दूसरे मोटरमें आ पहुँचा द्विजदास और उसका भतीजा वासुदेव। सतीके लड़केको बन्दना उस दिन देख नहीं पाई थी। वह था पाठशालामें और उसकी छुट्टी होनेसे पहले ही बन्दना वहाँसे चली आई थी। दादीको छोड़के वह रहता नहीं, इसीसे साथ आया है और उन्हींके साथ यहाँ पर चला जायगा।

चाचाके परिचय करा देनेपर वासुदेवने बन्दनाका पादवन्दन किया। बन्दनाके पाँवोंमें उसे देखकर वह मन ही मन विस्मित तो हुआ, पर कुछ बोला नहीं। आठ-नौ सालका लड़का है, पर चालाक खूब है।

चन्दनाने उसे स्नेहके साथ छातीसे लगा लिया और कहा—"मुझे पहचान नहीं सके बाबू?"

"पहचान तो लिया मौसीजी।"

"पर तुम तो तब पाँच-छै सालके थे केवल—याद कैसे रख सके?"

"फिर भी याद है मौसीजी,—तुम्हें देखते ही पहचान गया था। हमारे यहाँसे तुम गुस्सा होकर चली आईं। मैं पाठशालासे घर लौटा, तो तुम वहाँ थी नहीं।"

"गुस्सा होके चली आई, यह तुमने किससे सुना?"

"बाबा भी कह रहे थे दादाजीसे।"

चन्दनाने द्विजदासकी ओर देखकर पूछा—"गुस्सा होनेकी बात आपने भी कैसे जानी?"

द्विजदासने कहा—"सिर्फ मैं ही नहीं घर-भरके जानते हैं। और फिर, आपने छिपानेकी कोई विशेष चेष्टा भी नहीं की।"

चन्दनाने कहा—"तब मेरे गुस्सा होनेकी तो बात जानते हैं, उसका कारण क्या, सो भी कोई जानता है?"

द्विजदासने कहा—"सब न जानें, पर मैं जानता हूँ। राय-साहबको अलग टेबिलपर खिलाया गया था इसलिए।"

चन्दनाने कहा—"कारण यदि यही हो, तो मेरे गुस्सा होनेको आप उचित समझते हैं?"

द्विजदासने कहा—"हाँ समझता हूँ। यद्यपि उन लोगोंके लिए भी और कोई उपाय नहीं था।"

"आप मेरे पिताजीके साथ बैठके खा सकते हैं?"

"खा सकता हूँ। पर भाई-साहबके मना कर देनेपर नहीं खा सकता।"

"नहीं खा सकते? मगर क्या आप समझते हैं कि आपको मना करनेका अधिकार भाई साहबको है?"

द्विजदासने कहा—"यह उनकी बात है, मेरी नहीं। मेरे लिए भाई साहबकी आज्ञा न मानना, अनुचित है।"

चन्दनाने कहा—"जिसे आप कर्तव्य समझते हैं क्या उसे पालन करनेका साहस आपमें नहीं है?"

तबीयत खराब हो गई है माँ।"

"तबीयत खराब! क्यों, क्या हुआ उन्हें?"

"पाँवमें चोट लग जानेसे कलसे बिस्तरपर पड़े हैं, उठ नहीं सकते।"—यह कहते हुए उसने दुर्घटनाका कारण कह सुनाया।

दयामयी व्यस्त हो उठीं—"इसमें किसी तरहकी त्रुटि तो नहीं हुई? बताओ तो जरा किस कमरेमें तुम्हारे पिताजी हैं मुझे ले चलो वहाँ। पहले उन्हें देख आऊँ, पीछे दूसरा काम।" इतना कहकर वे सतीके साथ वन्दनाके पीछे-पीछे ऊपर जाकर राय साहबके कमरेमें पहुँचीं। आज उनके पाँवमें विशेष दर्द न था, इन लोगोंको देखकर बिस्तरपर उठ बैठे और नमस्कारादि किया। दयामयीने हाथ उठाकर प्रति-नमस्कार किया और हँसते हुए कहा—"राय सा'ब, रात कैसे गुजरी जी, कहीं गिर पड़े थे?"

सती और वन्दना दोनोंने दूसरी तरफ मुँह फेर लिये। राय-साहब गंभीर आदमी ठहरे, शिष्टाचारके स्वरमें समझाने लगे कि कहीं गिर पड़नेके कारण नहीं, बल्कि स्टेशनके प्लेटफार्मपर फिसलकर यह दुर्गति हुई है।

दयामयीने हँसते हुए कहा—"जो होना था सो हो चुका, अब रहिए कुछ दिन लड़कियोंके जिम्मे पड़े। एक लड़कीसे शासन करते न बने, इसलिए मैं दूसरीको भी पकड़ लाई हूँ राय सा'ब! दोनों बहनें पारी-पारीसे कुछ दिन सेवा करेंगी।"

राय साहबने इसीपर विश्वास कर लिया; और इस अनुग्रह और सहानुभूतिके लिए बहुत धन्यवाद दिया।

"फिर मिलूँगी,—जाऊँ, जरा हाथ-पैर धो आऊँ।"—कहकर दयामयी उनसे विदा होके अपने कमरेमें चली गईं।

दूसरी मोटरमें आ पहुँचा द्विजदास और उसका भतीजा वासुदेव। उन्हींके लड़केको वन्दना उस दिन देख नहीं पाई थी। वह था पाठशालामें और उसकी छुट्टी होनेसे पहले ही वन्दना वहाँसे चली आई थी। भाभीको छोड़के बासू रहता नहीं, इसीसे साथ आया है और उन्हींके साथ वह घर चला आया।

काकाके परिचय करा देनेपर वासुदेवने वन्दनाको प्रणाम किया। वन्दनाके पाँवोंमें जूते देखकर वह मन ही मन विस्मित तो हुआ, पर कुछ बोला नहीं। आठ-नौ सालका लड़का है, पर समझता सब है।

बन्दनाने उसे स्नेहके साथ छातीसे लगा लिया और कहा—"मुझे पहचान नहीं सके बासु ?"

"पहचान तो लिया मौसीजी।"

"पर तुम तो तब पाँच-छै सालके थे बेटा—याद कैसे रख सके ?"

"फिर भी याद है मौसीजी,—तुम्हें देखते ही पहचान गया था। हमारे यहाँसे तुम गुस्सा होकर चली आईं। मैं पाठशालासे घर लौटा, तो तुम वहाँ थी नहीं।"

"गुस्सा होके चली आई, यह तुमने किससे सुना ?"

"चाचा जी कह रहे थे दादीजीसे।"

बन्दनाने द्विजदासकी ओर देखकर पूछा—"गुस्सा होनेकी बात आपने भी कैसे जानी ?"

द्विजदासने कहा—"सिर्फ मैं ही नहीं, घर भरके जानते हैं। और फिर, आपने छिपानेकी कोई विशेष चेष्टा भी नहीं की।"

बन्दनाने कहा—"सब मेरे गुस्सा होनेकी ही बात जानते हैं, उसका कारण क्या, सो भी कोई जानता है ?"

द्विजदासने कहा—"सब न जानें, पर मैं जानता हूँ। राय-साहबको अलग टेबिलपर खिलाया गया था इसलिए।"

बन्दनाने कहा—"कारण यदि यही हो, तो मेरे गुस्सा होनेको आप उचित समझते हैं ?"

द्विजदासने कहा—"हाँ समझता हूँ। यद्यपि उन लोगोंके लिए भी और कोई उपाय नहीं था।"

"आप मेरे पिताजीके साथ बैठके खा सकते हैं ?"

"खा सकता हूँ। पर भाई-साहबके मना कर देनेपर नहीं खा सकता।"

"नहीं खा सकते ? मगर क्या आप समझते हैं कि आपको मना करनेका अधिकार भाई साहबको है ?"

द्विजदासने कहा—"यह उनकी बात है, मेरी नहीं। मेरे लिए भाई साहबकी आज्ञा न मानना, अनुचित है।"

बन्दनाने कहा—"जिसे आप कर्तव्य समझते हैं क्या उसे पालन करनेका साहस आपमें नहीं है ?"

द्विजदास क्षण-भर चुप रहकर कहने लगा—"देखिए, यह ठीक तर्क-सापेक्ष विषय नहीं। स्वभावतः मैं डरपोक आदमी नहीं हूँ, किन्तु भाई साहबके प्रकट निषेधकी अवज्ञा करनेकी बात मैं सोच ही नहीं सकता। बचपनमें पिताजीकी बहुतेरी बातें मैंने नहीं सुनीं, दण्ड भी न पाया हो सो बात नहीं, पर भाई-साहब अन्य प्रकृतिके आदमी हैं,—उनकी कोई कभी उपेक्षा नहीं करता।"

"उपेक्षा करनेसे क्या होता है?"

"क्या होता है सो मैं नहीं जानता; पर हमारे परिवारमें यह प्रश्न आज तक नहीं उठा।"

वन्दनाने कहा—"माँजीकी चिट्ठियोंसे मुझे मालूम हुआ है कि देशके लिए आप बहुत-कुछ किया करते हैं, जो कि भाई साहबकी इच्छाके विरुद्ध होता है। सो सब कैसे?"

द्विजदासने कहा—"उनकी इच्छाके विरुद्ध होनेपर भी उनके निषेधके विरुद्ध नहीं है वह। यदि होता तो फिर मुझसे नहीं होता।"

वन्दना दो-तीन मिनट चुप रही, फिर बोली—"माँजीकी चिट्ठियोंपरसे जैसा आपको समझा था वैसे आप नहीं हैं। अब उनसे मैं भरोसा दे सकती हूँ कि उन लोगोंके लिए डरकी कोई बात नहीं। आपके स्वदेश-सेवाके आधिक्यसे मुखर्जी खानदानकी विपुल सम्पत्तिमेंसे एक कण भी नुकसान नहीं होनेका। इससे माँजी निश्चिन्त हो सकेंगी।"

द्विजदासने हँसते हुए कहा—"माँजीका नुकसान होता रहे, यही चाहती हैं क्या आप?"

वन्दना संकटमें पड़कर बोली—"वाह,—सो क्यों चाहने लगी! मैं चाहती हूँ इन लोगोंका डर मिट जाय,—सब निश्चिन्त हो जायँ।"

द्विजदासने कहा—"आप चिन्ता न कीजिए, वे सब निर्भय ही हैं। कमसे कम भाई-साहबके सम्बन्धमें यह बात बेधड़क कही जा सकती है कि वे डर भय नामकी किसी चीजको आजतक जानते ही नहीं। यह उनकी प्रकृतिके विरुद्ध है।"

वन्दनाने हँसते हुए कहा—"इसके मानी यह कि भय-वस्तुका सम्पूर्ण रूपसे आप ही लोगोंने बाँट लिया है उनके हिस्सेमें यह जरा भी नहीं पड़ी, यही तो?"

सुनकर द्विजदासने भी हँस दिया, बोला—"है तो बहुत-कुछ ऐसा ही; मगर

फिर भी आपको बॉक्स नहीं रखा जायगा, मामूली जो कुछ बचा-खुचा है, वह आपको भी मिल जायगा। तीन-चार दिनसे एक साथ रह रही हैं, अभीतक उन्हें पहचान न सकीं?"

बन्दनाने कहा—"नहीं। आपके जरिये उन्हें पहचानना सीख लूँगी, इसी उम्मीदमें हूँ।"

द्विजदासने कहा—"तो पहला पाठ लीजिए। इन जूतोंको खोल डालिए।"

इतनेमें नौकरने आकर कहा—"माँ आप लोगोंको ऊपर बुला रही हैं।"

चलते चलते बन्दनाने पूछा—"अचानक मा क्यों चली आईं?"

द्विजदासने कहा—"पहली बात, कैलाश चाचाके बारेमें मामियोंसे सलाह करना। दूसरी बात, आपको बलरामपुर वापस ले जाना। देखिए, कहीं 'ना' न कह बैठिएगा।"

बन्दनाने कहा—"अच्छा, वही होगा।"

द्विजदासने कहा—"मांके सामने आपको 'मिस राय' नहीं कहा जा सकेगा। आप मुझसे उमरमें छोटी हैं और मामीकी छोटी बहन भी हैं, लिहाजा आपका मैं नाम लिया करूँगा। कहीं नाराज होकर फिर कोई दूसरा उपद्रव न कर बैठिएगा।"

बन्दनाने हँसके कहा—"नहीं, नाराज क्यों होने लगी। आप मेरा नाम लेकर पुकारा करें। पर मैं आपको क्या कहा करूँ?"

द्विजदासने कहा—"मुझे द्विजू कहा करें। पर भाई साहबको आपका 'मुखर्जी साहब' कहना नहीं छोड़ता। आप उन्हें बड़-बाबू या जीजा-साहब कहा कीजिए। यह हुआ आपका दूसरा पाठ।"

"क्यों?"

द्विजदासने कहा—"तर्क करनेसे सीखा नहीं जा सकता, मान लेना पड़ता है। पाठ याद हो जानेपर इसका कारण बता दूँगा पर अभी नहीं।"

बन्दनाने कहा—"इससे मुखर्जी-साहब लेकिन खुद हैरान होंगे!"

द्विजदासने कहा—"हाँ, उससे कोई नुकसान नहीं। पर माँ और मामी वगैरह बहुत खुश होंगी। घरमें इसकी जरूरत है।"

"अच्छा ऐसा ही होगा।"

जीनेके एक किनारे जूते उतारकर बन्दना दयामयीके कमरेमें जा पहुँची। पीछे-पीछे गये द्विजदास और वासुदेव। दयामयी ट्रंक खोलकर कुछ कर रही

थी और पास खड़ी हुई अन्नदा शायद घर-गृहस्थीका विवरण दे रही थी। दयामयीने वन्दनाकी तरफ मुँह उठाकर देखा और बिना किसी भूमिकाके स्वाभाविक स्वरमें पूछा—"तुम नहा-धो चुकीं बेटी?"

"हाँ माँ, नहा ली।"

"तो एक बार रसोईमें आओ बेटी। इतने आदमियोंके लिए महाराजने क्या इन्तजाम किया होगा मालूम नहीं,—मैं भी संध्या-पूजा करके आ रही हूँ।"

वन्दना चुप हो उनकी तरफ देखती रही, पर उन्होंने उसकी तरफ देखा तक नहीं, बोलीं—"द्विजूकी तबीयत ठीक नहीं है, तभी वह कुछ खा-पीकर नहीं आया है। उसका खाना जरा जल्दी हो जाना चाहिए बेटी।" इतना कहकर वे अन्नदाको साथ ले पूजा-घरकी ओर चल दीं, वन्दनाके उत्तरके लिए ठहरीं भी नहीं।

वन्दनाने द्विजदाससे पूछा—"क्या तबीयत खराब है?"

द्विजदासने कहा—"जरा मामूली हरारत-सी है।"

"क्या खायेंगे इस वक्त?"

द्विजदासने कहा—"साबू-बार्लीके सिवा जो भी कुछ दें, ले।"

वन्दनाने पूछा—"रसोईघरमें जाऊँ तो सही, पर पीछे कोई गड़बड़ी तो न होगी?"

द्विजदासने कहा—"नहीं। अन्नदा-दीदीने शायद ऐसा ही परिचय दिया है आपका। उनकी बात माँ हर्गिज नहीं टाल सकतीं—बहुत चाहती हैं उन्हें। 'म्लेच्छ'का अपवाद शायद मिट गया।"

वन्दना कुछ देर चुप रही, फिर बोली—"बड़े आश्चर्यकी बात है।"

द्विजदासने स्वीकार करते हुए कहा—"हाँ। इस दरमियान आपने क्या किया है, अन्नदा दीदीने माँसे क्या-क्या कहा है, मुझे नहीं मालूम, किन्तु आश्चर्य आपसे ज्यादा हुआ है खुद मुझको। लेकिन अब देर मत कीजिए, जाइए, खान-पीनेका इन्तजाम कीजिए। फिर भेंट होगी।" और, इसके बाद दोनों माँके कमरेसे बाहर हो गये।

१२

पैदल-यात्राके विषयमें रास्तेकी दुर्व्यवस्थाका हाल सुनकर आदमियों पीछे हर

हैं, स्वयं दयामयीको भी विशेष उत्साह नहीं रह गया फिर भी, कलकत्तेमें उनके पाँच-छः दिन कट गये—दक्षिणेश्वर कालीघाट और गंगास्नान करनेमें। कामके आदमीपर ही कामका भार पड़ता है; इस घरका प्रायः सारा-का-सारा दायित्व आ पड़ा है वन्दनाके ऊपर। सती कुछ भी नहीं करती, सब कामोंमें बहनको आगे बढ़ा देती है और खुद सासके साथ घूमती रहती है। फिर भी कहीं बाहर जानेको होती है तो उसे पुकारकर कहती है, "वन्दना, आ न बहन तुम लोगोंके साथ तेरे साथ रहनेसे किसीसे कोई बात पूछनी नहीं पड़ती।"

विप्रदासका भी आज-कल करते-करते घर जाना नहीं हो रहा है; माँ बार बार यही कह दिया करती हैं कि विपिनके चले जानेसे उन्हें घर कौन ले जायेगा! उस दिन शामको वे 'विक्टोरिया-मेमोरियल' देखके वापस आईं तो विप्रदासको बुलाकर उत्तेजनाके साथ उन्होंने कहा—"विपिन, तू कुछ भी क्यों न कह, पढ़ी-लिखी लड़कियोंका रंग-ढंग ही अच्छा होता है।"

विप्रदास समझ गये कि यह वन्दनाकी बात है।

उन्होंने पूछा—"क्या हुआ माँ?"

दयामयीने कहा—"क्या हुआ! आज एक बड़ी भारी लाल-मुँहके सार्जेण्टने आकर गाड़ी रोक दी। भाग्यसे वन्दना साथ थी, उसने अँग्रेजीमें दो-चार बातें समझाकर कहीं तो साहबने उसी वक्त गाड़ी छोड़ दी। नहीं तो क्या होता बता तो! या तो आसानीसे छोड़ता नहीं, नहीं तो थानेतक खींच ले जाता,—कैसी मुसीबत होती! तेरा नया पंजाबी ड्राइवर है बिलकुल जानवर।"

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"क्या किया था तुम लोगोंने,—गाड़ी किसीसे टकरा गई थी क्या?"

वन्दना आकर खड़ी हो गई। दयामयीने गरदन हिलाकर उसका समर्थन करते हुए उत्फुल्लित कण्ठसे कहा—"तुम्हारी ही बात मैं विपिनसे कह रही थी बेटी,—पढ़ी-लिखी लड़कियोंका ढंग ही कुछ और होता है। तुम साथ न रहतीं तो सबके सब कैसी आफतमें पड़ते! पर सारा दोष था उसी मेमका। चलाना जानती नहीं, फिर भी चलाएगी। जानती नहीं—तो भी बहादुरी दिखाएगी।"

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"पढ़ी-लिखी लड़कियोंका ढंग ही ऐसा होता है माँ। वह मेम जरूर पढ़ी-लिखी होगी!"

माँ और वन्दना दोनों ही हँस दीं। वन्दनाने कहा—"मुखर्जी साहब, यह

मेम-साहबका दोष था पढ़ाई लिखाईका नहीं। माँ, मैं जरा रसोईघरका चक्कर लगा आऊँ। कल द्विजू बाबूके लिए मोटे आटेकी रोटी महाराजने जरा कड़ी कर डाली थी, वे ठीकसे खा नहीं सके थे।"—इतना कहकर वह चली गई।

दयामयी स्नेहकी दृष्टिसे उसकी तरफ क्षण-भर देखती रहीं, फिर बोलीं—"इस तरफ निगाह है। लड़की सिर्फ पढ़ी-लिखी ही नहीं विपिन, ऐसा काम नहीं जो यह जानती न हो। और बातचीत भी उतनी ही मीठी। काम सौंपकर निश्चिन्त हो जाओ,—घर-गिरस्तीका फिर कुछ भी देखनेकी जरूरत नहीं।"

विप्रदासने कहा—"म्लेच्छ समझके अब घृणा तो नहीं करतीं माँ?"

दयामयीने कहा—"तेरी तो वही एक बात! भला म्लेच्छ क्यों होने लगी,—उसकी माँ एक बार विलायत गई थी, इससे लोगोंने मेम-साहब कहकर उसकी बदनामी उड़ा दी। नहीं तो हमारी ही तरह बंगाली-घरकी लड़की है। चन्दना जूते पहनती है,—तो पहनने दो। विदेशमें ऐसे तो सभी पहना करती हैं। लोगोंके सामने निकलती है—तो इसमें क्या दोष है? बम्बईमें तो घूँघट निकालनेका रिवाज ही नहीं है,—इसीसे, बचपनसे जैसा सीखा है वैसा ही करती है। जैसी मेरी बहू है, वैसी ही यह है। बापके साथ कल ही जानेको कहती है—सो सुनके जी न जाने कैसा हो रहा है बेटा।"

विप्रदासने कहा—"न जाने कैसा जी करनेसे कैसे काम चलेगा? चन्दना रहने तो आई नहीं,—आखिर दो-चार दिन बाद तो उसे जाना ही पड़ेगा।"

दयामयीने कहा—"जायगी सही, पर छोड़नेको भी जी नहीं चाहता, इच्छा होती है कि हमेशाके लिए पकड़कर रख लूँ।"

विप्रदास क्षण-भर मौन रहकर बोले—"सो तो वास्तवमें होनेका नहीं माँ,—पराई लड़कीको इतना मत जकड़ो। दो चार दिनके लिए आई है, चली जायगी—यही अच्छा।" इतना कहकर वह कुछ अन्यमनस्ककी भाँति बाहर चला गया।

बात दयामयीको ज्यादा पसन्द नहीं आई। परन्तु यह तो सिर्फ क्षण-भरकी बात थी। बलरामपुर छोड़नेका कोई नाम नहीं लेता, उनके दिन उत्सवकी भाँति आनन्दसे बीतने लगे—हँसने-बोलने, धूमधाम करने और चारों तरफ घूमने-फिरनेमें। इनके पहले सबके साथ हास-परिहास करनेमें दयामयीको इतना हलका होते किसीने भी नहीं देखा—उनके अन्तःकरणमें मानो कहींपर एक आनन्दका सोता निरन्तर बह रहा है और उनकी उमर और प्रकृति-विरुद्ध गाम्भीर्यको बीच

बीचमें बता देना चाहता है। सतीके साथ आभास और इशारेमें अकसर उनकी क्या-क्या बातें होती रहती हैं उनका अर्थ सिर्फ सास-बहू ही जानें; और भी एक जनी कुछ-कुछ अनुमान करती रहती है, वह है अन्नदा। सतीके बैरिस्टर साहब इतने दिन रहकर कल अपने घर चले गये हैं, उन दोनोंहीका नाम बसन्त है, इस बातपर दयामयीने चलते वक्त हँसी की थी; मगर उनसे वचन ले लिया था कि वापस पंजाब जाते समय वे उनके घर होते जायँगे—चाहे बलरामपुर हो चाहे कलकत्ता। राय साहबका पैर अच्छा हो गया है, आगामी हफ्ते वे बम्बई चले जायँगे। दयामयीने खुद दरबारमें हाजिर होकर वन्दनाकी कुछ दिनके लिए छुट्टी मञ्जूर करा ली है; यानी वन्दना बम्बईके बदले बलरामपुर जाकर कमसे कम और भी एक महीने मौसीजीके पास रह सकेगी—इसकी व्यवस्था पक्की हो गई है।

मुवक्किलोंके मामले-मुकदमे हाई-कोर्टमें लगे ही रहते हैं। एक बड़े मुकदमे की तारीख पास ही थी, इससे विप्रदासने तय किया कि इस बीचमें घर न जाकर उस तारीखतक ठहरा जाय और फिर सबको साथ लेकर एक साथ घर चला जाय। नाना कामोंसे उसे हर वक्त बाहर ही बाहर रहना पड़ता है। आज था रविवार, दयामयीने आकर हँसते हुए कहा—"एक मजेकी बात सुनी है विपिन ?"

विप्रदास अदालतके कागजात देख रहे थे, कुरसी छोड़ उठकर खड़े हो गये और बोले—"कौन-सी बात माँ ?"

दयामयीने कहा—"द्विजूकी कोई एक झगड़ेकी मीटिंग थी आज, पुलिस उसे होने नहीं देना चाहती थी और वे लोग उसे करना ही चाहते थे। क्या कुछ सिर-फुटौवल होता ही उसमें, मैं तो डरके मारे मरी—"

"वह गया है क्या वहाँ ?"

"नहीं। वही बात तो कहने आई हूँ तुमसे। किसी की भी मनाही सुन नहीं रहा था, यहाँतक कि अपनी भाभीकी भी नहीं—अन्तमें वन्दनाकी बात उसे माननी पड़ी।"

खबर चाहे कितनी ही मजेदार क्यों न हो, उसने माँकी सुपरिचित मर्यादामें माना कहीं जरा चोट पहुँचाई। विप्रदासने, मन ही मन विस्मित होनेपर भी, मुँहसे कहा—"क्या सचमुच ?"

दयामयीने हँसकर जवाब दिया—"देखनेमें तो यही आया। कल न-जाने

उन दोनोंमें शर्त हुई थी कि वहाँ रहकर एक बार भी जूते नहीं पहनेंगी, खान-पानमें इस घरके नियम नहीं तोड़ेंगी और उसके बदले दूसरे पक्ष वालेको उसका अनुरोध मानकर चलना पड़ेगा। वन्दनाने द्विजूके कमरेमें जाकर सिर्फ इतना कहा कि 'द्विजूबाबू शर्त याद है न? आप आज हरगिज नहीं जा सकेंगे।' द्विजूने मजाक करते हुए कहा,—'अच्छी बात है, न जाऊँगा।' सुनकर मेरी तो चिन्ता दूर हो गई विपिन। क्या करके आता, किस फन्दमें फँसता,—तुम्हारे बाबूजी हैं नहीं, कितना डर डरके उसे लेकर रहती हूँ सो कह नहीं सकती।"

विप्रदास चुप रहे। माँ कहने लगीं—"पहले तो उसके स्कूल-कालेज था, पढ़ना-लिखना और इम्तिहान पास करना था पर अब तो कुछ बचा ही नहीं रहा, हाथमें कोई काम न रहनेसे बाहरका कौन-सा झंझट कब घरतक खींच लाएगा कोई नहीं कह सकता। इसीसे सोचा करती हूँ, अन्तमें जाकर इतने बड़े वंशका वह एक कलंक न बन बैठे।"

विप्रदासने हँसते हुए गरदन हिलाकर कहा—"नहीं माँ, ऐसा डर मत करो। द्विजू कलंकका काम हरगिज नहीं करेगा।"

मैंने कहा—'मान लो, अगर अचानक जेल ही हो गई तो? क्या इसकी आशंका नहीं है?"

विप्रदासने कहा—"आशंका है, सो तो मालूम है। पर जेल जानेमें तो कलंक नहीं है माँ, कलंक है काममें। वैसा काम वह नहीं करेगा। मान लो अगर मुझे ही कभी जेल हो जाय,—हो भी तो सकती है,—तब क्या मेरे लिए तुम लज्जित होगी माँ? कहोगी कि विपिन हमारे वंशका कलंक है?"

इस बातने दयामयीके एक-सा छेद दिया। क्या मालूम, कोई अन्तर्हित इशारा तो नहीं है? इस लड़केको उन्होंने छातीसे लगाकर इतना बड़ा किया है, और अच्छी तरह जानती थीं कि सत्यके लिए—धर्मके लिए ऐसा कोई काम नहीं जो विप्रदास न कर सकता हो। अन्यायका प्रतिवाद करनेमें किसी विपत्ति या किसी परिणामकी वह परवाह नहीं करता। जब उसकी सिर्फ अठारह सालकी उमर थी तब एक मुसलमान परिवारका पक्ष लेकर वह अकेला ही ऐसा काण्ड कर बैठा था कि कैसे प्राण बचाकर वापस आ सका, यह आजतक दयामयीके लिए रहस्यका व्यापार बना हुआ है। वन्दनाके मुँहसे उस दिनकी

बेटेकी घटना सुनकर वे मारे शंकाके एकबारगी दंग रह गयीं थीं। द्विजूके लिए उन्हें उद्वेग रहता है, यह सच है किन्तु भीतर-ही भीतर बहुत ज्यादा डर है उन्हें इस बड़े लड़केके लिए। मन ही मन यही बात सोच रही थीं। विप्रदासने कहा—"क्यों माँ, कलँककी दुश्चिन्ता तो मिट गई न? जेल तो अचानक किसी दिन मुझे भी हो सकती है।"

दयामयी सहसा व्याकुल होकर बोल उठीं—"सत्यैयाँ हूँ अपनेकी,—भगवान् बचायें, ऐसी दुर्लक्षणकी बात न निकाल मुँहसे बेटा। उसके बाद ही कहने लगीं—जेल होगी मुझे और मेरे बेटे? तो फिर इतनी उमरतक देवी-देवताओंकी पूजा क्या की मैंने? इतनी सम्पत्ति है किसलिए? सारीकी सारी जायदाद बेच दूँगी तो भी ऐसा नहीं होने दूँगी विपिन।"

विप्रदासने झुककर उनकी पग्धूलि ली, दयामयीने सहसा उसे अपनी छातीके पास खींचकर कहा—"द्विजूका जो हो सो होता रहे, पर तू कभी मेरी आँखोंसे ओझल हुआ तो मैं गंगाजीमें डूब मरूँगी विपिन। यह मुझसे न सहा जायगा, सो ध्यान रखना।"—कहते-कहते उनकी आँखोंसे कई बूँद आँसू ढुलक पड़े।

"माँ, इस वक्त क्या"" कहते-कहते वन्दना वहाँ आ पहुँची। दयामयीने बेटेको छोड़कर आँखें पोंछ डालीं; और वन्दनाके विस्मित चेहरेकी ओर देखकर हँसते हुए कहा—"लड़केको बहुत दिनोंसे छातीसे नहीं लगाया था, इससे जरा साध हुई कि लगा लूँ।"

वन्दनाने कहा—"लेकिन मैं कह दूँगी उनसे कि बूढ़ा लड़का है।"

दयामयीने प्रतिवाद करते हुए कहा—"सो कह देना, पर बूढ़ा शब्द मुँहसे न निकालना बेटी। अभी उस दिनकी तो बात ही है, मैं ब्याही हुई आई थी और आँगनमें खड़ी ही हुई थी। मेरी फुफुआ-सास तब जीती थीं। विपिनको उन्होंने मेरी गोदमें डालते हुए कहा था, "यह लो, अपने बड़े बेटेको बहू। काम-काजकी भीड़में बहुत देरसे कुछ खाया-पीया नहीं है इसने,—पहले इसे खिला-पिलाकर सुला दो, उसके बाद दूसरे काम होते रहेंगे।' उन्होंने शायद देखना चाहा होगा कि मुझसे हो सकेगा या नहीं,—मालूम नहीं हो सका कि नहीं।"—इतना कहकर वे फिर हँसने लगीं।

वन्दनाने पूछा—"आपने फिर क्या किया माँ?"

दयामयीने कहा—"घूँघटके भीतरसे देखा कि सोनेसे गढ़ा-हुआ

खिलौना है बड़ी-बड़ी आँखोंसे आश्चर्यके साथ मेरी ओर देख रहा है। छातीसे चिपकाकर मैं वहाँसे भाग खड़ी हुई। आचार अनुष्ठान होना तब भी बहुत-सा बाकी था, सब हँ-हँ करके शोर मचा उठे, पर मैंने एक न सुनी। कहाँ घर है, कहाँ द्वार, कुछ जानती न थी,—जो दासी साथ दौड़ी आई थी उसने घर दिखा दिया, उसीसे मैंने कहा, 'जा तो महरी, मेरे लल्लाकी दूधकी कटोरी, इसे बिना खिलाये-पिलाये मैं एक कदम भी नहीं हिलनेकी'। उस दिन मुहल्ले-पड़ोसकी औरतोंमेंसे किसीने कहा—बेहया है, किसीने कुछ, लेकिन मैंने किसीकी बात कान ही न धरी। मन-ही-मन कहा, कहने दो। जिस रत्नको गोदमें पाया है उसे तो और कोई छीन नहीं सकता। मेरे उसी लड़केको तुम कहती हो कि दूसरा है!"

तीस साल पहलेकी घटना याद आनेसे आँसू और हँसीने मिलकर उनका चेहरा वन्दनाकी दृष्टिमें अपूर्व बना दिया, अकृत्रिम स्नेहका सुगम्भीर स्पर्श इस तरह अनुभव करनेका सौभाग्य उसे और कभी नहीं हुआ। अभिभूत दृष्टिसे वह कुछ देर देखती रही और फिर अपनेको सँभालकर उसने हँसते-हँसते कहा—"माँ, आप अपने लड़कोंमेंसे किसे ज्यादा प्यार करती हैं, सच-सच बताइए!"

सुनकर दयामयी भी हँस दीं, बोलीं—"असम्भव सच होनेपर भी कहना नहीं चाहिए बेटी, शास्त्रोंमें उसकी मनाई है।"

वन्दना बाहरकी लड़की है, हाल ही उससे परिचय हुआ है, उसके सामने पहलेकी इन सब बातोंकी आलोचना विप्रदासको अच्छी नहीं मालूम हो रही थी उन्होंने कहा—"बतानेसे भी तुम समझोगी नहीं वन्दना। तुम्हारी कालेजकी अँग्रेजी पोथियोंमें ये सब तत्त्व नहीं हैं। उनके साथ मिलाकर जाँच करने बैठोगी तो माँकी बात तुम्हें बड़ी अद्भुत-सी मालूम देगी। इस आलोचनाको रहने दो।"

सुनकर वन्दना खुश न हुई, बोली—"अँग्रेजी पोथियाँ आपने भी तो कम नहीं पढ़ीं मुखर्जी साहब फिर आप कैसे समझ जाते हैं?"

विप्रदासने कहा—"कौन कहता है कि माँको मैं समझता हूँ वन्दना,—नहीं समझता। ये सब बातें सिर्फ मेरी माँकी पोथीमें ही लिखी हैं,—उसकी भाषा अलग है, अक्षर अलग है, व्याकरण या दूसरा है। उसे माँ ही समझती हैं—और कोई नहीं। ऐ माँ, जो तुम कहने आई थीं सो तो अभीतक कहा ही नहीं।"

नन्दना समझ गई कि यह इशारा उसीके लिए है। बोली—"माँ, इस वक्त क्या रसोई बनेगी, यही मैं पूछने आई थी,—अब मैं जाती हूँ, पर आप भी ज़रा जल्दी आना। सब भूल-भालकर फिर कहीं लड़केको गोदमें लिये न बैठी रहना।"—इतना कहकर वह विप्रदासकी ओर ज़रा कटाक्ष करती हुई चली गई।

उसके चले जानेपर दयामयीके चेहरेपर दुश्चिन्ताकी छाया आ पड़ी क्षण-भर इधर उधर करके दुविधाके स्वरमें उन्होंने कहा—"विपिन, तू तो खूब समझता है, जानता है पिता-माताको कभी धोखा न देना चाहिए—"

विप्रदास बीचहीमें बोल उठे—"माँ, दुहाई है तुम्हारी, इस तरह तुम भूमिका मत बाँधो। क्या पूछना चाहती हो सो पूछो।"

दयामयीने कहा—"तूने अचानक आज यह बात क्यों कही कि तुझे भी जेल हो सकती है! कैलास जानेका संकल्प अभीतक मैंने छोड़ा नहीं सो ठीक, पर अब तो मैं एक कदम भी नहीं हिल सकती विपिन।"

विप्रदास हँस पड़े, बोले—"कैलास जानेको मैं उद्विग्न नहीं माँ, पर उसका दोष अन्तमें मेरे हो सिर न मढ़ देना। मैंने तो सिर्फ एक दृष्टान्त दिया था—द्विजूको यात तुम्हें समझानी चाही थी कि सिर्फ जेल जानेसे ही किसीके वंशमें कलंक नहीं लग सकता।"

दयामयीने सिर हिलाते हुए कहा—"इन बातोंसे तू मुझे भुलावा नहीं दे सकता विपिन। इधर उधरकी फ़िजूल् बात कहनेवाला तू नहीं है—या तो कुछ कर गुज़रा है, या फिर कुछ करनेकी ताक रहा है। मुझे सच सच बता दे।"

विप्रदासने कहा—"तुमसे मैं सच-सच ही कह रहा हूँ, मैंने कुछ नहीं किया। पर मनुष्यके मनमें कितने तरहके विचार आते-जाते हैं उनका क्या कोई ठीक-ठीक निर्देश किया जा सकता है माँ!"

दयामयीने पूर्ववत् सिर हिलाते हुए कहा—"नहीं यह बात भी नहीं। नहीं तो बात क्या है जो आजकल तुझे देखते ही मेरा मन ऐसा सोचने लगता है! तुझे मैंने पाल-पोसकर बड़ा किया है, मेरे जीते-जी ही अन्तमें आकर इतनी बड़ी नमकहरामी करेगा बेटा!"—कहते-कहते उनकी दोनों आँखें भर आईं।

विप्रदास बड़ी मुश्किलमें पड़ गया, बोला—"अमंगलकी कल्पना करके अगर तुम झूठमूठ ही डरने लग जाओ माँ, तो मैं उसका क्या प्रतीकार कर सकता हूँ बताओ! तुम तो जानती हो कि तुम्हारी बिना अनुमतिके मैं कभी

को" काम नहीं करता।"

दयामयीने कहा—"नहीं करता तो ठीक है, पर कल द्विजूको बुलाकर यह क्यों कहा कि वह सब काम-काज सँभाल ले?"

"बड़ा हो गया, अब वह मुझे सहायता न देगा?"

दयामयीने नाराज होकर कहा—"उसमें शक्ति ही कितनी है? मुझे भुलावा मत दे विपिन,—तू आज इतना थक गया है कि तुझे सहायता देनेवाला चाहिए? तेरे मनमें क्या है सो मुझे साफ-साफ बता दे।"

विप्रदास चुप रहा उसने यह बात भी नहीं कही कि वे स्वयं ही उससे अभी-अभी द्विजदासके भविष्यके सम्बन्धमें सोचनेको कह रही थीं। परन्तु इसका आभास उनकी बादकी बातोंमें मिला। वे कहने लगीं—"हमारी यह पुरखोंकी गृहस्थी है, वंशका परिवार है, यहाँ अनाचार सहन नहीं होगा। हमारा घर नियमोंकी कड़ियोंमें बँधा है। मैंने तेरा ब्याह समय पर की उमरमें किया था,—सो तेरी राय लेकर नहीं,—हम लोगोंकी साध हुई थी इसलिए। पर द्विजू कहता है, वह ब्याह नहीं करेगा। उसने एम० ए० पास किया है, उसमें बुरा भला समझनेकी शक्ति आ गई है उसपर किसीका जोर नहीं चल सकता। वह अगर पसन्द नहीं करता है उसपर मेरा विचार नहीं; पर मेरे ससुरकी सम्पत्तिमें हाथ न लगाने पावे।"

विप्रदासने पूछा—"द्विजूने कब कहा कि वह ब्याह न करेगा?"

"अक्सर कहा करता है। कहता है ब्याह करनेवाले और भी बहुत आदमी हैं, वे करें। वह सिर्फ देशका काम करेगा। तुम लोग सोचते हो कि मैं यहाँ आकर खूब घूमा-फिरा करती हूँ, बड़े आनन्दमें हूँ। पर मैं आनन्दमें नहीं हूँ, इसपर तैंने ये बाबा बेटेका दृष्टान्त—जैसे मुझे समझानेके लिए और कोई दृष्टान्त ही तेरे पास न था। एक दिन लेकिन तुझे पता लग जायगा विपिन—"

विप्रदासने कहा—"उसकी भाभीको हुक्म देनेको कहो न माँ।"

"उसकी बात भी वह न सुनेगा।"

"सुनेगा माँ, सुनेगा। समय होते ही सुनेगा।"—फिर जरा हँसते हँसते बोला—"और अगर तुम्हें आज्ञा दो तो मैं भी उसके लिए पात्री ढूँढ सकता हूँ।"

इतनेमें वन्दना कमरेके अन्दर चली आई और शिकायतके स्वरमें बोली—"कहाँ, आई तो नहीं माँ? मैं कबसे बैठी हूँ।"

"चलो बेटी मैं आ रही हूँ।"

विप्रदासने कहा—"अपने अक्षय-बाबूकी उस लड़कीको तुम्हें याद है माँ! अब वह बड़ी हो गई है। जैसा रूप है, गुणोंमें भी वैसी ही है। हम लोगोंके लिए वह घर अपने ही घर-जैसा है, कहो तो लड़की देख आऊँ, बातचीत करूँ! मेरा तो विश्वास है किसीको वह नापसन्द न होगी।"

"नहीं नहीं अभी रहने दे।"—कहकर दयामयीने क्षण-भरके लिए एक बार वन्दनाके मुँहकी ओर देखा, फिर कहा—"सतीकी इच्छा है,—नहीं,—नहीं विपिन, बहूसे पूछे बगैर मुझे अभी कुछ करने धरनेकी जरूरत नहीं।"

अब वन्दनाने बात की। अपनी सुन्दर और शान्त दृष्टिसे दोनोंकी तरफ देखकर कहा—"इसमें हर्ज ही क्या है माँ! यहीं तो है कलकत्तेमें, चलिए न दीदीको लेकर, हम लोग चलके देख आवें।"

सुनकर दयामयी मुसीबतमें पड़ गईं; क्या जवाब दें उन्हें कुछ ढूँढे न मिला।

विप्रदासने कहा—"पर अच्छा प्रस्ताव है माँ। अक्षयबाबू स्वधर्मनिष्ठ ब्राह्मण पण्डित हैं, संस्कृत अध्यापक हैं। लड़कीको उन्होंने स्कूल-कालेजमें पढ़ाकर तो पास नहीं करवाया, पर जतनसे उसे सिखाया बहुत-कुछ है। एक दिन उन लोगोंके यहाँ मेरा निमन्त्रण था। उस दिन मैंने उस लड़कीसे बहुत-सी बातें पूछी थीं। ऐसा लगा कि आपने जो मनकी आपसे लड़कीका नाम रखा था मैत्रेयी, सो अशोभन नहीं हुआ। जाओ माँ, जाकर एक बार उसे देख आओ,—तुम्हारी बड़ी बहू कमसे कम मनमें तो स्वीकार करेगी कि उनके सिवा भी संसारमें रूपवती लड़कियाँ हैं।'

माने हँसना चाहा, पर हँसी आई नहीं, और न मुँहसे कोई बात ही निकली।

वन्दनाने फिरसे अनुरोध किया—"चलिए न माँ, हम लोग चलकर मैत्रेयीको देख आवें एक बार! ज्यादा दूर भी तो नहीं है।"

दयामयीने वन्दनाकी ओर गौरसे देखा, देखा कि उसके चेहरेपर पहलेका सा वह लावण्य नहीं रहा—मानो किसी अजानेने आकर उसे ढक दिया है। अब, इतनी देर बाद उन्हें जवाब ढूँढे मिल गया, बोलीं—"नहीं बेटी, दूर ज्यादा नहीं है सो तो मालूम है, पर, उतना समय भी मेरे पास नहीं है। चलो, हम लोग चलें, देखूँ क्या-क्या रसोई बनेगी सो देखें चलकर।"—इतना कहकर वन्दनाका हाथ पकड़के वे कमरेसे बाहर चली गईं।

१३

संध्या-वन्दन समाप्त करके विप्रदास अभी-अभी अपनी लाइब्रेरीमें आकर बैठे हैं। सबेरेकी डाकसे जो दस्तावेज वगैरह अदालती कागजात वगैरह आये हैं उनका देखना जरूरी है। इतनेमें माँने आकर कहा—"क्यों रे विपिन, तू क्या हर एक बातको बढ़ाकर ही कह सकता है?"

विप्रदास कुरसीसे उठकर खड़ा हो गया, बोला—"कौन-सी बात माँ?"

"अक्षय बाबूकी लड़की मैत्रेयीको हम लोग देख आई हैं।"

"लड़की क्या बुरी है?"

दयामयी जरा इतस्ततः करके बोलीं—"नहीं, बुरी मैं नहीं बताती,—साधारणतः ऐसी लड़की देखनेमें नहीं आती, यह ठीक है;—लेकिन तूने क्या समझकर मेरी बड़ी बहूसे उसकी तुलना की बता तो? खैर, बहूकी बात भी जाने दे रूपमें क्या वन्दनाके आगे भी वह टिक सकती है?"

विप्रदास आश्चर्यमें आकर बोले—"तब शायद तुम लोग और किसीको देख आई होंगी। वह मैत्रेयी नहीं होगी।"

दयामयीने हँसते हुए कहा—"है तो वही। हम लोगोंके साथ-साथ उसकी कितनी बातें हुईं कैसे-कैसे यत्नसे उसने चाय वगैरहको खिलाया-पिलाया—उसके बाद कितनी किताबें, कितनी पढ़ाई-लिखाईकी बातें वन्दनाके साथ उसकी होती रहीं,—और तू कहता है कि हम लोग और किसीको देख आई हैं!"

विप्रदासने कहा—"वन्दनाके सब सवालोंका शायद वह जवाब न दे सकी होगी, परन्तु माँ यह भी तो सोचो कि पढ़ाई-लिखाईमें वन्दनाने स्कूल-कालेजोंमें कितनी किताबें पढ़के कितनी परीक्षाएँ पास की हैं, और उसने सिर्फ बापसे ही कुछ-कुछ सीखा है। ऐसा समझो जैसा मेरे साथ तुम्हारे छोटे बेटेमें फर्क है।"

सुनके दयामयीकी दोनों आँखें मारे कौतुकके नाच उठीं बोलीं—"चुप रह विपिन, तू चुप रह। द्विजू बगलके कमरेमें है, सुन लेगा तो मारे शर्मके घर छोड़कर भाग जायगा।"—फिर जरा रुककर कहने लगीं—"तेरी माँ मूरख है तो क्या इतनी मूरख है कि कालेजमें पास करनेको ही चतुराई मान बैठेगी? सो बात नहीं है रे, बल्कि छोटे छोटे वाक्योंमें मीठे तौरसे उसने वन्दनाकी सभी बातोंका जवाब दिया था। गाड़ीमें आते हुए वन्दनाने उसकी कितनी तारीफ

थी भी। पर मेरा कहना है कि हमारे जैसे खानदान-घरानेमें जरूरत क्या है बेटा, इतनी पढ़ी-लिखीकी ? जैसी मेरी एक बहू आई है, दूसरी वैसी ही आ जाय, तो काम चल जायगा। नहीं तो विद्याके घमण्डसे वह यदि कहीं बड़े-बूढ़ोंको तुच्छ समझने लगे ! यह नहीं होनेका।"

विप्रदास समझ गया कि विरहका जवाब माँसे बन नहीं रहा है, गड़बड़ हुआ जा रहा है उसने हँसते हुए कहा—"इसका डर मत करो माँ। विद्या जिनमें कम होती है उन्हींमें ज्यादा घमण्ड होता है, उसने बापसे अगर सचमुच ही कुछ सीखा हो तो आचार-आचरणमें सबका विनय करके ही चलेगी, यह तुम देख लेना।"

इस युक्तिको माँ अस्वीकार न कर सकीं, बोलीं—"यह बात तेरी सच है, पर पहलेसे मालूम कैसे पड़ सकता ! इसके सिवा हमारे गँवई-गाँवमें विद्याको कभी कोई जाँचने नहीं आता, पर बहू देखकर यदि किसीने नाक चढ़ाकर कह दिया कि इस पढ़ी-लिखाईके क्या आप न थीं जो ऐसी बहूके पास ऐसी बहू लाके खड़ी कर दी, तो वह मुझसे न सहा जायगा बेटा।"

विप्रदास कुछ देर मौन रहकर बोला—"पर अक्षयबाबूको तो कुछ-न-कुछ जवाब देना ही पड़ेगा माँ। उस दिन उन्हें भरोसा दे आया था कि मेरी माँ शायद नापसन्द न करेंगी।'

सुनके दयामयी चंचल हो उठीं, बोलीं—"यह बात न कहता तो ठीक रहता विपिन। खैर, कुछ भी हो, बहूकी क्या राय है, पहले सुन लूँ, उसके बाद उन्हें कह देना जो कुछ कहना हो।"

विप्रदासने कहा—'अक्षयबाबू हमारे लिए कोई गैर नहीं हैं। इतने दिनोंसे परिचय नहीं था, इसीसे बात प्रकाशमें नहीं आई है। लेकिन मैं आत्मीयताके लिए भी नहीं कहता,—तुमने अपने और एक लड़केका जब ब्याह किया था, अपनी ही पसन्दके माफिक किया था, और किसीसे पूछने नहीं गई थीं। और इस ब्याहके लिए ही क्यों इतनी राय जाननेकी जरूरत पड़ गई माँ ?"

दयामयी तर्कमें हारकर हँसती हुई बोलीं—"पर अब तो बूढ़ी हो गई हूँ बेटा, अब और कितने दिन जीऊँगी भला ! फिर हमेशा जिसे साथ रहकर घर गिरस्ती करनी है उसकी बगैर राय लिये कैसे ब्याह कर दूँ बेटा ! नहीं-नहीं, दो चार रोज तू हम दोनोंको विचारनेका समय दे।"—इतना कहकर वे बाहर चली गईं।

बाहर आकर दयामयी अपने कमरेकी ओर न जाकर समधीके कमरेकी तरफ चल दीं। इन कई दिनोंकी घनिष्ठतासे वन्दनाके पितासे उनका संकोच बहुत-कुछ दूर हो गया था। वे प्रायः खुद आ-आकर उनकी खबर ले जाया करती हैं। शाम बीत चुकी थी, सन्ध्या-पूजामें बैठ जानेसे फिर जल्दी उठ न सकेंगी—यह सोचकर वे उनके कमरेमें जा पहुँचीं—"कैसी तबीयत है—"

उनकी बात पूरी न हो सकी। कमरेके एक तरफ एक सुदर्शन युवक वन्दनाके साथ बैठा हुआ गुपचुप बातें कर रहा था; निर्दोष अँग्रेजी पोशाक पहने हुए इस अपरिचित आदमीके अचानक सामने आ पड़नेसे दयामयी लज्जासे पीछे हटना ही चाहती थीं कि राय साहब कह उठे—"कहाँ भागी जा रही हैं समधिनजी, यह तो अपना सुधीर है। इससे क्या शर्म ! इसे तो विप्रदास द्विजदासकी तरह अपने लड़कोंमें ही समझो। मेरी बीमारीकी खबर सुनकर मद्रासते मिलने आया है। सुधीर, ये वन्दनाकी जीजीकी सास हैं, विप्रदासकी माँ, इन्हें प्रणाम करो।'

सुधीरको प्रणाम करनेकी शायद आदत नहीं है, और इस पोशाकसे करना कठिन भी है, उसने पास आकर सिर झुकाके किसी कदर आज्ञाका पालन कर दिया।

इस लड़केके साथ दयामयीका सन्तान-सम्बन्ध किस सूत्रसे हुआ, इस बातको समझानेके लिए साहब कहने लगे—'इसके बाप और मैं दोनों एक साथ विलायतमें पढ़ते थे तभीसे हम दोनोंमें खूब मित्रता हो गई थी। सुधीरने खुद भी विलायतमें रहकर बहुत-सी डिग्रियाँ हासिल की हैं और अब मद्रासमें शिक्षा विभागमें अच्छी नौकरी कर रहा है। बात हो गई है कि वन्दनाके साथ ब्याह हो जानेपर कुछ दिनकी छुट्टी लेकर उसके साथ यह फिर विलायत जायगा। वहाँ वन्दना चाहे तो कालेजमें भरती हो जायगी नहीं तो सिर्फ देखकर ही दोनों साथ लौट आवेंगे। देखो सुधीर, तुम लोग अगर इसे अगस्त-सितम्बरमें ही जानेका तय कर सको तो मैं भी न-हो-तो तीनेक महीनेकी छुट्टी लेकर घूम आऊँगा। क्या कहती है बिन्दो,—ठीक है न ?"

वन्दनाने नतशिर बैठे-बैठे धीरेसे कहा—"ठीक क्यों न होगा बापूजी, तुम साथ रहोगे तो अच्छा ही रहेगा।"

राय साहबने उत्साहके साथ कहा—"उससे एक और सुभीता होगा कि तुम लोगोंके ब्याहके बाद भी महीने भरका समय मिल जायगा, किसी तरहकी

अस्दवाजी न करनी पड़ेगी। समझ गये न सुधीर!"

इसका सुधीर और वन्दना दोनोंने सिर हिलाकर समर्थन किया। दयामयीने अब समझ लिया कि लड़का राय साहबका भावी जमाई है। अतएव, वह भी पुत्र-स्थानीय है। दयामयीके हृदयमें सहसा एक भारी उथल पुथल हो गई पर वे विप्रदासकी माँ ठहरीं, बलरामपुरके ख्यातिप्राप्त मुखर्जी-परिवारकी स्वामिनी, उन्होंने अपनेको सम्भाल लिया और उस लड़केसे पूछा—"सुधीर, तुम्हारा देश कहाँ है?"

सुधीरने कहा—"अभी तो बम्बई समझिए। लेकिन फादरके मुँहसे सुना था कि दुर्गापुरके रहनेवाले थे हम लोग पर अब वहाँ शायद हम लोगोंका कुछ भी नहीं है।"

"कौन-सा दुर्गापुर? बर्धमान जिलेका?"

सुधीरने कहा— "हाँ, पिताजीसे ऐसा ही तो सुना है। कालनाके पास एक कोई छोटा-सा गाँव है, अब तो सुनते हैं कि मैलेरियासे वह बिलकुल ध्वस हो चुका है।"

दयामयीने क्षण-भर मौन रहकर पूछा—"तुम्हारे पिताजीका नाम क्या है?"

सुधीरने कहा—"पिताजीका नाम श्रीरामचंद्र वसु है।"

दयामयी चौंक उठीं, बोलीं—"उनके बापका नाम क्या था, हरिहर वसु?"

प्रश्न सुनकर राय साहबतक आश्चर्यान्वित हो गये, बोले—"आप उन लोगोंको जानती हैं क्या?"

"हाँ, जानती हूँ। दुर्गापुरमें मेरी ननसाल है। बचपनमें मैं अपनी नानीके पास ही रहा करती थी, इसलिए वहाँके प्रायः सभी लोगोंको पहचानती हूँ। इन लोगोंका घर हमारे मुहल्लेहीमें था। पर, अभी तो बात करनेका समय नहीं सुधीर, सन्ध्या-पूजाका देर हुए जा रही है। मगर कुछ खाये पीये बगैर तुम चले मत जाना, मैं अभी सब ठीक कर देनेके लिए कहे देती हूँ।"

सुधीर रुकता हुआ बोला—'अबतक बाकी थोड़ ही है,—विप्रदास बाबूने पहलेहीसे वह काम निबटवा दिया है।'

"निबटवा दिया! अच्छा तो मैं अब जाती हूँ।" कहकर दयामयी वहाँसे चल दीं। वन्दनाकी तरफ एक बार देखातक नहीं बाततक नहीं की।

दूसरे दिन सबेरे स्नान-आह्निक आदिसे निबटकर विप्रदास प्रतिदिनके अभ्यासके अनुसार माँकी पदधूलि लेने उनके कमरेमें पहुँचा तो उनके आश्चर्यका

ठिकाना न था; देखा कि उनकी जानेकी तैयारी हो रही है, चीज-वस्तु बाँधी जा रही है।

"यह क्या माँ, कहीं जा रही हो क्या ?"

दयामयीने कहा— 'तू मिला नहीं इससे द्विजूसे पुछवाकर मालूम किया कि साढ़े-नौ बजेकी गाड़ीमें जानेसे शामसे पहले ही घर पहुँचा जा सकता है। लेकिन परसों तेरे मुकदमेकी तारीख है, तू तो संग जा नहीं सकेगा, द्विजूसे कह दिया है, वह मुझे पहुँचा आयेगा।'

विप्रदासने माँके चेहरेकी तरफ देखा तो मालूम हुआ, उनकी आँखें म्लान हो रही हैं, मुँह सूख गया है; देखनेसे मालूम होता है कि उनके ऊपरसे मानो एक आँधी-सी बह गई है।

विप्रदासने डरते-डरते पूछा—"अचानक क्या कोई जरूरी काम आ पड़ा माँ ?'

माँने कहा—"दो दिनके लिए आई थी आठ-दस दिन बीत गये वहाँ ठाकुरजीकी सेवाका क्या हो रहा होगा—मालूम नहीं। पाँच-छै गायें बियाने वाली थीं उनकी भी कुछ खबर नहीं मिली कि क्या हुआ। बासूकी पढ़ाई भी छूट रही है,—इसलिए अब देर करना ठीक नहीं विपिन।"

यह सच है कि ये सब बातें दयामयीके लिए तुच्छ न थीं, किन्तु फिर भी असल कारण उन्होंने प्रकट नहीं किया, विप्रदास इस बातको ताड़ गये और बोले— "तो भी क्या आज बगैर गये काम न चलेगा माँ ?"

"नहीं बेटा तू मुझे रोक मत। द्विजूको साथ जानेके लिए कह दिया है; न हो तो और कोई हम लोगोंको पहुँचा आये।"

"ऐसा ही होगा माँ।"—कहके विप्रदासने उनके पाँवोंकी धूल सिरसे लगाई और वहाँसे चले आये। अपने सोनेके कमरेमें आकर देखा कि सती अस्त-व्यस्त है और पास बैठी हुई अन्नदा 'सन्देश' फल-फूल और लड़केकी दूधकी बम्बी (छोटी लुटिया) सँभालकर डालनीमें रख रही है।

सती माचेपर घूँघट खींचकर उठके खड़ी हो गई। विप्रदासने कहा— "अन्नदा दीदी, बात क्या है, मालूम है ?"

"नहीं भइया कुछ भी नहीं मालूम। सबेरे माँने मुझे बुलाकर कहा, बच्चे और बहूको खाने-पीनेकी तकलीफ न हो, मैं तो अकेली गाड़ीसे घर जा रही हूँ!"

विप्रदासने सतीसे कारण पूछा तो उसने भी सिर हिलाकर बताया कि वह कुछ नहीं जानती।

सुनकर विप्रदास स्तब्ध रह गया। अन्नदा न भी जानती हो पर सतीको बात यह न जाने, इससे ज्यादा आश्चर्यकी बात और क्या हो सकती है! वे कुछ क्षण चुपचाप खड़े रहे फिर नीचे चले गये; और उद्वेगके साथ यही सोचते हुए गये कि यह तो माँके बिल्कुल स्वभाव-विरुद्ध बात है। क्या मालूम न कौन-सा गहरा दुःख उनके इस विपरीत आचरणके पीछे छिपा रह गया, जिसे किसीपर भी उन्होंने प्रकट नहीं किया।

दयामयी तैयार होकर जब नीचे उतरीं तब भी ट्रेन छूटनेमें बहुत वक्त था परन्तु आज उन्हें किसी भी तरह देर नहीं सुहाती मानो किसी तरह रवाना हो जायँ तो उनकी जान में जान आवे। सामने मोटर तैयार है, और एक दूसरी मोटरमें चीज-वस्तु लादकर नौकर वगैरह सवार हो चुके हैं बैग हाथमें लिए विप्रदासको आते देख उन्होंने आश्चर्यके स्वरमें पूछा—"द्विजू कहाँ है?"

विप्रदासने कहा "वह नहीं जायगा माँ मैं ही तुम्हें पहुँचाने जाता हूँ।"

"क्यों, वह जानेको राजी नहीं हुआ शायद?"

विप्रदासने विनयके साथ कहा—"उसके लिए ऐसी बात तुम्हें न कहनी चाहिए माँ। तुम्हारे हुक्म देनेपर कब उसने हुक्म-उदूली की है बताओ तो?"

"तो हो क्या गया? आया क्यों नहीं?"

"मैंने ही आनेको नहीं कहा माँ।"—इतना कहकर विप्रदास हँसते हुए बोले—"जिस बातके लिए तुम इतनी उद्विग्न हो उठी हो, अपने ठाकुरजी—अपनी गायें,—उनकी सचमुच क्या हालत हुई, अपनी आँखोंसे देख आनेके लिए ही मैं जा रहा हूँ। और कोई बात नहीं माँ।"

और कोई समय होता तो शायद दयामयी खुद भी हँसकर लड़केसे कितनी ही बातें कहतीं पर इस समय वे चुप रहीं।

अन्नदा वन्दनाको बुलाने गई थी वह अभी-अभी नहा धोकर पिताके कमरेमें जा रही थी, अन्नदाके पुकारनेपर जल्दी जल्दी नीचे उतर आई और यहाँका हाल देखकर हतबुद्धि-सी हो गई। दयामयीने कहा—"आज हम लोग घर जा रहे हैं वन्दना।"

"घर! वहाँ क्या हुआ माँ?"

"नहीं, हुआ कुछ भी नहीं। पर जो दिनके लिए आई थी, दस-बारह दिन बीत गये, अब तो नहीं रहा जा सकता। तुम्हारे पिताजीके साथ भेंट न हो सकी—तबतक वे उठे नहीं थे—कह देना, मेरी त्रुटि क्षमाके साथ माफ कर दें। यहाँ द्विजू रह गया, अन्नदा है ही, तुम भी हो, देखना उनकी देख-रेखमें कोई कमी न रहे। चलो बहू, अब देर मत करो।"—इतना कहकर वे गाड़ीमें जा बैठीं।

सती पीछे थी, वह पास आकर वन्दनाका हाथ पकड़ते ही रो दी, बोली—"हम लोग जा रही हैं वन्दना।"—इससे ज्यादा उसके मुँहसे और कुछ निकला ही नहीं। आँखें पोंछती हुई वह गाड़ीमें अपनी सासके पास बैठ गई।

वन्दना स्तब्ध-विस्मयसे निर्वाक् खड़ी रह गई,—जैसे पत्थरकी मूर्ति हो,—अकस्मात् यह हो क्या गया!

बासुने आकर जब उसके पैरोंके पास प्रणाम करके कहा—मैं जा रहा हूँ मौसीजी, तब उसे चैतन्य हुआ कि उसने तो अभीतक किसीको प्रणाम ही नहीं किया। झटपट बासूके माथेको चूमकर वह गाड़ीके दरवाजेके पास पहुँची और हाथ बढ़ाकर दयामयी और सतीके पाँव छुए। सतीने चुपचाप उसकी ठोड़ी छुई और माँने अस्फुट स्वरमें आशीर्वाद दिया, पर क्या कहा सो समझमें न आया। मोटर चल दी।

अन्नदाने कहा—"चलो मौसीमाई, ऊपर चलें।"

उसके स्नेहपूर्ण स्वरसे वन्दना व्यथित हो उठी, क्षण भरमें विह्वलताको जोरसे झाड़-झूड़कर बोली—"तुम जाओ अन्नदा, मैं रसोईका काम खतम करवाकर आती हूँ।" कहकर वह उसी तरफ चली गई।

कल शामको ही बात हुई थी कि राय साहबके बम्बई रवाना हो जानेपर सब एक साथ बलरामपुर चलेंगे। किन्तु आज उसका जिक्रतक नहीं, सुदूर भविष्यमें किसी दिनके लिए मौखिक आह्वानतक नहीं!

घंटे-भर बाद अपने हाथमें चायका सामान लेकर वन्दना अपने पिताके कमरेमें पहुँची तो वे अत्यन्त पश्चात्तापके साथ कहने लगे—'ब्यानजी वगैरह चली गईं, सवेरे उठ न सका बेटी, छि-छि, न जाने उन्होंने क्या समझा होगा मनमें।'

वन्दनाने कहा—"बाबूजी, बम्बई कब चलेंगे?"

पिताने कहा—"तुम्हारी तो बलरामपुर जानेकी बात थी बेटी, तुम नहीं गईं?"

लड़कीने कहा—"तुम्हें अकेला छोड़कर कैसे जाती बापूजी, तुम जो अभी तक अच्छे नहीं हो सके।"

"अच्छा तो मैं हो गया बेटी। मौसीजीको वचन दिया था कि तुम जाओगी। रहो-तो, जाते वक्त मैं तुम्हें बलरामपुर छोड़ता जाऊँगा। क्यों बेटी?"

"नहीं बापूजी, सो नहीं होगा। तुम्हें इतनी दूरका सफर मैं अकेले नहीं करने दूँगी।"

लड़कीकी बात सुनकर पिता पुलकित चित्तसे उसका तिरस्कार करते हुए बोले—"चल पगली, मुलाकात होनेपर मौसीजी तेरी हँसी उड़ाती हुई कहेंगी, बूढ़े बापको यह लड़की अपनी आँखोंसे ओझल नहीं कर सकती। छि-छि—"

"तुम चाय पीओ बापूजी, मैं अभी आई।"—कहकर वन्दना वहाँसे चल दी।

१४

संध्या बीत चुकी थी। वन्दनाने आकर द्विजदासके कमरेके सामने खड़ी होकर आवाज दी—"एक बार भीतर आ सकती हूँ द्विजू बाबू?" भीतरसे जवाब आया—"आ सकती हैं। एक बार नहीं, शत-सहस्र-असंख्य बार आ सकती हैं।"

वन्दनाने दोनों किवाड़ोंको कुछ हटाकर खोलकर भीतर प्रवेश किया और वह कमरेकी सबकी सब चीजें देखकर घूमते हुए पलंगके पास एक कुरसी खींचकर बैठ गई।

द्विजदासने हाथकी किताब एक तरफ औंधी करके रख दी और वह बिस्तरपर उठकर बैठ गया; बोला—"क्या हुक्म है?"

"क्या पढ़ रहे थे?"

"भूतोंकी कहानी।"

"अतिथि बड़े हैं या भूतोंकी कहानी?"

"भूतोंकी कहानी।"

वन्दना नाखुश होकर बोली—"हर वक्त हँसी-मजाक अच्छी नहीं होती। हम लोग आपके घर ठहरे हुए हैं, इस बातका होश आपको है?"

द्विजदासने कहा—"तुम लोग मेरे भाई-साहबके अतिथि हो, इस बातका

ज्ञान मुझे पूर्णरूपसे है। और, घरके मालिक आदेश दे गये हैं कि तुम लोगोंकी खातिर-तवज्जहमें जरा भी खामी न रहने पाये। अवश्य ही खामी जरा भी न आने पाती, मगर इस भूतोंकी कहानीने मुझे आत्मविस्मृत कर दिया जिससे किंचित् वैचित्र्य हो गया। शिष्टाचार अतिथिसे क्षमा चाहता हूँ।"

"मेरा सारा दिन कितनी मुश्किलसे बीता है—जानते हैं?"

"जरूर जानता हूँ।"

"जरूर जानते हैं? और फिर भी प्रतीकारके लिए आपने कोई उपाय न किया?"

द्विजदासने कहा—"न करनेका प्रथम कारण पहले ही निवेदन कर चुका हूँ, दूसरा कारण यह है कि उसका प्रतीकार करना मेरी शक्तिके बाहरकी बात है।"

"क्यों?"

"सो मुझे नहीं कहना चाहिए।"

वन्दनाने पूछा—"माँ और भाभी इस तरह अचानक देश क्यों चली गईं?"

"भाभी आपकी गई हैं प्रबल-पराक्रान्त सासजीके आदेशानुसार अन्यथा वे निर्दोष हैं।"

"लेकिन माँ क्यों गईं?"

"वे ही जानें।"

"आप नहीं जानते?"

द्विजदासने कहा—"बिलकुल ही नहीं जानता, कहना तो झूठ होगा। कारण, भाभीने किंचित् अनुमान कर लिया है और उसका यत्किंचित् अंश मुझे भी ज्ञात हुआ है।"

वन्दनाने कहा—"वह यत्किंचित् अंश ही आपको मुझे बताना पड़ेगा।"

द्विजदास क्षण-भर मौन रहकर बोला—"तब तो तुमने मुझे धर्म-संकटमें डाल दिया वन्दना। क्या उसे सुने बगैर तुम्हारा काम नहीं चल सकता?"

"नहीं तो नहीं चल सकता। आपको कहना ही पड़ेगा।"

"न सुनो, तो हर्ज क्या है?"

वन्दनाने कहा—"देखिए द्विजू बाबू, हम लोगोंमें शर्त हुई थी कि इस घरमें आपकी सब बातें मैं सुनूँगी और मेरी सब बातें आप सुनेंगे। आप जानते हैं कि आपकी एक भी आज्ञा मैंने उल्लंघन नहीं की?"—कहते-कहते उसकी

आँखें भरी आ रही थीं कि उसने दूसरी ओर देखकर किसी तरह अपनेको सँभाल लिया ।

द्विजदासने व्यथित होकर कहा—"बिल्कुल ही व्यर्थकी बात है, इसलिए उसे कहनेकी इच्छा नहीं थी। माँ तुमपर ही नाराज होकर चली गई हैं, यह ठीक है, मगर इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं। सारा दोष माँका अपना ही है। भाभीका भी थोड़ा-सा है, कारण मुझे सन्देह है कि प्रत्यक्षमें न होनेपर भी परोक्षके षड्यन्त्रमें उन्होंने भी साथ दिया है। परन्तु सबसे ज्यादा निरपराध है बेचारा द्विजदास खुद।"

वन्दना अधीर हो उठी, बोली—"बताइए न जल्दी, षड्यन्त्र काहेका था?"

द्विजदासने कहा—"षड्यन्त्र शब्दका प्रयोग शायद उचित न होगा। बात यह है कि माँने मन ही मन तय कर लिया था दोनोंकी संपदाका बटवारा परन्तु हिसाबकी गल्तीसे जब व्यतिक्रम आ पड़ा, तब उन्हें सारे संसारपर गुस्सा आ गया। 'गुस्सा' भी ठीक नहीं कहा जा सकता, बल्कि आशा टूट जानेका क्षुब्ध अभिमान कहना चाहिए।"

वन्दना चुपचाप उसकी तरफ देखती रही। द्विजदास कहने लगा—"तुम तो जानती हो कि एक दिन तुमपर उनकी जितनी ही ज्यादा नफरत या अरुचि थी, बादमें और एक दिन तुमपर उनका उतना ही गहरा स्नेह हो गया। रूप-गुणमें, विद्या-बुद्धिमें, कामकाज और दया-मायामें सिर्फ एक भाभीके सिवा माँकी दृष्टिमें और भी तुम्हारी जोड़का नहीं रहा। किसकी मजाल कि तुम्हें बाप म्लेच्छ कह दे! उसी वक्त माँ कमर बाँधकर प्रमाणित करने बैठ जातीं कि इतनी बड़ी निष्ठावती ब्राह्मणकन्या सात आसमान ढूँढ़ मारनेपर भी न मिलेगी।"—कहते कहते द्विजदास अपने मजाकके आनन्दमें ठठाकर हँस पड़ा।

उसकी यह हँसी वन्दनाको बहुत ही बुरी लगी, फिर भी वह खुद भी हँस पड़ी।

द्विजदासने कहा—"हँसती क्या हो वन्दना, असलमें वही तो हो गई है उनके लिए आफत।"

वन्दनाने कहा—"इसमें आफतकी क्या बात है?"

द्विजदासने कहा—'तो ध्यान पूर्वक श्रवण करो। दयामयीके दो पुत्र हैं—एक ज्येष्ठ और दूसरा कनिष्ठ। ज्येष्ठके प्रति जितनी अगाध आशा और भरोसा

है, कनिष्ठके प्रति ठठना ही अपरिसीम सन्देह और भय है। उनकी धारणा है कि अकर्मण्यतामें संसारमें कोई भी कनिष्ठका मुकाबिला नहीं कर सकता। पर, आखिर हैं तो माँ ही, अपने गर्भमें धारण करके सन्तानको सहजमें जलाञ्जलि नहीं दे सकतीं—लिहाजा मन ही मन पुत्रकी सद्गतिका उपाय निर्धारित किया कि वन्दनाके कन्धोंपर उसे सुप्रतिष्ठित कर देनेके बाद वे संसार-भवभूमिको निर्भयताके साथ पार कर सकेगी। परन्तु विधाता विमुख थे, अकस्मात् कल संध्या-समय पता लगा कि उसके कन्धोंपर स्थान नहीं है,—वह अत्यन्त छोटी नैया है,—मतलब यह कि दयामयीके समस्त संकल्प, समस्त स्वप्न आलको व्यस्त विध्वस्त करके कोई सुघोरकान्त वहाँ पहलेसे ही समारूढ़ हैं, जिसकी मजाल कि उन्हें उससे भ्रष्ट कर सके।"—कहते-कहते वह फिर एक बार ठहाका मारके हँस पड़ा जिससे सारा कमरा गूँज उठा।

वन्दना कुछ क्षण चुपचाप उसके मुँहकी ओर देखती रही, फिर बोली—"आपके इस तरहकी विकट हँसी हसनेका कारण क्या है? माँको क्षोभ या निराशा हुई है इससे, या खुद आपको छुटकारा मिल गया इससे यह आनन्दो च्छ्वास है? कौन-सी बात है?"

द्विजदास मुसकराता हुआ बोला—"यद्यपि इनमेंसे कोई भी नहीं, फिर भी यह कबूल करनेमें कोई हर्ज नहीं कि अकस्मात् परस्मस्तकमें माँ-जननीकी इस पराजयिनी मूर्तिको देखकर एक दर्शकको हैसियतसे मैंने किंचित् निर्मल आनन्द-रसका उपभोग किया है। मगर हाँ, हानि उनकी विशेष कुछ भी न होगी मगर इससे उन्हें कमसे कम इतनी नसीहत तो हो कि संसारमें बुद्धि नामकी चीज सिर्फ उनकी ही अपनी नहीं है, बल्कि उसपर औरोंका भी दावा हो सकता है। कारण मुझे न सही, भाई साहबका भी अगर वे अपने पड्यंत्रका आत्मपक्ष देतीं तो और कुछ हो या न हो, इस कर्मभोगसे उन्हें छुटकारा मिल सकता था। भाई साहब और मैं दोनों ही जानते थे कि तुम दूसरेकी वाग्दत्ता वधू हो, परस्पर प्रणय-डोरीसे आबद्ध हो, लिहाजा उस व्यवस्थासे अन्यथा होना न सम्भव है और न वांछनीय ही।"

वन्दनाने पूछा—"आप लोगोंने यह किससे सुना?"

द्विजदासने कहा—"तुम्हारे पिताजीसे। यहाँ हम लोगोंके आनेके दिन ही राय साहबने तुम लोगोंके प्रेम, वाग्दान और शीघ्र होनेवाले विवाहकी मनोज्ञ

आलोचनासे हम दोनों भाइयोंके चारों कानोंमें सुधा-वर्षण किया था। नहीं नहीं, नाराज मत होओ वन्दना, पिताजी सीधे-सादे निरीह आदमी हैं, जिनकी प्रफुल्लतामें उन्होंने इस सुसंवादको आत्मीय जनोंसे छिपा रखनेकी जरूरत ही नहीं महसूस की।"

वन्दनाने कुछ देर मौन रहकर पूछा—"इसीलिए क्या मुखर्जी साहबने मैत्रेयीको देखनेके लिए हम लोगोंको भेजा था?"

द्विजदासने कहा—"सो मुझे ठीक नहीं मालूम। कारण भाई साहबके मनकी पूरी बात देवताओंके लिए भी अज्ञात है। सिर्फ इतना जानता हूं कि उनके मतसे मैत्रेयी देवी सर्वगुणसंपन्न कन्या हैं। बलरामपुरके धनी और महामाननीय मुखर्जी-परिवारके अयोग्य नहीं।"

वन्दनाने पूछा—"मैत्रेयी देवीके सम्बन्धमें आपका क्या अभिमत है?"

द्विजदासने कहा—"इस घरमें यह प्रश्न अवैध है। मैं तो तृतीय पुरुष (थर्ड परसन) हूं। प्रथम और द्वितीय-पुरुष अर्थात् माँ और भाई साहब, किसी भी नारीके गलेसे मुझे बाँध देंगे और उसीके कण्ठलग्न होकर मैं परमानन्दसे लटकता रहूँगा। यही इस घरकी सनातन रीति है, इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता।"

उसके बोलनेके ढंगपर वन्दना हँस दी, बोली—"और मान लीजिए कि मैत्रेयीके बदले ये वन्दनाके गलेसे ही आपको बाँध दें तो?"

द्विजदासने दरवाजेको हाथसे ठोंकते हुए कहा—"उनकी आशा वृथा है। दुष्ट राहुने पूर्ण चन्द्रको ग्रसन कर डाला है, न-जाने कहाँसे एक सुधीरचन्द्र टपक पड़ा और उसने आकाशमें आग लगा दी, द्विजदासकी स्वप्न-लंका आँखोंके सामने देखते-देखते भस्म हो गई। इस प्रसंगको बन्द करो कल्याणि, इस अभागेका हृदय विदीर्ण हो जायगा।"

उसकी नाटकीय उक्तिसे वन्दना फिर एक बार हँस पड़ी, बोली—"सोनेकी लंकाका सर्वस्व सब तो भस्म हुआ नहीं द्विजबाबू, अशोक-कानन बच गया है। हृदय विदीर्ण नहीं भी हो सकता है।"

द्विजदासने सिर हिलाते हुए कहा—"यह वृथा आश्वासन है। श्रीरामचन्द्रके भाग्यमें जोर था, किन्तु मैं तो वचनादिसम्पन्न हतभाग्य द्विजदास हूँ। मेरे सम्बन्धमें लोगोंकी सारी आशा अकाल नाश हो चुकी है,—कुछ भी बाकी

मरी गया ।"

"नहीं, नहीं हुई ।"

"क्या नहीं हुई ?"

वन्दनाने मुँह फेरकर कहा—"कोई भी आशा आपके लायक नहीं हुई । द्विजदास दयामय है तो क्या, वन्दना तो दयाभागिनी नहीं है । मेरे भाग्यको आपके लायक कर दे, ऐसी शक्ति सुधीरमें नहीं है । संसारमें किसीके भी नहीं है, आपकी माँके भी नहीं स्वयं आपके भी नहीं ।"

उसके शान्त और दृढ़ कण्ठस्वरसे द्विजदास दंग होकर उसकी तरफ देखता रह गया ।

"चुप रह गये जो ? मेरे मनकी बात आपको नहीं मालूम—आज क्या यही तय आप करना चाहते हैं ?"

"नहीं, मैं तय करना नहीं चाहता वन्दना । हाँ, इतना मानता हूँ कि अनुमान जरूर किया था, किन्तु सन्देह भी बहुत था ।"

वन्दनाने कहा—"वह सन्देह अब भी बना रहे ।"—फिर क्षण-भर उसके चेहरेकी ओर देखती रही और बोली—"मगर सन्देह मुझे तो न था । उस पहले दिनमें ही नहीं था । बलरामपुरसे गुस्से होकर चली आई आप अपने ऊपरके कमरेमें खिड़कीके पास खड़े थे और वहींसे आपने हाथ उठाकर इशारेसे मुझे विदा दे दी; सिर्फ एक जराका परिचय था तो भी क्या आप समझते हैं कि उसका अर्थ मेरे लिए अस्पष्ट रह गया है ?"

द्विजदास चुप हो उसकी ओर देख रहा है, यह देख वन्दनाने कहा—"मिटा सन्देह ?"

'द्विजदासने कहा—"मालूम होता है और भी अगर कुरेदनेसे बढ़ जायगा । पर मैं सोचता हूँ मेरे संशय निवारणके लिए क्या यही पद्धति हमेशा काममें लाई जायगी ?"

वन्दनाने कहा—हमेशाकी व्यवस्था पहले आप ही करें । लेकिन सब-कुछ जानकर भी जो इस तरहका अभिनय करता है उसे समझानेके लिए मेरे पास कोई रास्ता ही नहीं ।"

'मगर वह मैं नहीं हूँ माँ हैं । उन्हें समझाओगी कैसे ?"

वन्दनाने कहा—"माँ खुद ही समझ जायँगी । मुझे लड़कीकी तरह चाहती

है। आज अचानक वे कितनी ही चंचल होके क्यों न चली गई हों जो कुछ वे मानके गई हैं वह सच नहीं है—यह बात अगर [illegible] ही नहीं समझा सकी तो मैं और किस बातकी आशा रख सकती हूँ बताइए तो ? मुझे कुछ चिन्ता नहीं द्विजू बाबू, एक-न-एक दिन सारी बातें उन्हें मैं समझाऊँगी और अवश्य समझाऊँगी।"—कहते कहते आखिरकी तरफ सहसा उसका गला रुँध आया और आँखोंमें आँसू भर आये।

इस ओर इतनी दुविधा द्विजदासकी फिर नहीं रही थी, परन्तु इन आँसुओं और कण्ठस्वरके निगूढ़ परिवर्तनने उसका सारा संशय मिटा दिया,—यह तो सिर्फ परिहास नहीं है। विस्मय और व्यथासे आलोड़ित होकर वह कह उठा—"यह क्या वन्दना, तुम रो रही हो ?"

प्रत्युत्तरमें वन्दना कुछ बोली नहीं, सिर्फ आँसू पोंछकर दूसरी तरफ देखने लगी।

द्विजदास खुद भी बहुत देरतक चुप रहकर धीरे धीरे बोला—"सुधीरने तो तुम्हारे प्रति कोई भी पाप नहीं किया वन्दना ?"

वन्दनाने मुँह फेरकर इधर देखा नहीं, सिर्फ मुँहसे कहा—"दोषका विचार किसलिए किया जाय बताइए तो ? मैं क्या उनके अपराधका बदला लेने बैठी हूँ ?"

द्विजदासको इस बातका जवाब ढूँढे न मिला, उसने समझा कि यह प्रश्न बिल्कुल निरर्थक किया गया है। फिर कुछ देर चुप रहकर उसने कहा—"मगर सुधीर तुम लोगोंके अपने समाजका है,—और इधर यह कि शिक्षा, संस्कार, अभ्यास, आचरण किसी भी बातमें मुखर्जी-परिवारके साथ तुम्हारा मेल नहीं खाता। तो फिर किसलिए तुम इन लोगोंके कारागारमें हमेशाके लिए घुसने आओगी वन्दना ? मेरे लिए ? आज शायद न समझोगी, पर एक दिन जब तुम अपनी गलती समझ जाओगी तो तुम्हारे पश्चात्तापकी सीमा न रहेगी। मुझे तुमने किस रूपमें समझा है, नहीं जानता; मगर भाभी, माँ, भाई साहब हमारे देवता, हमारी अतिथि-अभ्यागत, हमारे आत्मीय-स्वजन—आखिर इन्हींमेंसे तो मैं एक हूँ। इनसे अलग करके तो तुम कभी मुझे पा नहीं सकोगी। काफी लम्बे समयतक यह सब क्या तुमसे सहा जायगा ?"

वन्दनाने कहा—"न रहे अनेसर आदमीके मरनेका रास्ता तो ?

रहता है द्विजू बाबू, उसे तो कोई भी कैदखाना बन्द नहीं कर सकता ? मुझे आपने क्या समझा है मैं नहीं जानती परन्तु मेरी सास, मेरी जेठानी, मेरे जेठ, हमारे ठाकुरजी और अतिथि-अभ्यागत, हमारे आत्मीय-स्वजन-समाज—इन सबसे अलग करके अपने पतिको मैं एक दिनके लिए भी नहीं पाना चाहती। वे सबके साथ एक होकर ही मेरे बने रहें बस।"

द्विजदासने आश्चर्यमें आकर कहा—"ये सब धारणाएँ तो तुम म्लेच्छोंके यहाँकी नहीं हैं ये तुमने किससे सीखीं वन्दना ?"

वन्दनाने कहा—"किसीने मुझे सिखाया नहीं द्विजू बाबू पर माँके पास आकर, उनकी साधनाको देखकर—ये सब बातें मुझे अपने आप ही सूझी हैं। इस घरमें सब बातोंमें सबसे बड़ी माँ हैं, उनके बाद मुख्य हैं साहब, उनके बाद भौजी उनके बाद आप;—यहाँ अन्नदाका भी एक विशेष स्थान है। इस घरमें अगर कभी जगह पाऊँगी तो इनसे छोटी होकर ही पा सकूँगी, परन्तु यह मुझे जरा भी असंगत न मालूम होगा।"

यह सुनकर द्विजदासको जितना अच्छा मालूम हुआ उतना ही उसका मन व्यथासे भर उठा। परन्तु वन्दनाके मनकी थाह इस तरह जान लेना अन्याय है,—यह आलोचना बन्द हो जानी चाहिए। उसने जबरदस्ती अपनेको कठोर बनाते हुए कहा—"मगर मौका ये सब बातें जाननेसे कोई लाभ नहीं। यह मैं जानता हूँ कि वे तुम्हें लड़कीकी तरह चाहती हैं, इसीसे उनके मनकी यह प्रबल आशा थी कि तुम इस घरकी छोटी-बहू होओ तुम दोनों बहनोंके हाथ अपने दोनों लड़कोंको सौंपकर वे चली जायँगी बेफिक्र, लौटनेका अगर मौका न भी आए, तीर्थयात्राके उस सुगम मार्गमें ही अगर उनके लिए परलोककी पुकार आ पहुँचे—तो भी इस बातको मनमें लिए हुए वे सब निश्चिन्त और निर्भय होकर यात्रा कर सकेंगी कि उनके बृहत् घर-संसारका दायित्व हस्तान्तरित होनेमें किसी प्रकारका धोखा या संशय नहीं है। मगर वैसा होनेका नहीं, उनके मतसे वाग्दानका अर्थ ही है सम्प्रदान। प्रेम या प्यार करके जिसे सम्मति दे चुकी हो वही तुम्हारा पति है। विवाहके मंत्र नहीं पढ़े गये इसलिए उन्हें तुम त्याग भी सकती हो, पर उस सूने आसनपर बलरामपुरका लड़का आकर नहीं बैठ सकता।"

सुनकर मारे वेदनाके वन्दनाका चेहरा फीका पड़ गया, उसने पूछा—"माँ

क्या ये सब बातें कह गई हैं द्विजू बाबू ?"

द्विजदासने कहा—"कमसे कम, उनके ऐसा कहनेको मैं असम्भव नहीं समझता वन्दना। भाभी कह रही थीं कि माँको सबसे ज्यादा इस बातसे चोट पहुंची है कि सुधीर अपनी जात-बिरादरीका नहीं है,—और तुम लोग जात-पाँत नहीं मानते। यह इतना बड़ा जबरदस्त भेद है कि इसे किसी भी तरह पाटकर एक नहीं किया जा सकता।"

"आपका भी क्या यही कहना है ?"

"मैं तो तृतीय-पुरुष हूँ वन्दना, मेरे कहने-न-कहनेसे क्या बनता बिगड़ता है ?"

रात साहबके भोजनका समय हो चला था। वन्दना उठ खड़ी हुई। कमरेसे बाहर निकलनेसे पहले उसने कहा—"बापूजीकी छुट्टी खतम हो चुकी, कल वे चले जायंगे। मैं भी क्या उनके साथ चली जाऊँ द्विजू बाबू ?"

द्विजदासने कहा—"यह भी क्या मेरे कहनेकी बात है वन्दना ? मगर जाओ, तो मुझे गलत समझकर न चली जाना। तुम्हारे जानेके बाद, तुम्हारी तरफसे मैं माँसे तुम्हारी सारी बातें कहूँगा, छिपाऊँगा नहीं। उसके बाद, रह गई हमारी भाभीकी तपस्याकी स्मृति, और रह गया हमारा वन्देमातरम्‌का मंत्र।"

वन्दनाने इसका कोई उत्तर नहीं दिया; चुपकेसे घरसे बाहर निकल आई।

१५

अपने कमरेमें लौट आनेके बाद वन्दनाको भारी ग्लानि होने लगी। उसने यह क्या कर लिया है जो निर्लज्ज उपासिकाकी तरह वह इस तरह अपना हृदय खोलकर अपनी सारी आत्म-मर्यादाको जलाञ्जलि दे आई ! ऊपर मजा यह कि द्विजदास पुरुष होकर कभी भी जैसा रहस्यावृत था वैसा ही बना रहा। उसके चेहरेके भावमें न आग्रह था, न उत्साह, उसने न तो आशा ही दी, न सान्त्वना। बल्कि, परिहासके बहाने बार-बार उसने यही बात जताई कि वह तृतीय पुरुष है। उसकी इच्छा अनिच्छा इस घरमें अप्रासंगिक विषय है। और क्या सिर्फ इतना ही ! उसने माँका नाम लेकर कहा, अपमानका भय ही है सर्वप्रधान, और निरपराध सुधीरके सूने आसनपर श्यामजीका लड़का आकर नहीं बैठ सकता। परन्तु अपमानका घड़ा इससे भी नहीं भरा उसकी आँखोंमें ⁄

कर अन्तमें उसने यथार्थ चित्तसे सिर्फ इतना ही वचन दिया कि वन्दनाकी यह बेहयापनकी कहानी वह माँसे कह देगा।

और फिर, यही क्या थोड़े ही है। विप्रदासकी बातके जवाबमें उसने स्वतः प्रवृत्त होकर कहा, इस परिवारमें जो भी यहाँ हैं उन सबसे छोटी होकर वह आना चाहती है। आगे उससे बोला न गया, जहाँ बैठी थी वहीं स्तब्ध भावसे बैठी रही; और बार-बार उसे ऐसा लगने लगा कि वास्तवमें वह अत्यन्त छोटी हो गई है इतनी छोटी कि आत्मघात करनेपर भी उस हीनताका प्रायश्चित्त नहीं हो सकता।

बाहरसे किसीने आकर कहा कि राय साहब बुला रहे हैं। उठके वह पिताके कमरेमें चली गई। वहाँ उसने बार-बार जिद करके पिताको राजी किया कि कल ही दोनों बम्बईके लिए रवाना हो जायँगे। हालाँकि बात यह तय थी कि विप्रदासके लौट आनेपर रातकी गाड़ीसे वे रवाना होंगे। सहसा इस तरह चला जाना अच्छा न होगा इसमें साहबको कोई सन्देह न था—छुट्टी भी थी, आसानीसे रहा भी जा सकता था, मगर फिर भी, लड़कीके प्रस्तावपर उन्हें राजी होना पड़ा।

बिस्तरपर लेटे ही वन्दनाकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। बादमें मालूम नहीं कब उसे नींद आ गई। सबेरे उठकर उसने अपनी और पिताकी चीज-वस्त सँभालकर तैयारियाँ कर लीं फोन करके सीटें रिजर्व करा लिये और बम्बईको तार भी भेज दिया। गाड़ी तो शामको जायगी, पर उसे किसी भी तरह देर नहीं सुहाती।

सबेरेके तब नौ बजे थे; अन्नदा कमरेके अन्दर पैर रखते ही ताज्जुबके साथ बोली—'यह क्या!'

वन्दना मैले कपड़ोंको सँभालकर एक ट्रंकमें रख रही थी, बोली—"आज हम लोग जा रहे हैं।'

'सो आजका दिन थोड़े ही है दीदी-बाई, कल जानेकी बात थी।'

"नहीं, आज ही जाना होगा।"—कहकर वन्दना अपने काममें लगी रही, मुँह नहीं उठाया।

अन्नदा एक क्षण चुप रहकर बोली—"आप उठिए मैं सँभाले देती हूँ। आपको तकलीफ हो रही है।"

"तकलीफ देखनेकी जरूरत नहीं अपने कामसे जाओ तुम।"

इस घरके तमाम आदमियोंसे उसे घृणा-सी हो गई है।

प्रमदाको कारण मालूम न होनेपर भी, इतना तो मालूम ही था कि कोई गुस्सा-गुस्सीकी बात चल रही है। अचानक माँ चली गईं और आज वन्दना भी उसी तरह अकस्मात् चली जानेको तैयार है। परन्तु गुस्सेके बदले गुस्सा करना प्रमदाकी प्रकृति नहीं है, वह जितनी ही सहिष्णु है उतनी ही भद्र। कुछ देर चुप खड़ी रही, फिर कुण्ठित स्वरसे बोली—"मेरा कसूर हो गया बीबी-बाई, आज ठीक वक्तपर मैं उठ न सकी।"

वन्दनाने मुँह उठाकर उसकी ओर देखा, फिर बोली—"मैं तो उसकी कैफियत नहीं चाहती प्रमदा, जरूरत हो तो अपने मालिकको देना। द्विजू बाबू अपने कमरेमें ही हैं, उनसे कहो जाकर।"—इतना कहकर वह फिर अपने काममें लग गई। वन्दना अपने बापकी इकलौती सन्तान होनेसे जरा कुछ ज्यादा लाड़-प्यारमें ही पली-पनपी है। सहनेकी शक्ति उसमें कम है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि कड़ुई बात कहनेकी कुशिक्षा भी उसे मिली हो; बल्कि यों कहना चाहिए कि शायद इतनी बड़ी कठोर बात भी उसने अपने जीवनमें कभी किसीसे नहीं कही। इसलिए, बात कह चुकनेके बाद ही वह मन ही मन शायद व्यथित हो रही थी; इतनेमें प्रमदा अत्यन्त मृदु-कण्ठसे कहने लगी—"डाक्टर वगैरह चले गये थे, पौ फटनेको थी कि सोचा, अब न सोऊँगी, सोई भी नहीं, पर दीवारका सहारा लेकर बैठे ही न मालूम कैसे आँख लग गई कब दिन चढ़ गया कुछ पता ही नहीं चला। आप मालिकोंकी बात कह रही हैं बीबीबाई, पर आप भी क्या मेरी मालकिन नहीं हैं? बताइए भला, ऐसा कसूर क्या और कभी मुझसे हुआ है? उठिए, मैं सब ठीक किये देती हूँ।"

आखिरकी बात शायद वन्दनाके कानोंतक नहीं पहुँची, प्रमदाके चेहरेको देखते हुए उसने कहा—"डाक्टर वगैरह चले गये, मतलब?"

प्रमदाने कहा—"कल रातको द्विजूकी तबीयत बहुत खराब थी। यहाँ आनेके दिनसे ही उसकी तबीयत खराब थी, पर उसे कुछ परवाह ही नहीं। कल माँ वगैरहको पहुँचानेके लिए उनके साथ जानेकी बात चली तो उसने बुलाकर कहा कि भाई साहबसे कहकर मेरा जाना माफ करवा दो पर माँको मालूम न पड़ने पावे—आज मुझसे उठा नहीं जाता,

हो रहा हूँ।"

फिर कहने लगी—"उसे मैंने अपनी गोदीमें खिला-पिलाकर बड़ा किया है, उसकी सब बातें मुझसे ही होती हैं। मैं डर गई, बोली—यह कैसी बात है? तबीयत खराब है तो छिपा क्यों रहे हो? उसका स्वभाव ही ठहरा—बातको हँसके उड़ा देना, फिर वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो। उसने वैसे ही हँसते हुए कहा—तुम उन लोगोंको विदा कर दो न दीदी, उसके बाद मैं अपने आप ही चंगा हो उठूँगा। मैंने सोचा, माँके साथ उसकी बनती नहीं, उनके साथ वह कहीं जाना भी नहीं चाहता, इसीलिए बहाना कर रहा है। इससे मैंने फिर कुछ कहा नहीं। बड़े-बाबू सबेरे उन लोगोंको लेकर चले गये। इसके बाद दिन-भर वह पड़ा सोता ही रहा, कुछ खाया-पीया नहीं। दोपहरको मैंने जाके पूछा, 'कैसी तबीयत है द्विजू?' उसने कहा, 'अच्छी है।' मगर उसका चेहरा देखकर ऐसा नहीं मालूम हुआ। मैंने डाक्टर बुलाना चाहा, पर उसने बुलाने ही न दिया, बोला, क्यों झूठमूठको भाई साहबको अप-व्यय दिखलाना चाहती हो दीदी, तुम्हारी इस फिजूल-खर्चीसे भाभी नाराज होंगी। मोसे ऐसा लगा कि अबतक अभिमान बना ही हुआ है। दिनभर खाया नहीं, बिस्तरपर ही पड़ा रहा। शामको जाके मैंने पूछा 'द्विजू, तबीयत अगर सचमुच खराब नहीं है तो सबेरेसे बिस्तरपर क्यों पड़े हो?' उसने उसी तरह हँसते हुए कहा, 'अनु दीदी, शास्त्रोंमें लिखा है कि सोते रहनेके समान पुण्य कार्य जगत्‌में दूसरा नहीं है, इससे कैवल्यकी प्राप्ति होती है। जरा कुछ पारलौकिक मंगलकी कोशिश कर रहा हूँ। तुम डरो मत।' सब बातोंमें उसकी तो हँसी ही सूझा करती है, बातोंमें उससे कोई नहीं जीत सकता। मैं गुस्सा होकर चली तो आई, पर मनमें जो डर बैठा था वह दूर नहीं हुआ। उसने एक किताब उठाकर पढ़ना शुरू कर दिया।"

जरा चुप रहकर कहने लगी—"रातके तब करीब बारह बजे होंगे, दरवाजेपर धक्के पड़ने लगे। मैंने पूछा, 'कौन है रे?' बाहरसे जवाब आया—'मैं हूँ अनुदीदी, दरवाजा खोलो।' इतनी रात गये द्विजू क्यों बुला रहा है, घबराहटके साथ जल्दी उठके किवाड़ खोल बाहर पहुँची तो देखा द्विजूकी यह कैसी मूर्ति है! आँखें भीतर धुस गई हैं, गलेका स्वर बैठ गया है शरीर काँप रहा है,—मगर फिर भी हँस रहा है। बोला, 'दीदी, तुम्हारी गाँवमें सेवक हूँ,

इसलिए तुमको जगाया है; अगर आँखें मूँदनी ही पड़ीं तो तुम्हारी ही गोदमें सिर रखके मूँदूँगा' ।"—कहते-कहते अन्नदा झर-झर आँसू गिराती हुई रो उठी । उसका रोना मानो ठहरना ही नहीं चाहता, भीतरसे ऐसा अदम्य आवेग उमड़ रहा था ।

अपनेको सँभालनेमें उसे बहुत देर लगी । सँभलनेके बाद फिर कहने लगी—"छातीसे लगाकर उसे कमरेमें ले गई, पर जैसी हो वैसे वैसा ही पेटमें दर्द—ऐसा लगने लगा जैसे रात अब बीतेगी ही नहीं, न-जाने कब साँस बन्द हो जाय । डाक्टरोंको खबर दी गई, वे आ पहुँचे । सुईपर सुई देने लगे, गरम-पानीका सेक चलने लगा, नौकर-चाकर सब जागते रहे,—भोरके वक्त जाकर द्विजूको नींद आई और सो गया । डाक्टरोंने कहा कि अब डरनेकी कोई बात नहीं । लेकिन किस तरह रात बीती है बीबी-बाई, सोचती हूँ तो—दुःस्वप्न-सा मालूम होता है, सच्ची बात नहीं मालूम होती ।"—इतना कहकर अन्नदाने आँचलसे अपनी आँखें पोंछ डालीं ।

वन्दनाने व्याकुलतासे कहा—"मुझे कुछ भी नहीं मालूम, मुझे जगाया क्यों नहीं अन्नदा ?"

अन्नदाने कहा—"सबेरे यह अशान्ति दूर हो गई, फिर तुम्हें परेशान नहीं किया बीबी-बाई । नहीं तो द्विजूने तो कहा था ।"

वन्दनाने इस प्रसंगको छोड़ दिया, बोली—"द्विजू बाबूकी इस वक्त तबीयत कैसी है ?"

अन्नदाने कहा—"अच्छी है, सो रहा है । डाक्टर लोग कह गये हैं, शाम-से पहले शायद नींद न टूटेगी । बड़े-बाबू आ जायँ तब जीमें जी आवे बोटी ।"

"उन्हें क्या खबर दे [illegible] गई है ?"

"नहीं । दत्तजीने कहा कि इसकी जरूरत नहीं, वे खुद ही आनेवाले हैं ।"

"उस कमरेमें आदमी तो है ?"

"हाँ, दो आदमी बैठे हैं ।"

"डाक्टर अब कब आवेंगे ?"

"शामसे पहले ही आवेंगे । कह गये हैं, अब डर नहीं है ।"

चिकित्सक-गण अभय दे गये हैं, इतनी ही वन्दनाके लिए सान्त्वना है । इसके सिवा, उसके लिए करनेको और है भी क्या !

हो रहा हूँ।"

फिर कहने लगी—"उसे मैंने अपनी गोदीमें खिला-पिलाकर बड़ा किया है, उसकी सब बातें मुझसे ही होती हैं। मैं डर गई, बोली—यह कैसी बात है! तबीयत खराब है तो छिपा क्यों रहे हो! उसका स्वभाव ही ठहरा—बातको हँसके उड़ा देना, फिर वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो। उसने वैसे ही हँसते हुए कहा—तुम उन लोगोंको विदा कर दो न दीदी, उसके बाद मैं अपने आप ही चंगा हो उठूँगा। मैंने सोचा, मांके साथ उसकी बनती नहीं, उनके साथ वह कहीं जाना भी नहीं चाहता इसीलिए बहाना कर रहा है। इससे मैंने फिर कुछ कहा नहीं। बड़े-बाबू गाँव उन लोगोंको लेके चले गये। इसके बाद दिन-भर वह पड़ा सोता ही रहा, कुछ खाया-पीया नहीं। दोपहरको मैंने जाके पूछा, 'कैसी तबीयत है द्विजू?' उसने कहा, 'अच्छी है।' मगर उसका चेहरा देखकर ऐसा नहीं मालूम हुआ। मैंने डाक्टर बुलवाना चाहा, पर उसने बुलाने ही न दिया; बोला, 'क्यों बड़भइयाकी मार्फत डाक्टरको अब-तब दिखलाना चाहती हो दीदी, तुम्हारी इस फिजूल-खर्चीसे गृहिणी नाराज होंगी।' मुझे ऐसा लगा कि अबतक अभिमान बना ही हुआ है। दिनभर खाया नहीं, बिस्तरपर ही पड़ा रहा। शामको जाके मैंने पूछा, द्विजू, तबीयत अगर सचमुच खराब नहीं है तो सबेरेसे बिस्तरपर क्यों पड़े हो?' उसने उसी तरह हँसते हुए कहा, 'मनु जीने आदेश लिखा है कि सोनेके समान पुण्य कार्य जगत्में दूसरा नहीं है, इससे कैवल्यकी प्राप्ति होती है। जरा कुछ पारलौकिक मसलेकी कोशिश कर रहा हूँ। तुम जाओ अब।' सब बातोंमें उसकी तो हँसी ही लगी रहती है, बातोंमें उससे कोई नहीं जीत सकता। मैं गुस्सा होकर चली तो आई, पर मनमें जो डर बैठ गया था वह दूर नहीं हुआ। उसने एक किताब उठाकर पढ़ना शुरू कर दिया।"

अन्नदा जरा ठहरकर कहने लगी—"रातके जब करीब बारह बजे होंगे, दरवाजेपर खटका पड़ने लगे। मैंने पूछा, 'कौन है रे?' बाहरसे जवाब आया—'मैं हूँ अनुदीदी, दरवाजा खोलो।' इतनी रात गए द्विजू क्यों घूम रहा है, घबराकर जल्दीसे उठके किवाड़ खोल बाहर पहुँची तो देखा द्विजू! यह कैसी मूर्ति है! आँखें भीतर धँस गई हैं, गलेका स्वर बैठ गया है, शरीर काँप रहा है,—मगर फिर भी हँस रहा है। बोला, 'दीदी, तुम्हारी शरणमें आया हूँ,

इसलिए तुमको जगाया है; अगर आँखें मूँदनी ही पड़ीं तो तुम्हारी ही गोदमें सिर रखके मूँदूँगा' !"—कहते-कहते अन्नदा झर-झर आँसू गिराती हुई रो उठी। उसका रोना मानो ठहरना ही नहीं चाहता, भीतरसे ऐसा असह्य आवेग उमड़ रहा था।

अपनेको सँभालनेमें उसे बहुत देर लगी। सँभलनेके बाद फिर कहने लगी—"धीरेसे जगाकर उसे कमरेमें ले गए, पर जैसी ही थी वैसा ही पेटमें दर्द—ऐसा लगने लगा जैसे रात अब बीतेगी ही नहीं, न-जाने कब साँस बन्द हो जाय। डाक्टरोंको खबर दी गई, वे आ पहुँचे। सूखपर सूई देने लगे, गरम-पानीका सेंक चलने लगा, नौकर-चाकर सब जागते रहे,—भोरके वक्त जाकर द्विजूको नींद आई और सो गया। डाक्टरोंने कहा कि अब डरनेकी कोई बात नहीं। लेकिन किस तरह रात बीती है बीबी-रानी, सोचती हूँ तो—दुःस्वप्न-सा मालूम होता है, सच्ची बात नहीं मालूम होती।"—इतना कहकर अन्नदाने आँचलसे अपनी आँखें पोंछ डालीं।

वन्दनाने व्याकुलतासे कहा—"मुझे कुछ भी नहीं मालूम, मुझे जगाया क्यों नहीं अन्नदा!"

अन्नदाने कहा—"सबेरे वह अशान्ति दूर हो गई, फिर तुम्हें परेशान नहीं किया बीबी-रानी। नहीं तो द्विजूने तो कहा था।"

वन्दनाने इस प्रसंगको छोड़ दिया, बोली—"द्विजू बाबूकी इस वक्त तबीयत कैसी है?"

अन्नदाने कहा—"अच्छी है, सो रहा है। डाक्टर कह गये हैं शाम-से पहले शायद नींद न टूटेगी। बड़े-बाबू आ जायँ तब बीमें को जाने बोली।"

"उन्हें क्या खबर दे दी गई है?"

"नहीं। डाक्टरोंने कहा कि इसकी जरूरत नहीं, वे खुद ही आनेवाले हैं।"

"उस कमरेमें आदमी तो है?"

"हाँ, दो आदमी बैठे हैं।"

"डाक्टर अब कब आयेंगे?"

"शामसे पहले ही आयेंगे। कह गये हैं, अब डर नहीं है।"

चिकित्सक-गण अभय दे गये हैं, इतनी ही वन्दनाके लिए सान्त्वना है। इसके सिवा, उसके लिए करनेको और है भी क्या!

•

वन्दनाने पिताको जाकर द्विजदासकी बीमारीका समाचार सुनाया, पर ज्यादा नहीं बोली। वे इतना ही सुनकर घबरा उठे बोले—"लो, लो,—मुझे तो कुछ मालूम ही नहीं पड़ा!"

"नहीं, हम लोगोंको जताना किसीने उचित नहीं समझा।"

"मगर यह तो अच्छा नहीं हुआ।"

वन्दना चुप रही। वे क्षण भर बाद फिर बोले—"टिकट लेने आदमी भेज दिया गया सीट रिजर्व हो चुके,—हम लोगोंके जानेमें अब तो विघ्न होता दीखता है।"

वन्दनाने कहा—"क्यों, विघ्न क्यों होने लगा बापूजी, हम लोग रहकर ही कौन-सा उपकार कर सकते!"

'नहीं उपकारकी बात नहीं, मगर फिर भी—'

'नहीं बापूजी, इस तरह बराबर देरी ही होती चली आ रही है अब अपना निश्चय मत बदलो।'—इतना कहकर वन्दना उनके कमरेसे बाहर निकल आई।

दिन ढलता आ रहा है। वन्दनाके कमरेमें आकर अन्नदा जमीनपर बैठ गई। उन लोगोंके रवाना होनेमें अब भी लगभग दो घण्टेकी देर है। वन्दनाने पूछा—"द्विजूबाबूकी तबीयत ठीक है?"

"हाँ बीबी-भाई सो रहा है।"

वन्दनाने कहा—'जाते वक्त हम लोगोंकी किसीसे भेंट न हो सकी,—एकाध दो घण्टे जबतक नींद न खुलेगी और दूसरे अब यहाँ आके पहुँचेंगे तबतक हम लोग बहुत दूर पहुँच जायगे।"

अन्नदाने उसकी बातका समर्थन करते हुए कहा—"हाँ, बड़े बाबू तो करीब नौ बजे राततक आयेंगे।"—कुछ देर बाद फिर बोली—"वे आ जायँ तो सबकी जानमें जान आये सबोंका डर मिट जाय।"

"मगर डरकी तो कोई बात नहीं अन्नदा?"

अन्नदाने कहा—"नहीं है सो तो ठीक है, पर बड़े बाबूका घरमें मौजूद रहना कुछ और ही बात है बीबी-भाई। फिर और किसीपर जिम्मेदारी नहीं रहती सब उन्हींपर रहती है। उनकी जैसी बुद्धि है वैसा ही विवेक, वैसी हिम्मत है वैसी ही गम्भीरता। उनको देख लगने लगता है जैसे बरगदके पेड़की छायामें

बैठे हुए हैं।"

वही पुरानी बात, वही शिकायतोंकी भरमार। अपने मालिकके विषयमें यह बात मानो इन लोगोंके नस-नसमें रम गई है। और कोई वक्त होता तो वन्दना चुटकी लेनेमें रियायत नहीं करती। लेकिन इस वक्त चुप रही। मन्दा कहने लगी—"और यह दिनू! दोनों भाइयोंमें इतना फर्क है जितना कि जमीन और आसमानमें।"

वन्दनाने आश्चर्यमें आकर पूछा—"क्यों?"

मन्दाने कहा—"और नहीं तो क्या! न तो जुम्मेदारी जानता है, न किसी झंझटमें फँसना चाहता है और न गम्भीरता ही है। उसकी भाभी कहती हैं कि वह तो उस तरह बबुआ बादल है, न उसमें बिजली है न पानी है। उड़ता उड़ता फिरता है कोई भी बात चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न हो, उसे वह हँस खेलके ही उड़ा देगा। न तो संसारी है, न वैरागी, किंतु किताब-कलेंडर उसके घरसे भी निकल ले गये हैं जिनका ठीक नहीं।"

वन्दनाने कहा—"मुन्नी साहब आराम नहीं लेते?"

"नहीं लेते! खूब लेते हैं। ज्यादातर या तो और भी ज्यादा। पर तब वह दिखाई कहाँ देता है? कुछ दिनके लिए ऐसा मालूम हो जाता है कि भाभीजी खाना-पीना शुरू कर देती हैं, तब फिर सब मिलकर ढूँढ़-ढाँढ़के से पकड़ लाते हैं। पर, इसी तरह तो सारी जिन्दगी नहीं बिता सकता बीबी-भाई, उसका भी ब्याह होगा बच्चे होंगे, तब तो फिर इस तरहकी लापरवाह किसी दिन बिलकुल दिवालिया बना देगी।"

वन्दनाने कहा—"यह बात तुम लोग उनसे कहती क्यों नहीं?"

मन्दाने कहा—"बहुत कहा जा चुका है, मगर वह कान ही नहीं देता। कह देता है, तुम लोगोंको फिकर क्यों है? दिवालिया अगर हो भी जाऊँ तो भाभी तो मेरी दिवालिया नहीं होतीं, तब सब मिलके उन्हींके सिर पड़ जायेंगे।"

वन्दनाने मुसकराते हुए कहा—"जीजी क्या कहती हैं?"

मन्दाने कहा—"देवरपर उनके लाड़-प्यारकी हद नहीं। कहती हैं कि हम लोग खायेंगे पीयेंगे और दिनू क्या उपासा पड़ा रहेगा! मेरी पाँच-सौ रुपये महीनेकी आमदनीको तो कोई मिटा नहीं सकता गरीबी चाहते हम सबकी उसीमें गुजर हो जायगी। वो बाबू अपने अलग-अलग रुपये

रहें, [illegible] लोग उनसे माँगने न आयेंगे।"

सुनके वन्दनाको ऐसा अच्छा लगा कि जिसकी हद नहीं। जिसने कहा है वह है तो आखिर उसीकी बहन। मजा यह कि जिस समाजमें, जिस आब-हवामें रहकर वह कुछ इतनी बड़ी हुई है वहाँ ऐसी बात कोई नहीं कहता, शायद कोई सोचता भी नहीं। कहनेकी जरूरत भी पड़ती होगी या नहीं, सो भी किसे मालूम!

परन्तु अन्नदा जो कुछ कह रही थी वह मानो प्राचीन कालकी कोई एक कहानी हो। इन लोगोंका संयुक्त परिवार है—सिर्फ बाहरकी आकृतिमें ही नहीं, भीतरकी प्रकृतिमें भी। अन्नदा यहाँ सिर्फ दासी ही नहीं है, द्विजदासकी दीदी भी है। सिर्फ कहानी ही नहीं, उसकी सब बातें इन्हींके साथ होती हैं। अन्नदाका बाप इसी परिवारमें नौकरी करता हुआ मरा है, उसका लड़का भी यहीं पढ़ लिखकर जीविका अर्जन कर रहा है। अन्नदाको खाने-पहननेकी कमी नहीं, फिर भी मोह छोड़कर उससे जाते नहीं बनता। इस समृद्ध बड़े परिवारमें कितने ही कर्मचारियोंका ऐसा ही पुरुषानुक्रमिक इतिहास मिलता है। दयामयी-का मनाहरकारी पुत्र विप्रदास भी कहा करता था कि उसकी माँ, भाईसाहब, स्वामी, घरबेटा, अतिथिशाला इन सबके साथ उसका अस्तित्व है, इनसे पृथक् करके वन्दना उसे कभी नहीं पा सकती। तब वन्दनाने यद्यपि उस बातसे इनकार नहीं किया था, फिर भी उस बातका यथार्थ तात्पर्य आज उसकी समझमें आया।

बात खतम नहीं हुई थी, कुछ-कुछ जाननेका आग्रह उसके अन्दर प्रबल हो उठा पर बाधा आ गई। नौकरने आकर खबर दी कि बाबू-साहब जल्दी मचा रहे हैं, छै बज गये हैं। रवाना होनेका समय घंटे-भरसे ज्यादा नहीं है। बिदाको तैयार होनेके लिए वन्दनाको उठना पड़ेगा।

यथासमय राय साहब नीचे उतरे। उतरते उतरते लड़कियोंके नाम लेकर पुकारा वन्दनाने उसे सुन लिया। अन्याय चाहे जितना बड़ा हो और अनिच्छा चाहे जितनी ही कठोर हो उसे मानना ही पड़ता। बार-बार जिद करके जो व्यवस्था कुछ उसीने तय करवाई है उसमें रद्दोबदल नहीं हो सकता। अब वह घरसे निकली तो उसके मनमें सबसे पहले यही बात आई कि भविष्यमें, क्योंकि सृष्टि चलती है, किसी दिन किसी भी कामसे यहाँ फिर उसके आनेकी सम्भावना नहीं है, किन्तु फिर भी इस बातको वह कभी नहीं भूल सकेगी कि यह घर

उसके अनेक सुख-स्वप्नोंसे परिपूर्ण रहा। उतरते समय वन्दना सीधा रास्ता छोड़कर विप्रदासके कमरेके सामनेवाले बरामदेसे, उसके कमरेके अन्दर एक निगाह फेरती हुई निकली, परन्तु जो खिड़की खुली हुई थी उसमेंसे विप्रदासको वह देख न सकी।

मोटरके पास दरबानी खड़े थे राय साहबने उन्हें अपने पास बुलाकर नौकरों को इनाम देनेके लिए उनके हाथमें कुछ रुपये दिये और अचानक जाना पड़ रहा है इसके लिए खेद प्रकट करते हुए अनुरोध किया कि विप्रदासकी खबर उन्हें तुरन्त ही मिलनी चाहिए, नहीं तो बड़ी चिन्ता रहेगी।

गाड़ीमें बैठनेके पहले वन्दनाने अन्नदाको पास बुलाकर कहा—"द्विजू बाबूकी तुम दाई हो, उन्हें तुमने गोदमें खिलाया है,—यह अँगूठी तुम द्विजू बाबूकी आनेवाली नई बहूको मेरी तरफ से देना, कह देना यह इसे जरूर पहने।"—इतना कहकर उसने अँगूठी खोलकर उसके हाथमें दे दी और तुरन्त ही पिताके पास जा बैठी।

मोटर चल दी। इधर-उधर खड़े हुए कुछ नौकर-चाकर और दरबानोंने उन्हें नमस्कार किया।

वन्दना बगैर इरादेके ऊपरको देख उठी; परन्तु आज वहाँ, और-एक दिनकी भाँति उसके बगलमें खड़ा हुआ, चुपचाप संकेतसे विदा देनेके लिए द्विजदास नहीं था। आज वह बीमार है,—आज वह नींदमें बेहोश पड़ा सो रहा है।

१६

दयामयीके आचरणमें वन्दनाके प्रति जो प्रच्छन्न लाञ्छना और अकारण तिरस्कारका भाव था, उसीको वह मर्मस्थल तक चुभ गया था। परन्तु माँसे कुछ कहना-सुनना उसके लिए सहज नहीं था; इसलिए उसने एक चिट्ठी लिखकर वन्दनाको देनेके लिए पतिको अपने कमरेमें बुलवा भेजा। दोपहरकी गाड़ीसे विप्रदास कलकत्ते रवाना होगा। इसी समय दयामयी उसके कमरेमें आ पहुँचीं। ऐसा वे कभी नहीं करतीं—इससे लड़का और बहू दोनोंको ही आश्चर्य हुआ। सती माथेपर घूँघट खींचकर कमरेसे बाहर निकलने लगी तो दयामयीने कहा—"नहीं बहू, मत जाओ। तुम्हारी गैरमौजूदगीमें तुम्हारी बातकी निन्दा

पहुँचेगी, जरा ठहर जाओ। विपिन, जानता है तू, क्यों मैं इतनी जल्दी चली आई!'

विप्रदासने कहा—"ठीक नहीं जानता माँ, पर कहीं कुछ गड़बड़ी जरूर हुई है, इतना अन्दाजा मैंने लगा लिया है।"

माँने कहा—"गड़बड़ी हुई नहीं पर हो सकती थी। उससे माँ दुर्गाने मुझे बचा लिया। कल जमाईजी तो बम्बई चले जायँगे और उसके बाद तय हुआ था कि वन्दना यहाँ आकर कुछ दिन रहेगी अपनी बहनके पास। लेकिन लड़कीके सामने अगर जरा भी त्रुटि होगी, तो अब वह यहाँ न आयगी और बापके साथ सीधी बम्बई चली जायगी। अगर न जाय तो तू जानेके लिए कह देना। बहू, तुम मनमें दुःख मत करना बेटी। ऐसी बहनको वनवास दिया जा सकता है, घरमें लाकर नहीं रखा जा सकता।"

विप्रदास निरुत्तर हो उनकी ओर देखते रहे, उनके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। दयामयी कहने लगीं—'मेरी फूटी तकदीर कि मैं उसे प्यार करने लगी थी। सोचा था कि वह अपनोंमेंसे ही एक है। उसके चाल-चलनमें गलतियाँ हैं—सोचा कि यह सब स्कूल-कालेजमें पढ़नेका फल है, चाँदपर जैसे उड़ते हुए बादल आते और हट जाते हैं, वैसे ही ये गलतियाँ भी समय पाकर हट जायँगी। कुछ भी हो, आखिर है तो उसीकी बहन। मगर उसने अपने लिए पति चुन लिया कायस्थोंके घरका! कौन जानता था विपिन, कि ब्राह्मणके घर जन्म लेकर उन आर्योंका इतना अधःपतन हो गया है!"

विप्रदासने कहा—"बस इतनी-सी बात है! मगर वे लोग तो जात-पाँत मानते नहीं, और यह बात तुम सुन भी चुकी थीं माँ।"

दयामयीने कहा—'सुना था पर आँखोंसे नहीं देखा था और शायद मनसे समझ भी न पाई थी। मानोंकी कहानी जैसी गप्प मालूम हुई थी। पर आँखोंसे देखनेसे किसीपर किसीकी इतनी अरुचि और घृणा भी हो सकती है तो मुझे सचमुच ही नहीं मालूम था बेटा।"—कहते-कहते मारे घृणाके मानो उन्हें झुर-झुरी-सी आ गई, बोलीं—"मरने दो! जो मनमें आये सो करे, कौन-सी मेरी बहू—पर अब मेरे घर नहीं—"

विप्रदासको चुप देखकर कह उठीं—"जवाब क्यों नहीं देता?"

"जवाब तो तुमने माँगा नहीं माँ। हुकम दिया है कि वन्दना अब इस घरमें

आने पावे,—न आयगी।"

यह सुनकर दयामयी दुविधामें पड़ गई, बोली—"तुझे क्या मैया दे रही हूँ, समझता है?"

"समझता क्यों नहीं माँ। वन्दनाने अन्याय कुछ नहीं किया। सामाजिक आचार व्यवहारमें उनका हमारा मेल नहीं खाता, वे लोग जात-पाँत नहीं मानते यह जानकर ही तुमने उसे बुलाया था और प्यार भी करने लगी। तुम्हारे मनमें शायद आशा थी कि ये लोग मुँहसे ही कहा करते हैं, अमल करते,—यहीं तुमसे गलती हो गई, मार इसीलिए सदमा भी उठाया।"

दयामयीने कहा—"शायद यह बात ठीक हो, पर उसके व्यवहारकी बात सु क्या तुझे घृणा नहीं होती विपिन? बता तू क्या कहना चाहता है?"

विप्रदास मुसकराते हुए बोले—"उसका व्यवहार अभी हुआ नहीं है, और जानेपर भी मुझे घृणा न करनी चाहिए। बल्कि यह सोचकर मैं श्रद्धा ही क कि उन लोगोंका विश्वास जब कायम प्रकाशित हुआ, उन लोगोंने किसीको ध नहीं दिया। मगर माँ, कलकत्तेमें मैंने ऐसे बहुतोंको देखा है जो चोरी चा पदार्थोंमें मानते तो कुछ भी नहीं, जाति भेदपर भी विश्वास नहीं करते, पु सभापत्रवालोंको खरी-खरी भी खूब सुनाया करते हैं पर काम पड़ते ही म नहीं कहाँ जा दुबके हैं, पता ही नहीं लगता। उन्हीं लोगोंपर मेरी सबसे घ अश्रद्धा है। नाराज मत होना, माँ, तुम्हारा दिल उन्हीं जातका है।"

सुनकर दयामयी मोहसने नाखुश हुई हों, सो बात नहीं। विप्रदासक समझ बोलीं—"वह इसी तरहका बोलेचाल है। लेकिन बेटा, तू अगर वन्दनासे नहीं करता तो फिर उसका छुआ खाता क्यों नहीं? उसको रसोईघरमें मेरे तो मैंने वहाँ खाना ही छोड़ दिया, मेरे घरमें आने लगा। और कोई समझे न समझे, पर मैं भी नहीं समझ सकती?"

विप्रदासने कहा—"तुम न समझोगी, तो 'माँ' क्यों हुई थीं? लेकिन मैं वास्तवमें जाति-भेद मानता हूँ, इसलिए उसके हाथका छुआ नहीं खा-पी सक जिस दिन नहीं मानूँगा उस दिन, सबके सामने ही उसके हाथका खाऊँगा, भी लुकाछिपी नहीं करूँगा।"

दयामयीने कहा—"मुझे नहीं मालूम विपिन कि किस तरह मैं उससे बात छिपाये-ढके रखती था। वह यहाँ आए या न आए, पर प्यार रखना

बात उसे मालूम न होनी चाहिए। उसे बड़ा सदमा पहुँचेगा। तुमपर वह बड़ी श्रद्धा रखती है।"—उनके अन्तिम शब्द मानो गहरा स्नेह रससे भीग उठे।

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"मुझपर वह श्रद्धा रखती है कि नहीं, सो तो मैं नहीं जानता, पर उसका छुआ मैं नहीं खाता,—यह बात वह जानती है।"

"ऐसी अभिमानिनी लड़की यह जानकर भी तुमपर इतनी श्रद्धा-भक्ति रखती है! इसके मानी?"

"श्रद्धा भक्तिकी बात तुम्हीं लोग जानती होगी माँ, मैं तो सिर्फ इतना जानता हूँ कि वह अत्यन्त बुद्धिमती है और तुम लोगोंका तमाम छिपाना-ढकना उसके निकट व्यर्थ हो गया है।"

दयामयी क्षण-भर चुप रहकर न जाने क्या सोचने लगीं, फिर बोलीं—"इसीसे शायद वह इतनी जिद किया करती थी?"

"काहेकी जिद माँ?"

दयामयी कहने लगीं—"मैं विधवा ठहरी मेरा तो काम सिर्फ नमक-मसाले ही चख सकता था पर वह एक भी न सुनती थी। बाजारसे नित नई-नई तरकारियाँ लाती अपने हाथसे बनाय-चुनकर बासन्ती-सुधाको देती और उनकी सब तरकारियाँ जबरदस्ती चखवा लेती तब उनका पीछा छोड़ती। मालूम होता है यह जानती थी कि सामने आकर जिसे नहीं दिया जा सकता उसे दूसरेके हाथसे रिश्वत पहुँचानी पड़ती है। क्यों, शायद क्या तू समझ नहीं सका था कि वैसी रसोई सुधा कभी सात-जनममें भी नहीं बना सकती?"

विप्रदासने हँसते हुए जवाब दिया—"नहीं माँ, इतना अन्याय नहीं किया मैंने। सिर्फ बीच-बीचमें जरा सन्देह होता था कि तुम्हारे अतिथियोंके उस रसोई घरके भारी आयोजनमेंसे हमारी इस रसोईमें भी शायद कुछ छिटककर आ पड़ता है। पर वह दैवात् नहीं था, किसी व्यक्तिका इच्छाकृत था, यह आनन्दकी बात है। लेकिन अब तुम अपना आखिरी हुकुम दे दो माँ। गाड़ीका वक्त हो चला, मुझे अभी भागना है स्टेशन,—वन्दनाका निमंत्रण तुमने रहने दिया या वापस ले लिया, बता दो।"

दयामयीने सतीकी तरफ लक्ष्य करके कहा—"तुम्हारी क्या राय है बहू?"

लड़कपनमें सती सासके सामने पतिके साथ बात करती थी, पर अब नहीं करती। अक्सर इधर उधर चली जाती है या निरुत्तर रहती है। परन्तु आज

उसने बात की, धीरेसे बोली—"रहने दो माँ, अब उसे यहाँ लानेकी जरूरत नहीं।"

जवाब सुनकर सास खुश न हो सकीं। उनकी अभिलाषा कुछ और थी, साथ ही मुँहसे वह कह भी नहीं सकती थीं। उन्होंने कहा—"बड़े आदमीकी लड़कीको अभिमान हो गया क्या?"

"नहीं माँ, अभिमान नहीं; लेकिन हम लोग जिस तरह वहाँसे चले आये हैं उसे देखते हुए उसे यहाँ फिर नहीं बुलाया जा सकता।"

"क्यों नहीं बुलाया जा सकता बहू? यदि कोई ऐसी बात हो भी गई, तो क्या उसका फिर सुधार नहीं हो सकता?"

"नहीं हो सकता, यह मैं नहीं कहती पर जरूरत क्या है माँ? पहले भी उसने कई दफे यहाँ आना चाहा था, पर हम लोग राजी नहीं हो सके थे और अब भी वैसी ही सब बाधाएँ मौजूद हैं। वह रसोईमें घुसती थी, इसलिए इन्होंने उस रास्तेसे ही ताल्लुक छोड़ दिया था,—तब क्या जरूरत है उसे यहाँ बुलानेकी?'

विप्रदासने कहा—"यह शिकायत उसके करनेकी है, तुम्हारी नहीं।" और वे हँस दिये, बोले—"फिर भी वन्दनाकी तुमपर अचल श्रद्धा-भक्ति है, खुद माँ इस बातकी गवाह हैं।"

सतीने मुँह उठाकर देखा, अकस्मात् शायद यह भूल गई कि सास सामने ही खड़ी हैं, बोली—"सिर्फ माँ ही क्यों, मैं भी गवाह हूँ। जिनको सब श्रद्धा-भक्ति करने लगते हैं वह शिकायत नहीं किया करतीं। देवी-देवता भी कम कष्ट नहीं देते, फिर वे भी पूजा बन्द नहीं करतीं, कहती हैं—दुःख उन्होंने अपनेके लिए ही दिया है।" फिर सासते कहने लगी—"तुम्हें भी माँ, वन्दना कम श्रद्धा-भक्ति नहीं करती, तुमसे भी उसका कम प्रेम नहीं है। तुम्हारी धारणा है कि तुम्हारी रसोईमें वह खाने पीनेकी तैयारियाँ सिर्फ इनके लिए कर दिया करती थी। यह बात नहीं, तुम दोनोंके लिए ही वह करती थी,—तुम दोनोंको वह बहुत चाहती है। उसपर तुमने रसोई घरका भार सौंपा था, और उसको खिलाने-पिलानेका काम; पर तुम्हारी अवहेलना करके वह दूसरोंको पुलाव कलिया नहीं खिला सकती थी। फिर तो सभीको नमक-भात खाना पड़ता। मगर अब फिर क्यों उसे इस दीक्षाजालमें डालना चाहती हो माँ? हम लोगोंने तो बाबूजी

थी वह जाती रही,—अब भीयाई नहीं जा सकती।" इतना कहकर उसी जल्दीसे वहाँसे चल दी।

अचानक आश्चर्यसे दोनोंके दोनों हतबुद्धिसे हो गये। उसीके स्वभावको देखते हुए ऐसी उक्ति और ऐसा आचरण इतना अस्वाभाविक और आश्चर्यजनक था कि यह सोचा ही नहीं जा सका कि वह अपनी स्वाभाविक प्रकृतिमें है।

विप्रदासने मासे पूछा—"बात क्या है माँ?"

दयामयीने कहा—"मालूम नहीं बेटा।

"किसलिए वन्दनाको तुम लोगोंने चाहा था? कौन-सी आशा जाती रही?"

दयामयी मन-ही-मन मारे शरमके गड़ गईं, किसी भी तरह जबानपर न ला सकीं कि उनका क्या इरादा था। बोलीं—"वे बातें फिर किसी दिन होंगी विपिन, आज नहीं।"

"माँ, अक्षय बाबूकी लड़कीके बारेमें तुमने क्या तय किया? उन लोगोंको कुछ-न-कुछ जवाब तो देना चाहिए।"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं विपिन, तुम लोगोंकी राय हो तो ठीक है। द्विजूसे भी पूछ लेना वह क्या कहता है।"—इतना कहकर वे भी कमरेसे बाहर चली गईं। विप्रदास संशयमें पड़ गये। बात विशेष स्पष्ट नहीं हुई, पर इसके लिए समय भी न था।



विप्रदासने कलकत्ते पहुँचकर देखा कि मकान खाली है। वन्दना और उसके पिता थोड़ी देर पहले रवाना हो चुके हैं। ऐसा संभव उन्हें बिलकुल ही न हो, सो बात नहीं, पर इतनी ज्यादा आशंका न थी। अवस्थाका कारण नहीं मालूम, उन्हें सिर्फ इतना ही मालूम है कि जानेकी इच्छा रायसाहबकी नहीं थी, सिर्फ लड़की ही जिद करके बापको खींच ले गई है। वन्दनापर विशेष कुछ दावा नहीं रहनेकी जुम्मेदारी भी नहीं, वहाँ अतिथि मात्र थी, फिर भी वह यों बगैर मुलाकात किये और बीमार द्विजदासको बेबस छोड़कर अकारण जल्दबाजी करके चली गई—इस बातका खयाल करते हुए विप्रदासको बड़ा क्लेश मालूम हुआ। बहुत-कुछ क्षोभके समान—निर्दय निष्ठुर व्यवहार मानो दण्ड देनेकी इच्छा होने लगी। परन्तु प्रकट करना उनकी प्रकृतिमें न था, वह भाव मनमें ही रह गया।

चार-पाँच दिन बाद विप्रदास डाककोठीसे वापस आये बड़े जोरका बुखार लेकर। शायद मलेरिया हो या और भी कुछ हो सकता है। आँखें लाल-सुर्ख हो रही थीं, माथेमें असहनीय दर्द हो रहा था। अन्नदाके पास आनेपर उन्होंने कहा—"अनु-दीदी बीमार तो मैं कभी पड़ता नहीं, बहुत दिनोंसे ज्वरासुरको धोखा देता आया हूँ, पर अबकी मालूम होता है यह ब्याज-समेत सब वसूल कर लेगा। जान पड़ता है कुछ दिन तकलीफ देगा, आसानीसे छुटकारा न होगा।"

हालत देखकर अन्नदा चिन्तित हो गई, परन्तु फिर भी निर्भयताके स्वरमें साहस दिखाती हुई बोली—"नहीं भइया, तुम्हारी इस पुष्ट देहपर ऐसा दानवका जोर ज्यादा नहीं चल सकेगा, तुम दो ही दिनमें अच्छे हो जाओगे। लेकिन डाक्टर बुलवाने किसीको भेज दूँ—मैं लापरवाही नहीं कर सकूँगी।"

"तो बुलवा दो।"—कहकर विप्रदास पलंगपर पड़ रहे।

अन्नदा बड़ी आफतमें पड़ गई। उधर देशसे अचानक वासुदेवकी बीमारीकी खबर पाकर द्विजदास घर चला गया, और दयामयी भी शहरमें नहीं हैं—मालिक-के वास्ते ढाका गये हुए हैं। अकेली क्या करे, कुछ समझमें न आनेसे सबेरे ही उसने आकर कहा—"विपिन, एक बात कहूँ, तुम गुस्सा तो न होओगे?"

"तुम्हारी बातपर कभी गुस्सा हुआ हूँ दीदी?"

अन्नदा पास बैठी हुई उसके सिरपर हाथ फेर रही थी, बोली—"प्राण देकर रोगीकी सेवा ही कर सकती हूँ, परन्तु मूर्ख औरतकी जात ठहरी, और कुछ जानती नहीं। देश भी खबर नहीं भिजवा सकती, बच्चा बीमार है,—उसे छोड़कर बहू आएगी कैसे,—सोचती हूँ वन्दना बीबीको खबर कर दूँ तो कैसा?"

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"खबर, क्या घर-गृहस्थ और घर-गृहस्थी है दीदी, कि खबर पाते ही वह देखने आ जायगी? उसके आते आते—नमक पीसे जानेसे पहले ही खेल खतम हो जायगी। इसकी जरूरत नहीं।"

अन्नदाने अपनी जीभ दबाते हुए कहा—"बड़ी गई, भगवान् बचाएँ, ऐसी बात जबानपर न लाओ भइया। वन्दना बीबी, कलकत्तेमें ही हैं, अभी उनका बम्बई जाना नहीं हुआ।"

"वन्दना कलकत्तेमें है?"

"हाँ, अपनी मौसीके घर, बालीगंजमें। उनके मौसा पंजाबके एक बड़े डाक्टर हैं, लड़कीका ब्याह करने आये हैं। अचानक हावड़ा स्टेशनपर भेंट हो

गई,—वे लोग उतर रहे थे गाड़ीसे और वे लोग प्लेटफार्ममें घुस रहे थे। मौसी बलरामपुरकी ठहरीं अपने घर ले गईं। बोलीं—जैसे जब कि मिल ही गई हो तो लड़कीका ब्याह होनेतक हरगिज नहीं छोड़ सकती। और उनके पिताजीको सिर्फ एक दिन रोककर बम्बई चला जाने दिया।"

विप्रदासने कहा—"मौसी क्या, जान-पहचानकी थी?"

"हाँ, उनकी सगी बड़ी-मौसी हैं। दूर-दूर रहना होता है, इससे हमेशा मेल-मुलाकात नहीं होती; पर हैं सगी मौसी।"

"तुम्हें इतनी बातें कैसे मालूम हुईं अनु-दीदी?"

"कल वे लोग घूमने आई थीं यहाँ, दिदीकी खबर लेने। दोपहरके वक्त उमरके बरामदेमें बैठी मैं जाजीम लिए कथरी-सी रही थी, देखती हूँ तो बाहर वाले आँगनमें दो-गाड़ी आदमी आकर खड़े हैं—औरतें-मर्द बहुतसे लोग थे। कौन हैं—झाँककर देखा तो अपनी वन्दना-दीदी भी दीख पड़ीं। पर पहनावा उढ़ावा ऐसा बदल गया था कि अचानक पहचाना ही नहीं जा सका, जैसे वह बहूजी ही न हो। क्या करूँ, कहाँ बैठाऊँ,—घबरा सी-गई। कुछ देर बाद दीदी-भाई ऊपर आए, उनको खबर थी; अपनी दुलाई,—उन्हींके मुँहसे सुना कि कमसे कम अभी महीने भर कलकत्ता रहना होगा। मौसी—बड़े मजेमें हैं थियेटर, सिनेमा, बन भोजन, बाग-बगीचोंकी सैर—यही सब होता रहता है, नित नया कुछ-न-कुछ।"

विप्रदासने पूछा—"बापूकी बीमारीके बारेमें उससे कुछ कहा था क्या?"

"हाँ, कहा क्यों नहीं। सुनके बोली—ऐसी कोई चिन्ताकी बात नहीं, अच्छा हो जायगा।"

विप्रदास क्षण-भर चुप रहकर बोले—"उसे खबर देकर क्या होगा अनु दीदी! मैं भी अच्छा हो जाऊँगा। कुछ दिनतक तुम अकेली मेरी देख-भाल न कर सकोगी?"

अन्नदाने जोर देकर कहा—"पहुँचना कहीं नहीं भागता, लेकिन तो भी मुझे लगता है कि एक बार खबर देना ठीक है, नहीं तो बहू शायद बहुत दुःख करेगी। कुछ भी हो, आखिर है तो बहन ही।"

"घर जानती हो?"

"अपना शोफर जानता है। उन लोगोंको वहीं पहुँचा आया था।"

विप्रदास बहुत देरतक चुप रहकर बोले—"अच्छा, दे दो एक बार खबर। पर इतना आमोद-प्रमोद छोड़कर क्या वह आ सकेगी? मालूम तो नहीं होता दीदी।"

अन्नदाने कहा—"मालूम तो मुझे भी नहीं होता भइया, अब तो उनके पहनाव-उढ़ावकी ही बात नजर आ रही है मुझे। फिर भी एक बार कहला भेजूँ।"

विप्रदासने निश्चल और थके हुए कण्ठसे कहा—"कहला भेजो दीदी, जब कि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो।"

१७

अकस्मात् हावड़ा स्टेशनपर मौसीके साथ जब वन्दनाकी भेंट हो गई तो उसका बम्बई जाना स्थगित कराना और उसे अपने घर ले आना मौसीके लिए कष्टसाध्य न हुआ। वे अपनी लड़कीके विवाहके लिए पश्चिम कार्यस्थल पंजाबसे अपने देश आ रही थीं। वन्दनाका अपनी मौसीके प्रस्तावपर राजी हो जानेका, प्रकट कारणके सिवा एक और कारण था, जिसे यहाँ प्रकट कर देना आवश्यक है। बचपनसे लेकर अबतक वन्दनाका जीवन सुदूर प्रवास ही प्रवासमें बीता है, उसकी शिक्षा-दीक्षा आदि सब वहींकी है और मजा यह कि वह जिस समाजके अन्तर्गत है उस समाजका अधिकतर अनुराग कलकत्तेमें रहता है, उसके साथ आजतक उसका घनिष्ठ परिचय हुआ ही नहीं। मामूली परिचय जो कुछ उसे हुआ था वह सिर्फ अखबारों, मासिक-पत्रों और साधारण उपन्यास-कहानियोंके सहयोगसे। कलकत्तेसे जिनका हर वक्त आना-जाना बना रहता है उनके मुँहसे अनेक बार उसे बोल-चालमें मालूम होते रहते थे—ट्रेनिंग पाये हुए एम्० ए०, विलायती डिग्री बी० ए०—अनुरूपा, निरुपमा, प्रियम्वदा आदि अनेक महिलाओंके नाम और उनकी कहानियाँ—बीसवीं सदीके अत्याधुनिक मनोभाव और रोमांचकारी जीवन-यात्राका विवरण इत्यादि; परन्तु उसमें कितना यथार्थ है और कितना बनावटी, इस बातका निःसंशय रूपसे अन्दाज लगाना उसके लिए कठिन था। इसीसे अपने समाजका जो चित्र उसके मनमें अपरिचित और धुंधला है या और अस्वाभाविक रूपसे पीला; उन्हीं चित्रोंको प्रत्यक्ष परिचयसे साफ और स्पष्ट कर लेनेके लिए जब उसे मौसीकी लड़कीके मांगलिक ब्याह जैसा सुयोग मिल गया तो वह उसकी

उपेक्षा न कर सकी; जल्दीमें राजी होकर उनके मौसीजीके मकानमें पहुँच गई। अपने समाजके बहुतोंके साथ उन लोगोंकी जान-पहचान थी, खासकर प्रकृति यहींके स्कूल-कालेजोंमें पढ़कर बी० ए० हुई थी, उसके अपने मित्र और सखी-सहेलियोंकी संख्या भी कुछ कम न थी। यहाँ आनेके बाद वन्दनाके उसी उत्सवमें कई दिन बीत गये। पिता अनायास राय बम्बई चले गये, परन्तु सुधीर रह गया कलकत्तेमें ही। आसन्न-विवाहका आनन्दोत्सव रोज ही चल रहा है। उस दिन डेन्मरड[1] एक बगीचेमें पिकनिक करके लौटते वक्त वन्दना विप्रदासकी खबर लेने उन लोगोंके घर पहुँच गई थी। वही खबर उस दिन वन्दनाने विप्रदासको सुनाई थी।

मौसीके मकानमें उनके दल या समाजके लोगोंका आना-जाना, खाना पीना, गपशप, हल्ला-गुल्ला वगैरहका एक रोज भी नागा न होता था। अतिथि आ पहुँचे और ऊपरके बड़े कमरेमें बड़े समारोहके साथ चायके दौरपर दौर चलने लगे; इतनेमें विप्रदासकी भारी भरकम मोटरने आकर गेटके भीतर प्रवेश किया। नौकर-चाकरोंका दल सावधान हो उठा परन्तु मोटरके गाड़ीसे उतर आया। ड्राइवरके पास जो प्रौढ़ा सी मोटरसे उतरी उसकी पोशाककी सामान्यता और स्वल्पतासे सब-कोई विस्मित और परेशान हो उठे। मोटरके साथ उस वेशका कोई भी सामंजस्य नहीं था। आश्चर्य पहनावेमें एक बिना किनारीकी सफेद धोती, वैसी ही सफेद मोटी चादर, नंगे-पाँव खाली हाथ और सिरका पल्लू आधे ललाटतक खिंचा हुआ —यह रूप भी मानो लज्जा-संकोचसे सिमट सी गई। नौकर चाकरोंकी चापकन-पगड़ियाँ देखकर यह समझना कठिन है कि कौन किस दर्जेका है, फिर भी सामनेके एक नौकरको बंगाली समझकर अन्नदा ने पूछा—वन्दना-बीबी घरपर हैं?

वह बंगाली ही था, बोला—"हाँ, हैं। सब ऊपर चाय पी रहे हैं, आप भीतर आकर बैठिए।"

"नहीं मैं वहाँ नहीं जाती हूँ, उन्हें जरा खबर नहीं दे सकते?"

"दे सकता हूँ। क्या कहना होगा?"

"कहो जाकर कि विप्रदास बाबूकी अन्नदा आई है।"

बैरा चला गया। थोड़ी देरमें वन्दना नीचे उतर आई और अन्नदाका

---

1. कलकत्तेके पासका एक स्थान।

हाथ पकड़के उसे कमरेमें लाकर बिठाया। ऐसा उसने कभी नहीं किया था, वह भूल गई कि सामाजिक दृष्टिकोणसे यह स्त्री उससे बहुत छोटी है — वह विप्रदासके घरकी एक दासी मात्र है। बिना कारण उसकी आँखें भर आईं, बोली— "अनु-दीदी, तुम मेरी खबर-सुध लेने आओगी, इसका मुझे खयाल न था। सोचा था मुझे तुम भूल गई हो।"

"भूलूँगी क्यों बीबी-बाई, भूली नहीं। बड़े बाबूने मुझे आपके पास भेजा है यह कहनेको—"

"नहीं अनु-दीदी 'आप' कहोगी तो मैं जवाब न दूँगी।"

अन्नदाने इसपर कोई आपत्ति नहीं की, सिर्फ हँसते हुए कहा—"उन लोगोंको गोदमें खिलाया-पिलाया है इसलिए 'तुम' कहा करती हूँ, नहीं तो इस घरकी मैं दासीके सिवा और कुछ नहीं।"

बन्दनाने कहा—"सो होने दो। मगर मुखर्जी साहबको तो कलकत्ते आये पाँच-छै रोज हो गये सुना, क्या एक दिनके लिए न आ सके? वे तो जानते हैं कि मैं बम्बई नहीं गई?"

"हाँ, मेरे जरिए ही यह खबर उन्हें मिल चुकी है। पर जानती तो हो बीबी-बाई, उन्हें कितना काम रहता है। उन्हें जरा भी वक्त नहीं मिलता।"

यह सुनकर बन्दना खुश न हुई, बोली—"काम तो सभीको रहता है अनु-दीदी। हम लोग गैर थीं इसलिए भइयाके बहाने तुम्हें भेज दिया, नहीं तो याद भी नहीं करते। उन्हें कहना जाकर कि मेरी मौसीके पास उनके बराबर धन-दौलत नहीं है फिर भी यदि एक बार मेरी खबर-सुध लेने इस घरमें पदार्पण करते तो उनकी नाक नहीं मारी जाती और मान-मर्यादाकी भी हानि नहीं होती।"

इन सब उलाहनोंका जवाब देना अन्नदाका काम नहीं था। उसने वहाँ चलनेके लिए अनुरोध किया, पर बन्दनाको सुननेका धैर्य न था, अन्नदाकी बात काटकर वह बीचहीमें बोल उठी—"नहीं अनु-दीदी, सो नहीं होनेका, कहीं भी आने-जानेका मेरे पास वक्त नहीं। इसके बाद परसों मेरी बहनका ब्याह है।"

"परसों?"

"हाँ, परसों।"

अमला सोचने लगी कि इस समय बीमारीकी खबर देना उचित है या नहीं, किन्तु वन्दना उसी वक्त पूछ बैठी—"मुझे बुलानेका तुम्हें हुक्म किसने दिया ! छोटे बाबू तो मुझे मालूम है, हैं नहीं, शायद बड़े बाबूने दिया होगा। मगर उनसे कह देना जाकर कि हुक्म चला-चलाकर उन्होंने अपनी आदत बिगाड़ ली है, मैं न तो उनकी कर्जदार हूँ, न उनकी जमींदारीका कोई कर्मचारी। मुझसे अनुरोध करना चाहिए उन्हें खुद आकर। जीजी अच्छी तरह हैं ?

"हाँ अच्छी तरह हैं।"

"और सब ?"

अमलाने कहा—"खबर आई है कि बच्चा बीमार है।"

"कौन बीमार है—बासू ? क्या हुआ है उसे ?"

"सो मुझे ठीक नहीं मालूम।"

वन्दना चिन्तित चेहरेसे बोली—"बच्चा बीमार है फिर भी खुद न जाकर मुखर्जी साहब यहाँ बैठे हैं ! मामले-मुकदमे और रुपये-पैसेका हिसाब ही उनके लिए इतना बढ़कर है अनु-दीदी ! हिताहितका भी तो कुछ बोध रहना चाहिए।"

अमलाने कहा—"रुपये-पैसेका हिसाब नहीं बीबी-बाई, आज दो दिनसे वे खुद भी खाटपर पड़े हैं। बच्चेकी बीमारीसे दीदी बहुत परेशान होंगी, इससे खबर भी नहीं दी जा सकती और यहाँ यह हाल है कि इनसे भी चला नहीं जाता—थककर गये हैं। अकेली मैं हूँ मूरख औरत, कुछ समझती बूझती नहीं; डर लगता है कि बीमारी कहीं कठिन न हो उठे। विपिनके कभी कुछ होता-हवाता नहीं इससे चिन्ता और ज्यादा है। ब्याह हो चुकनेके बाद एक बार क्या नहीं चलोगी बीबी-बाई ?"

मारे आशंकाके वन्दनाका चेहरा फक पड़ गया, बोली—"डाक्टर आये थे ! क्या कहते हैं वे ?"

"कहते हैं, डरकी कोई बात नहीं, मगर साथ ही किसी दूसरे डाक्टरको बुलानेकी बात भी कह गये हैं।"—कहते हुए अमलाकी आँखें भर आईं। उसने वन्दनाका हाथ दबाते हुए कहा—"मैं दो दिन तो किसी-न-किसी प्रकार काट दूँगी पर ब्याह हो चुकनेपर भी क्या न आओगी ! इस बेचारेपर गुस्सा ही बनी रहोगी क्या ! तुम लोगोंके बीच कहाँ क्या हुआ है, मेरे जाननेकी बात

नहीं, मैं जानती भी नहीं, पर इतना जानती हूँ कि दोष और चाहे किसीने भी किया हो, विपिनने हर्गिज नहीं किया। उसे न पहचाननेसे शायद गलती हो जाय, पर पहचान जानेसे ऐसी गलती नहीं होती जीजी-बाई।"

बन्दना कुछ देर चुप रहकर पलंगसे उठ खड़ी हुई, बोली—"चलो, मैं चलती हूँ।"

"अभी चलोगी?"

"हाँ, अभी तुरत।"

"ऊपर क्या नहीं जाओगी? ये लोग फिकर करेंगे जो?"

"कहने-सुननेमें देर हो जायगी अनु जीजी, तुम चलो।" इतना कहकर वह उत्तरकी प्रतीक्षा किये बगैर गाड़ीमें जाकर बैठ गई। एक बेहराको इशारेसे बुलाकर कह दिया कि वह मौसीजीसे जाकर कह दे कि मैं अपनी बहनके घर जा रही हूँ, वहाँ विप्रदास बाबू बीमार हैं।

बन्दनाने जाकर जब विप्रदासके कमरेमें प्रवेश किया तब दिन छिप रहा था पर बत्ती जलानेका समय नहीं हुआ था। विप्रदास कई तकियोंके सहारे इस ढंगसे बैठे हुए थे कि चेहरा देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि वे बहुत ज्यादा बीमार हैं। बन्दनाके मनमें जरा तसल्ली आ गई; बोली—'मुखर्जी साहब, नमस्कार। जीजी मौजूद होतीं तो कहतीं, नजदीक पाँव छूकर ही प्रणाम करना चाहिए। पर छूनेमें डर लगता है, कहीं छूत न लग जाय।"

विप्रदास मुँहसे कुछ न बोलकर सिर्फ हँस दिये। बन्दनाने कहा—"कुछ-ख़ास क्यों था,—सेवा करनेको? अनु-जीजी कह रही थीं दया देनेका वक्त हो आ गया है। मगर यह क्या? पैताने गद्दिया कहाँ है? आकर झुकनेकी बुद्धि किसने दी आपको?'

विप्रदासने कहा—हमारे यहाँ 'ढीठ' एक शब्द है, उसके मानी जानती हो बन्दना?"

बन्दनाने कहा—"जानती हूँ महाराज, खूब जानती हूँ। मनुष्य होकर जो मनुष्यसे घृणा करते हैं, छूते नहीं, ठन्ढ करते हैं। उनसे बढ़कर 'ढीठ' संसारमें और कौन है क्या?"

विप्रदासने कहा—"है। जिनमें सच-झूठकी परीक्षा करनेका धीरज नहीं होता, आर जो बिना कारण निर्दोषोंको डंक मारकर अपनी बहादुरी दिखाते

फिरते हैं वे। और उनके गुरुकी पण्डा तुम खुद हो।"

"बिना कारण किस निर्दोषीके डंक मारा है आज बता तो दीजिए?"

"मुझे नहीं बताना पड़ेगा वन्दना, वक्त आनेपर खुद ही जान जाओगी।"

"अच्छा, उसी दिनकी प्रतीक्षा किये रहूँगी।"—यह कहकर वन्दना खाटके पास एक कुरसी खींचकर बैठ गई, बोली—"अब यह बताइए कि आपकी तबीयत कैसी है?"

"अच्छी है, पर बुखार है। पसलीमें और भी कुछ बढ़ जायगा मालूम होता है।"

"मगर मुझे क्यों बुलवा भेजा है? मेरी आपको किसलिए जरूरत है?"

"जरूरत मुझे नहीं अनुभोदीदीको है वह डर गई है। उसके मुँहसे सुना है कि परसों तुम्हारी बहनका ब्याह है, सो ब्याह हो जानेपर एक दिन आना। मेरे मारफत तुम्हारी जीजीने कुछ सँदेसा भेजा है वह सुनाना है।"

आज नहीं सुना सकते?"

"नहीं आज नहीं।"

वन्दना दो-एक मिनट चुप बैठी रही फिर बोली—"मुखर्जी साहब, आपकी तबीयत ऐसी कुछ ज्यादा खराब नहीं है, दो ही चार दिनमें ठीक हो जायगी। मैं जानती हूँ कि आपको मेरी जरूरत नहीं, फिर भी आपकी सेवाका बहाना लेकर यहीं रहूँगी, कहीं नहीं जाऊँगी। मैंने अपना ट्रंक लानेके लिए आदमी भेज दिया है, आप कोई आपत्ति नहीं कर सकते।"

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"किस बातकी आपत्ति वन्दना, तुम्हारे रहने में? मगर तुम्हारी बहनका ब्याह है सो?"

"ब्याह तो मेरे साथ नहीं होगा,—मेरे न आनेपर भी बहनका ब्याह हो जायगा, रुकेगा नहीं।"

"सचमुच तुम शामिल न होगी ब्याहमें?"

"नहीं।"

"मगर उसीके लिए तो तुम यहाँ रुकी थीं?"

"आ रही थी बम्बई, स्टेशनसे वापस चली आई, पर ठीक इसीके लिए नहीं। सुन रखती हूँ अपने समाजके बाहर किसीको नहीं जानती, बुढ़-अयानी बहुतोंसे बहुत-सी बातें सुना करती थी उपन्यास-कहानियोंमें न-जाने क्या-क्या

पड़ा करती थी, उन लोगोंके साथ अपनेको मिलाकर एक न कर सकी थी,—ऐसा लगता था जैसे हम लोग समाजसे अलग मर्यादायुक्त-से हों। सो जब मौसीजीने आग्रह किया तब मैंने सोचा कि प्रकृतिके ब्याहमें दैवयोगसे एक मौका मिल गया है, जो फिर मिलनेका नहीं; इससे रुक गई मुखर्जी-साहब।"

विप्रदासने मुसकराते हुए कहा—"मगर वह ब्याह तो अभी बाकी है। अपने समाजके लोगोंको पहचाननेका मौका कहाँ मिला?"

"मौका पूरा नहीं मिला, यह सही है, पर जितना मिला है उतना ही मेरे लिए काफी है।"

"तुम्हारे साथ इन लोगोंका कितना मेल बैठा वन्दना? मैं भी सुन सकता हूँ क्या?"

वन्दना हँस दी, बोली—"आप अच्छे हो लीजिए, उसके बाद विस्तारसे सब सुनाऊँगी।"

नौकर दवा खिलाकर चला गया। सिरहानेकी खिड़की बन्द करके वन्दनाने दवा पिलाई; और कहा—"अब आप बैठे मत रहिए, लेट जाइए।"—कहकर उसने सिमटे हुए बिस्तरको झाड़-फटकारकर साफ कर दिया, तकिये जहाँके तहाँ ठीकसे लगा दिये। फिर विप्र उनके लेट जानेपर उनके पैरसे गलेतक अच्छी तरह चादर उढ़ाकर कहा—"अच्छे होकर अपनेको शुद्ध करनेमें न जाने आपको कितने गोबर-गंगाजलकी जरूरत पड़ेगी।"

विप्रदासने अपने दोनों हाथ फैलाकर कहा—"इतनेकी! पर आश्चर्य तो यह है कि तुम्हें सेवा-जतन करना भी थोड़ा-बहुत आता है।"

"थोड़ा-बहुत आता है? नहीं महाशय, ऐसा नहीं कह सकते। हम लोगोंके बारेमें आपको कुछ और भी ज्यादा जानकारी रखनी पड़ेगी।"

"यानी—"

"यानी अगर आप हम लोगोंकी निन्दा ही करना चाहते हैं तो आपको वह पूरी जानकारीके साथ करनी होगी। इस तरह आँख मींचकर अटकल बात मैं नहीं करने दूँगी।"

विप्रदासके चेहरेपर परिहासकी मुसकराहट आ गई, उन्होंने कहा—"तुम्हारे ये 'हम लोग' कौन हैं वन्दना? किन आदमियोंके बारेमें मुझे और भी कुछ जानकारी रखनी पड़ेगी? किन लोगोंके पाससे तुम अभी-अभी

लोगोंके बारेमें ?"

"किसने कहा मैं भाग आई हूँ ?"

"मैं कहता हूँ।"

"आपने कैसे जाना ?"

"जाना तुम्हारा मुँह देखकर।"

वन्दनाने क्षण-भर उनके मुँहकी ओर देखा और फिर कहा—"हिन्, बापूने एक रोज कहा था कि भाई साहबकी नजरोंसे कुछ छिपाया नहीं जा सकता। तब मैंने विश्वास नहीं किया था कि बात उनकी इतनी सच है। आपकी बीमारी मैंने नहीं चाही लेकिन, इसने सचमुच ही मेरा उद्धार कर दिया है। सचमुच यहाँ भाग आई तो मैंने अपनेको बचा लिया। जितने दिन आप बीमार हैं मैं आपके पास ही रहूँगी, उसके बाद सीधे बापूजीके पास चली जाऊँगी,—मौसीके घर अब न जाऊँगी। दूसरे, जिन लोगोंको देखना चाहा था उन्हें मैंने देख लिया। ऐसी इच्छा अब नहीं है कि एक दिनके लिए भी उनमें जाकर रहूँ।"

विप्रदास चुपचाप उसकी तरफ देखते रहे। वन्दना कहने लगी—"उनके यहाँ सिर्फ गाड़ी, साड़ी और बड़े प्यारके किस्से हैं। मैं नहीं जानती कि कहाँ नैनीताल है और कहाँ मसूरीका होटल लेकिन उनकी बातोंमें वहाँके बारेमें कैसे-कैसे गप्पे हमारे होते रहते हैं,—सुनते-सुनते ऐसी तबीयत होती है कि कहीं भाग जाऊँ। आज इस घरमें बैठके मालूम हो रहा है मानो इतने दिन मैं लगातार धूल बालूकी आँधीके चक्करमें घिरी थी। उसके अन्दर वे कैसा कैसे करते हैं मुझको ताज्जुब ?"

विप्रदासने कहा—"यह रहस्य मेरा जाना हुआ नहीं है। मरुभूमिमें कांटे जिस तरह टिकी रहती है शायद उसी तरह।"

वन्दनाने एक साँस छोड़ते हुए कहा—"तृष्णाका जीवन है। उन लोगोंके न तो शान्ति है और न धर्म-कर्मकी कोई बला। कुछ भी विश्वास नहीं करते, सिर्फ बहस करते हैं।" फिर जरा ठहरकर बोली—"अखबार पढ़ा करते हैं, इससे जानते बहुत हैं। दुनियामें रोज कहाँ क्या हो रहा है, उनसे छिपा नहीं। पर मुझसे तो वे पढ़े नहीं जाते, इससे उनकी बातें समझ ही नहीं पाती। सुनते-सुनते जब जी ऊबता जाता तब और कहीं जाकर तसल्लीकी साँस लिया करती। मगर उन लोगोंको थकावट नहीं आती, बकते-बकते उनके

थ मानो उन्मत्त हो उठते हैं।"

"पर पिताजी पास होते तो तुम्हें बहुत-कुछ सहूलियत होती वन्दना। लड़ाईकी सारी खबरें तुम उनसे पूछकर जान सकतीं, —उन लोगोंके सामने शर्मिन्दा न होना पड़ता।"

वन्दनाने हँसकर उनकी बातका समर्थन करते हुए कहा—"हाँ, बापूजीको यह बीमारी है। सारेकी सारी खबर जबतक खान-पीनके साथ नहीं पढ़ लेते तबतक उन्हें तृप्ति नहीं होती। पर हम लड़कियोंके लिए उनकी जरूरत क्या है बताइए तो? क्या होगा जानकर कि दुनियामें कहाँ क्या हो रहा है?'

'यह बात तुम्हारी भाभीके मुँहसे शोभा दे सकती है वन्दना, तुम्हारे मुँहसे नहीं।"—कहकर विप्रदास हँस दिये।

वन्दनाने कहा—"वे लोग क्या मेरी भाभीसे ज्यादा जानते हैं आप समझते हैं? जरा भी नहीं। [illegible] होनेसे ही मुँहसे आवाज निकलती है। उन लोगोंको और कोई बात आती हो या न आती हो, मगर इतनी बात तो समझ ली है [illegible]।"

"मगर ज्ञान तो चाहिए ही!"

"नहीं, नहीं चाहिए। ज्ञानकी उछल-कूदमें उनका मुँहका मधु तिक्त होता जा रहा है। जानते हैं वे मेरी भाभीकी तरह सबको प्यार करना? नहीं जानते। कर सकते हैं वे भाभीकी तरह भक्ति? नहीं कर सकते। उन लोगोंके यहाँ किसीका कोई मित्र भी है? मालूम होता है नहीं है, ऐसा ही उन लोगोंमें पारस्परिक विद्वेष है। उन लोगोंके यहाँ अभाव भी क्या कुछ कम है? बाहरके ठाठ-बाटसे मालूम ही नहीं हो सकता कि उनके अन्दर इतना पोलापन है! फिर किसलिए उनके साथ इतना हेलमेल किया जाय? भीतरसे तो सबका सब घुनकर खोखला हो गया है।"

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"हो क्या गया है वन्दना तुमको, इतना गुस्सा क्यों? किसीने चोरीसे रुपये तो नहीं ले लिये?"

'नहीं, चोरीसे नहीं लिये, उधार लिये हैं।"

"कितने?"

"ज्यादा नहीं, चार-पाँच सौ।"

"उनके नाम तो मालूम हैं?"

"मालूम थे, पर भूल गई हूँ।"—कहकर वन्दना हँस पड़ी, बोली—"छि-छि, इतनी कम जान-पहचान होनेपर भी कोई किसीसे रुपये उधार माँग सकता है, यह तो मैं सोच ही नहीं पाती। माँगनेमें पुरुषको जरा भी संकोच नहीं होता, आँखोंमें लज्जाकी छायातक नहीं झलकती, मालूम होता है जैसे यह उनका रोजमर्राका काम है। यह कैसे सम्भव होता है मुखर्जी साहब!"

विप्रदासका चेहरा गम्भीर हो उठा, कुछ देर स्तब्ध रहकर बोले—"तुम्हारे मनको उन लोगोंने बहुत ज्यादा विषाक्त कर दिया है वन्दना, मगर सभी ऐसे नहीं होते, तुम्हारी मौसीका समाज ही इस देशका सारा समाज नहीं है। उसके बाहर जो लोग बचे हुए हैं, उनमें ढूँढ़ोगी तो शायद उन्हें भी किसी दिन देख लोगी।"

वन्दनाने कहा—"देख लूँगी तब अपनी धारणाको भी सुधार लूँगी; लेकिन जिन्हें देख लिया है वे सभी शिक्षित हैं, और सभी ऊँचे दर्जेके व्यक्तियोंके आत्मीय हैं। उपन्यास-कहानियोंकी रची हुई भाषासे सुसज्जित होकर ये ही लोग दूरसे मेरी दृष्टिमें कैसे आश्चर्यजनक सुन्दर मनोहर बन रहे थे! मेरे भी उनकी सीमा न रही थी। मैं सोचने लगी थी कि इन व्यक्तियोंकी शिक्षा पानेकी कल्पनामें अब मिट गई। मेरी यह गलती अब दूर हो गई मुखर्जी साहब।"

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"गलती कैसे? ये तो सही तौरसे बढ़ी जा रही है—यह तो झूठ नहीं है!"

सुनकर वन्दना भी हँस दी, बोली—"नहीं, झूठ क्यों होने लगा, सच ही है। फिर भी मेरे लिए इतनी सान्त्वना है कि इस देशमें ये लोग बहुत थोड़े हैं—इनका ऊँची मीनारकी चोटीपर चढ़ाकर धारायुक्त झण्डा जैसा बैठ निष्फल है वैसे ही हास्यास्पद भी।"

विप्रदासने कहा—"तुम्हारा यह एक और ढंगका दक्षिणामूर्तिपन है। अपने धर्मको छोड़नेमें विपत्तिका ही सामना करना पड़ता है वन्दना, सावधान रहना।"

वन्दनाने उनकी इस बातपर ध्यान नहीं दिया, कहने लगी—"इस नगण्य समुदायके बाहर बयालका विशाल भारी समाज मौजूद है। उनको मैंने आज-तक देखा नहीं, बाहरसे शायद देखा भी नहीं जा सकता, फिर भी मालूम होता है इसकी तरह उन्हींका अस्तित्व है सामान्य निःस्वार्थ। यह जानता है कि

उसमें छोटी भी है और बड़ी भी—जो बड़ी है उनका दृष्टान्त मौजूद है मेरी बीबीमें, उनकी सासमें—अबकी कलकत्ता आना मेरा सार्थक हो गया मुखर्जी साहब।—आप हँस क्यों रहे हैं?"

"सोच रहा हूँ, रुपयोंका लोभ आदमीको किस कदर सुन्दर बना सकता है। यह लोभ मेरे अन्दर भी है न।"

"कौनसा रुपयोंका लोभ—उन पाँच-सौका?"

"मालूम तो यही होता है।"

वन्दना हँसती हुई बोली—"रुपयोंके लिए अब कोई चिन्ता नहीं। आपकी सेवा करनेकी मजदूरीका बिल पेश करके सब पूरा वसूल कर लूँगी तब पिण्ड छोड़ूँगी। आप नहीं देंगे तो मौसे वसूल कर लूँगी।"

इतनेमें अन्नदाने कमरेके अन्दर आकर कहा—"आठ बज रहे हैं, विपिनके खानेका वक्त हो गया है।"

वन्दना व्यस्त होकर बोली—"चलो अन्नु-दीदी, आई मैं। क्यों, जाऊँ मुखर्जी साहब?"

विप्रदासने हँसते हुए जवाब दिया—"जाओ। मगर सेवामें त्रुटि हुई तो मजदूरी काट ली जायगी।"

"त्रुटि नहीं होगी महाराजजी, नहीं होगी।"—कहकर हँसती हुई वन्दना बाहर चली गई।

१८

वन्दनाने कहा—"खाना तैयार है, ले आऊँ?"

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"तुम बराबर मेरी जात मारनेकी कोशिश कर रही हो। अभीतक मैंने संध्या-वन्दना नहीं की, पहले उसकी व्यवस्था कर दो।"

"मैं पूछ ही रही हूँ मुखर्जी साहब?"

"नहीं तो और यहाँ कौन है जो कर देगा? पर चूँकि पूजा-पाठ तक न कर सकूँगा—शरीरमें ताकत नहीं है—इसी कमरेमें इन्तजाम करना होगा। पहले मैं देखूँगा कि कैसा आयोजन करती हो, जात बिगाड़नेकी कोई बात है कि नहीं, तब समझकर बताऊँगा कि मेरा खाना तुम लाओगी या महाराज।"

सुनकर वन्दना फूली न समाई, बोली—"मैं इसी खातिर राजी हूँ। लेकिन

परीक्षामें पास अगर हो गई तो फिर आप मुझे बड़े छलसे पेश नहीं कर सकेंगे। वचन दीजिए।"

"दिया वचन। पर मुझे अपने हाथसे खिलानेमें तुम्हें काम क्या है?"

'सो मैं नहीं बताऊँगी।"—कहकर बन्दना जल्दीसे वहाँसे चल दी।

कोई दस मिनट बाद, बन्दना नहा धोके तैयार होकर जलसे भरा एक लोटा हाथमें लिए हुए विप्रदासके कमरेमें दाखिल हुई। कमरेमें जिस तरफ खुली हुई खिड़कीमेंसे पूर्व दिशाकी धूप आ रही थी उसी तरफके स्थानको पानीसे अच्छी तरह रगड़ धोकर अपने आँचलसे पोंछ दिया। पूजा-घरसे आसन और 'कोशा कुशी'[1] आदि लाकर जहाँके तहाँ जमा दिये। धूपदानी लाकर धूपसे बत्तियाँ सुलगा दीं और फिर धोती अंगोछा हाथ-मुँह धोनेके लिए पानी और बरतन वगैरह लाकर विप्रदासके सामने रखती हुई बोली—'आज फूल चुनकर माला गूँथनेका समय नहीं रहा नहीं तो गूँथ लाती। कल यह कमी न रहने दूँगी। लेकिन आध-घंटेका समय देती हूँ इससे ज्यादा नहीं। अभी बजे हैं नौ—ठीक साढ़े-नौ बजे फिर आऊँगी। इस बीच आपको कोई नहीं छेड़ेगा मैं जाती हूँ।"—इतना कहकर वह दरवाजा बन्द करके चल दी।

विप्रदास मुँहसे कुछ न बोलकर उसकी ओर देखते रहे। आध घंटे बाद बन्दना जब वापस आई तब सन्ध्या-पूजा समाप्त करके वे एक आरामकुरसीपर आरामसे बैठे हुए थे।

"पास हुई या फेल मुखर्जी-साहब?'

"पास फर्स्ट डिवीजनमें। मेरी मौसीको भी मात कर दिया तुमने। किसकी मजाल कि अब तुमसे म्लेच्छ कहे कौन कह सकता है कि तुमने म्लेच्छोंके स्कूल-कालेजोंमें पढ़कर बी० ए० पास किया है?"

"तो अब खानेको लाऊँ?"

"लाओ। मगर उसके पहले इन सबको रख आओ।"—कहते हुए विप्रदासने पूजाका सामान दिखा दिया।

"यह मुझे न बताना होगा, मैं जानती हूँ।"—कहकर उसने पूजाके बरतन आदि उठाये ही थे कि इतनेमें कमरेके बाहर एक साथ बहुतसे ऊँची एड़ीवाले बूटोंकी खट-खट आवाज सुनाई दी; और दूसरे ही क्षण [illegible]

१. तांबेके बरतन—किश्ती जैसे छोटे-बड़े पात्र जिनसे पूजामें जल चढ़ाया जाता है।

दरवाजेसे झाँककर कहा—"दीदी-बाबू, आपकी मौसीजी—"

आगे कहनेकी जरूरत नहीं पड़ी; मौसीजी और उनके साथ दो-तीन कम-उमरकी लड़कियाँ कमरेके अन्दर दाखिल हो गईं। विप्रदास उठके खड़े हो गये और अभ्यर्थनाके स्वरमें बोले—"आइए।"

मौसीने कहा—"नीचे ही मालूम हो गया है कि विप्रदास बाबूकी तबीयत ठीक है—"

विप्रदासने कहा—"हाँ, मैं अच्छा हूँ।"

आगन्तुक लड़कियाँ वन्दनाको देखकर हदसे ज्यादा विस्मित हुईं। पैरोंमें जूते नहीं, बदनपर ब्लाउज नहीं भीगे बालोंसे रेशमकी चौड़ेर साड़ी भीग रही है, बिखरे हुए काले बालोंका भारी बोझ पीठपर पड़ा हुआ है, दोनों हाथोंमें पूजाके बरतन-आसन आदि हैं,—उसकी यह मूर्ति उन लोगोंके लिए अद्भुत और अपरिचित ही नहीं, बल्कि अचिन्तनीय और अकल्पनीय भी थी। वन्दनाने कहा—"आप लोग दरवाजा छोड़कर जरा हटके खड़ी हो जायँ, तो मैं इन्हें रख आऊँ।"

एक लड़कीने कहा—"[illegible] क्या इसलिए?"

"हाँ।"—कहकर वन्दना बाहर चली गई।

क्षण भर बाद उसी वेशमें वह लौट आई और विप्रदासकी कुरसीसे सटकर खड़ी हो गई। मौसीने कहा—"हम लोगोंसे बगैर कहे-सुने तुम चली आईं इसके लिए मैं नाराज नहीं होती, पर आज तुम्हारी बहनका ब्याह है—तुम्हें चलना पड़ेगा।"

दोनों लड़कियोंने कहा—"हम पकड़के ले जानेके लिए आई हैं।"

वन्दनाने कहा—"नहीं मौसीजी, मेरा जाना न हो सकेगा।"

"यह कैसी बात है वन्दना! नहीं चलनेसे [illegible] कितना दुःख होगा, जानती हो!"

"जानती हूँ, फिर भी मैं न जा सकूँगी।"

सुनकर मौसी विस्मय और क्षोभसे अधीर हो उठीं, बोलीं—"मगर इस ब्याहके लिए ही तो तुम बम्बई आनेको रुकी हो,—इसीलिए तो तुम्हारे पिता मेरे पास छोड़ गये हैं। वे सुनेंगे तो क्या कहेंगे बताओ?"

उस लड़कीने कहा—"इसके सिवा सुधीर बाबू—मिस्टर दास (बस)—बहुत नाराज हो रहे हैं। आपका यहाँ आना उन्हें कतई पसन्द नहीं है।"

वन्दनाने उस लड़कीकी तरफ देखा, किन्तु जवाब दिया मौसीको, बोली—"मेरे न जानेसे प्रकृतिका ब्याह नहीं रुक सकता, पर जानेसे मुखर्जी-महाशयकी सेवामें त्रुटि होगी। इनकी देख-भाल करनेवाला यहाँ कोई नहीं है।"

"पर ये तो अच्छे हो गये हैं। इन्हें चाहिए कि तुमसे जानेके लिए कह दें। बल्कि न जाना ही अनुचित होगा।"

वन्दनाने सिर हिलाते हुए कहा—"नहीं, अनुचित होगा ऐसा मैं नहीं मानती। फिर भी आप कहती हैं चलनेको, तो मैं चली चलूँगी, मगर रातको वापस चली आऊँगी, वहाँ नहीं रह सकूँगी। इतनी अनुमति आपको देनी ही पड़ेगी।"

"एक रात भी न रह सकोगी?"

"नहीं।"

"अच्छा, ऐसा ही सही।"—कहकर मौसी मन-ही-मन नाराज होकर दल-बल सहित वहाँसे चल दीं।

× × ×

विप्रदासने कहा—"देखा नहीं तुमने, मौसीजी नाराज होकर चली गईं। पर अचानक ऐसा सामन्तशाही निश्चय क्यों कर बैठीं?"

वन्दनाने कहा—"नाराज होकर गई हैं सो मालूम है, पर मैं किसी लाभ-लालचमें यह निश्चय नहीं कर बैठी हूँ। उन लोगोंके यहाँ जो-कुछ भी है उन सबसे मुझे नफरत हो गई है, अरुचि हो गई है। इसीसे अब वहाँ नहीं जाना चाहती मुखर्जी-साहब।"

"यह क्या ज्यादती हो रही है वन्दना?"

"वास्तवमें ज्यादती है या नहीं, कहना कठिन है। इस विषयमें मैं हमेशा ही अपने आपसे पूछती रहती हूँ, साथ ही अच्छी तरह समझ भी सकती हूँ कि उनके बीच रहनेसे न मुझे सुख मिलता है और न शान्ति। एक बार बम्बईमें मैं एक कारखाना देखने गई थी, बार-बार मुझे उसीका खयाल आ जाता है—उसमें कितनी मशीन, कितने चक्के अगल-बगल, सामने-पीछे लगातार घूम रहे थे जिनका शुमार नहीं, ऐसा लगता था कि जरा भी असावधानी हुई कि वे गोद मुँह मरोड़कर अपनेमें खींच लेंगे। देखनेमें वे सब अच्छे न लगते हों सो बात नहीं, फिर भी मनमें यही आता था कि यहाँसे निकल भागूँ तो जान

बचे ।—पर अब देर नहीं करनी चाहिए, आपका पथ्य ले आऊँ ।"—कहती हुई वह बाहर जाने लगी तो देखा कि दरवाजेके सामने पैरोंकी धूल और जूतोंके दाग पड़े हुए हैं । वह ठिठककर खड़ी हो गई, बोली—"पथ्य लानेमें विघ्न आ गया मुखर्जी साहब, जरा सब्र करना होगा । नौकरसे इस जगहको धुलवा पुछवा दूँ ।"—इतना कहकर वह जा ही रही थी कि विप्रदासने विस्मयके साथ पूछा "इतनी कसर-नुकसकी बातें तुमने सीखीं किससे वन्दना ?"

सुनकर वन्दना खुद भी अचम्भेमें आ गई, बोली—"किसने सिखाया मुझे याद नहीं मुखर्जी साहब ।" और फिर जरा चुप रहकर कहने लगी—"शायद किसीने सिखाया नहीं । अपने-आप ही मुझे ऐसा लगता है कि ये सब बातें आपकी सेवा करनेके लिए अपरिहार्य हैं और न करनेसे त्रुटि होगी ।"—इतना कहकर वह चली गई ।

× × ×

शाम होनेके पहले तीसरे पहर वन्दना अपने अभ्यासके अनुसार यथोचित पोशाक पहनकर विप्रदासके कमरेके खुले हुए दरवाजेके सामने आ खड़ी हुई और बोली—"मुखर्जी साहब, मैं जा रही हूँ बहनका ब्याह देखने । मौसीजीने पीछा नहीं छोड़ा, इससे जाना पड़ रहा है ।"

विप्रदासने कहा—"आशीर्वाद देता हूँ कि तुम बहुत जल्द उन लोगोंसे इस अत्याचारका बदला ले सको और अपनी मासीको पछाड़कर घसीटकर बम्बई खींच ले जाओ ।"

"मौसीपर मुझे इतना गुस्सा नहीं है, पर आपको जरूर घसीटकर ले जाऊँगी । डरनेकी कोई बात नहीं, रेल-किराया हम ही लोग देंगे, आपका खर्च नहीं करायेंगे ।"—कहती हुई वन्दना हँस दी और बोली—"लौटनेमें मुझे ज्यादा रात हो जायगी । लेकिन, सब इन्तजाम करके जाती हूँ, जरा भी गड़बड़ हुई तो आकर गुस्सा होऊँगी ।"

'सो क्यों न होओगी । न होनेसे तभी आश्चर्य होगा । सीनेमें तबीयत ठीक नहीं है, ब्याह-शादीमें जाकर ज्यादा खा लेनेसे शायद बीमार हो गई हो ।'

वन्दना मुसकराती और सिर हिलाती हुई बोली—"बस-बस हो चुकी मेरे गुणोंकी व्याख्या । इसे रहने दीजिए, और आप संध्या-पूजा करने नीचे न जाइएगा । अनु-दीदी इसी कमरेमें सब ला देंगी । उसके आस-पास [illegible]

महाराज चला जायेंगे पाली-पाड़ा, और खानेके घंटे भर बाद जोखू दवा देकर बत्ती बुझाके दरवाजा लगाके चला जायगा। ऐसा हुक्म मैं उनको दे चुकी हूँ। समझे ?"

"हाँ, समझ लिया।"

"तो जाती हूँ।"

'जाओ। पर इतना तो मानना ही पड़ेगा कि तुम इस पोशाकमें दीख बड़ी अच्छी रही हो वन्दना, कारण, जो पोशाक तुमने पहन रक्खी है, वही तुम्हारे लिए स्वाभाविक है जो यहाँ पहने रहती हो वह कृत्रिम है।"

"यह क्या मुखर्जी साहब,—और सब तो कहते हैं कि विदेशोंका पहनावा मुझे पहनना आपको देख नहीं सुहाता।"

"जो कहते हैं वे गलत कहते हैं, जैसे यह कहते हैं कि मैं तुम्हारे हाथका छुआ नहीं खा सकता।"

वन्दनाने आश्चर्यके साथ पूछा—"गलत क्यों होने लगा जनाब, मेरे हाथका छुआ खानेमें आपको आपत्ति तो सचमुच ही थी ?"

विप्रदासने कहा—"आपत्ति थी किन्तु आपत्ति अगर सचमुचकी होती तो वह आज भी रहती, मिटती नहीं।"

बात वन्दनाकी समझमें न आई परन्तु विप्रदासकी इस उक्तिको असत्य समझना भी उसके लिए कठिन है, बोली— 'द्विजू बाबूने एक दिन कहा था कि भाई-साहबके मनकी बात कोई नहीं जान सकता जो बाहरकी बात है लोग सिर्फ उसीको थोड़ा बहुत समझ सके हैं, पर जो अन्तःकरणकी है वह अंदरमें ही दबी-ढकी रहती है,—क्या यह सच है मुखर्जी महाशय ?"

उत्तरमें विप्रदास सिर्फ जरा-सा हँस दिये, फिर बोले—"तुम्हें देर हुई जा रही है वन्दना। अगर सचमुच ही वहाँ चलनेकी इच्छा न हो तो मत रहना, चली आना।"

"चली ही आऊँगी मुखर्जी साहब, पर रह नहीं सकूँगी।"—इतना कहकर, और ज्यादा देर न करके वन्दना नीचे उतर गई।

× × ×

दूसरे दिन भेंट होनेपर विप्रदासने पूछा—"बहनका ब्याह निर्विघ्न सम्पन्न हो गया ?"

"हाँ, हो गया,—कोई विघ्न नहीं आया।"

"अपनी ही ज़िद कायम रखी, मौसीका अनुरोध नहीं माना? कितनी रात बीते लौटी थीं?"

"तब करीब तीन बजे होंगे। मौसीकी बात नहीं रखी जा सकी, रातको ही लौट आना पड़ा।"—फिर ज़रा रुककर, शायद विचारकर देखनेके बाद कि कहना उचित होगा या नहीं, कहा—"सिर्फ कुछ ही घण्टे रही थी, पर काम बहुत-सा कर आई। एक सालमें जो न कर पाई थी, वह पाँच-सात मिनटोंमें ही कर गुज़री। सुधीरके साथ खातमा कर आई हूँ।"

विप्रदासको आश्चर्य हुआ, कहा—"कहती क्या हो!"

"हाँ, ठीक ही कह रही हूँ। पर उसे मँझधारमें नहीं डुबो आई हूँ। कल सबेरे जिस लड़कीको आपने देखा था उसका नाम है हेम,—हेमनलिनी राय। उसीके ज़िम्मे सुधीरको कर आई हूँ। फिर मुझे उसी वर्षाकी सिकताका ख़याल उठ आता है, ठीक उसीके समान उन लोगोंके यहाँ प्रेम-प्रीतिके ताने-बानेमें देखते देखते आदमीका भविष्य बनने लगता है और फिर टूट भी जाता है।"

विप्रदासने पहलेकी भाँति ही विस्मयके साथ अचानक पूछा—"बात क्या हुई? सुधीरके साथ अचानक खातमा कर आनेके मानी?"

वन्दनाने कहा—"खातमा करनेके मानी खातमा करना और वहाँ 'अचानक' नामकी कोई चीज़ नहीं है। उन लोगोंके यहाँका काम अवश्य फुर्त होता है, इसीसे बाहरसे 'अचानक'का भ्रम हो जाता है, पर असलमें ऐसी बात है नहीं। सुधीरने मुझे बुलाकर कहा कि 'तुमने बहुत अनुचित किया है,' मैंने कहा, ज़रा अनुचित किया सुनूँ भी तो?' उसने कहा, 'किसीसे बगैर कहे-सुने यानी उन्हें बगैर बताये—अचानक यहाँ चला आना अत्यन्त गर्हित कार्य हुआ है। खासकर, जब कि, यहाँ विप्रदास बाबूके सिवा और कोई दूसरा है नहीं।' मैंने कहा, 'यहाँ अन्नदा-दीदी हैं' सुधीरने कहा, 'पर वह दासीके सिवा और कुछ नहीं।' मैंने कहा, 'यहाँ उसे सब दीदी कहके पुकारते हैं।' सुनकर वही हेमनलिनी मुँह बिचकाकर ओठों-ही-ओठोंमें हँसती हुई बीचमें ही बोल उठी—'गँवार-गाँवमें इस तरह पुकारनेका रिवाज है। सुना है, इससे नौकरानियोंका घमण्ड भर बढ़ जाता है और कुछ नहीं। पर इससे वे बड़ी नहीं बन जातीं।' सुधीरने कहा—"इन बातोंसे तुमने कहा है कि

तुम रातको न रह सकोगी, रातको ही वापस चली आओगी; मगर वहाँ उस घरमें तुम्हारा अकेला रहना हममेंसे कोई भी पसन्द नहीं करता—खुद तुम्हारे पिता ही सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?' मैंने कहा—'पिता क्या कहेंगे, इसकी चिन्ता करना तुम्हारा काम नहीं, मेरा है। पर, और जो लोग पसन्द नहीं करते, उनमें तुम खुद भी हो क्या ?' उसने कहा—'जरूर हैं, सबोंको छोड़कर ये अलग थोड़े ही हैं।' उस लड़कीके इस बिन-चाहे मन्तव्यका उत्तर देना मुझे अच्छा नहीं; न देनेकी इच्छा ही हुई, इसलिए मैंने सुधीरसे ही कहा—'तुम्हारे इस बातका जवाबमें मैं भी कह सकती थी कि बेमतलबकी युक्तियाँ लेकर तुम्हारा कलकत्तेमें रहना मैं पसन्द नहीं करती, पर मैं ऐसी बात नहीं कहना चाहती। तुमने जो गन्दा इशारा किया है, नीच समाजमें ही उसका चलन है; मगर तुम लोगोंके बड़े दलमें भी उसका चलन है यह मुझे मालूम नहीं था; खैर, अब मेरे पास वक्त नहीं है; गाड़ी खड़ी हुई है, मैं जाती हूँ।' वह लड़की बोल उठी—'जो अशोभन है जो अनुचित है, उसकी आलोचना छोटे-बड़े सभी दलोंमें होती है इतना समझ रखिए।' मैंने कहा—'आप लोग जितनी चाहे आलोचना करते रहें मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैं जाती हूँ।' सुधीर अकस्मात् न जाने कैसा हो गया, उसका चेहरा सफेद पड़ गया—अपनेको सँभाल कर बोला—'अपनी मौसीको भी नाराज न करोगी !' मैंने कहा—'उन्हें बताया हुआ है कि ब्याह होते ही मैं चली आऊँगी चाहे कितनी ही रात क्यों न हो जाय।' सुधीरने कहा—'क्या कल तुमसे एक बार मुलाकात हो सकती है ?' मैंने कहा 'नहीं।' उसने पूछा—'परसों ?' मैंने कह दिया—'परसों भी नहीं।'

'उसके बादके दिन ?'

'नहीं, उसके बादके दिन भी नहीं।'

'कब तुम्हें समय मिलेगा ?'

'कुछ अब समय नहीं मिलेगा।'

'पर मुझे तो एक बहुत जरूरी कामके बारेमें बातचीत करनी है !'

'तुम्हें शायद करनी हो, पर मुझे नहीं करनी।'—इतना कह कर मैं वहाँसे उठ खड़ी हुई।"

बन्दना विप्रदासका मुँह देख फिर कहने लगी—"सुधीर मुझे पहचानता न हो, सो बात नहीं; मेरे साथ आनेकी उसे हिम्मत न पड़ी, वहाँका वहीं स्तम्भ-सा

खड़ा रहा। मैं आकर गाड़ीमें बैठ गई।"

विप्रदासने मुसकराते हुए कहा—"इसके मानी क्या खातमा कर आना है वन्दना? जरा-सा कलह भर हुआ समझो। इसमें अगर सन्देह हो तो मुलाकात होनेपर अपनी बौजीसे पूछ लेना।"

वन्दना हँसी नहीं, गम्भीर होकर कहने लगी—"किसीसे पूछने-ताछनेकी जरूरत नहीं मुखर्जी साहब। मैं जानती हूँ, हम लोगोंका सम्बन्ध खतम हो चुका, अब नहीं जुड़नेका।"

उसके मुँहकी ओर देखकर विप्रदास हतबुद्धि-से हो गये, बोले—"कह क्या रही हो वन्दना, इतनी बड़ी चीज क्या इतनी आसानीसे इतनी छोटी-सी बातसे खतम हो सकती है? सुधीर के तरफसेकी बातको भी क्या सोच कर देखो।"

वन्दनाने कहा—"सोच देखा है मुखर्जी साहब। इस सदमेको सँभाल लेनेमें सुधीरको ज्यादा दिन नहीं लगेंगे; मैं जानती हूँ, वह हेम-नलिनी ही उसे रास्ता बता देगी। मैं तो अपनी बात सोच रही थी। सिर्फ गाड़ीमें बैठी-बैठी ही नहीं सोचती रही, आकर बिस्तरपर लेटी तब भी सोचती रही, रातभर नींद नहीं आई। अशान्ति जरूर रही, पर कष्ट मुझे नहीं हुआ।"

"कष्ट होगा गुस्सा दूर होनेपर। तब फिर सुधीरके लिए ही राह देखा करोगी।"— यह कहकर विप्रदास हँस दिये।

इस हँसीमें भी वन्दना शरीक नहीं हुई। शान्त भावसे बोली—"गुस्सा मुझे नहीं है। सिर्फ अनुताप होता है कि यहाँसे चले आते वक्त अगर कुन्दर बात मेरे मुँहसे न निकलती तो ठीक था। मैं विदा आई हूँ कि दोष मानो उसीका है, कहा आई हूँ कि मानो मैं मर्माहत होकर विदा ले रही हूँ। मगर सत्य वह नहीं है मुखर्जी साहब, और कोई बात नहीं।" बातचीतके अन्तमें उसकी आँखें मानो भर आई।

विप्रदासका मनका विस्मय कई-गुना बढ़ गया, अब वह समझ गया कि यह छल नहीं है। बोला—"सुधीरको क्या सचमुच ही तुम अब नहीं चाहती?"

"नहीं।"

"अबतक तो चाहती थीं? इतनी आसानीसे वह प्रेम कहाँ कैसे रहा?"

"इतनी आसानीसे आता रहा, इसीसे इतनी आसानीसे उसका उत्तर पा गई। नहीं तो आससे झूठ बोलना पड़ता।"—इतना कहकर वह कुछ देर चुपचाप

देखती रही, फिर बोली—"आपने जानना चाहा है कि किसी दिन सुधीरको चाहती थी या नहीं। उस दिन सोचती थी कि सचमुच ही चाहती हूँ। किन्तु उसके बाद ही एक और आ गया आँखोंके आगे,—सुधीर हो गया विलीन। अब देखती हूँ कि वह भी विलीन हो गया है। सुनके शायद आपको घृणा होगी, आप सोचेंगे कि ऐसा चंचल मन तो कभी नहीं देखा। और मैं जानती हूँ कि लड़कियोंके लिए यह शर्मकी बात है। कोई भी लड़की यह स्वीकार नहीं करना चाहती—यह तो मानो उसके चरित्रको ही कलंकित कर देता है। शायद मैं भी किसीके आगे इसे नहीं मान सकती, मगर मालूम नहीं क्यों, आपसे कोई भी बात कहनेमें मुझे शर्म नहीं लगती।"

विप्रदास चुप रहे। वन्दना कहने लगी—"हो सकता कि यह मेरा स्वभाव हो, हो सकता है कि यह मेरी उमरका स्वधर्म हो। अन्तःकरण शान्त नहीं रहना चाहता और चारों तरफ उद्देश्यहीन फिरता रहता है। अथवा ऐसी ही शायद सब लड़कियोंकी प्रकृति हो, प्रेमका पात्र कौन है सो जिन्दगी-भर ढूँढ ही न पाती हो।"—इतना कहकर वह स्थिर होकर मन-ही-मन न जाने क्या सोचने लगी; उसके बाद कह उठी—"या शायद ढूँढकर पानेकी वह चीज ही न हो मुख ?—शायद,—मरीचिका ही हो।"

विप्रदास पहलेकी भाँति मौन ही रहे। वन्दनाकी मानो मनकी ग्रन्थि खुल गई, कहने लगी—"इस सुधीरके साथ ही एक साल पहले मेरा ब्याह होना तय हो गया था, पर इसकी माँके बीमार हो जानेसे न हो सका था। कल यहाँसे वापस आकर सोच रही थी कि ब्याह अगर उस दिन हो जाता तो आज क्या मेरा मन उसे इसी तरह लपेटके गिरा देता? तब मनको किस चीजसे अपने वशमें रखती? धर्मबुद्धिसे? संस्कारसे? लेकिन स्वच्छन्द मन अगर शासन न मानना चाहता तो फिर क्या होता? जिन लोगोंके बीच रहकर इतने कई दिन बिता आई हूँ, क्या ठीक उन्हींकी तरह हो जाती? उन्हीं तरह षड्यन्त्र और चुगलखोरीसे मनको परिपूर्ण करके सुखी होती, ओछीतक खींच-खाँचकर लोगोंको भुलावा देती फिरती? उन्हीं तरह परस्पर एक-दूसरेकी निन्दा करके, घृणा करके? मगर आप बोल क्यों नहीं रहे हैं मुखर्जी साहब?"

विप्रदासने कहा—"तुम्हारे मनके अन्दर जो आँधी चल रही है उसकी तेज रफ्तारके साथ मैं चल नहीं सकता वन्दना, इसीसे चुप हूँ।"

बन्दनाने कहा—"नहीं, सो नहीं होगा, इस तरह आपको बचकर न निकल जाने दूँगी। जवाब दीजिए।"

"पर शान्त हुए बिना जवाब देनेसे फायदा क्या? तुम्हारी आजकी यह अवस्था स्वाभाविक नहीं है, इस बातको समझोगी कैसे?"

"क्यों न समझूँगी मुखर्जी साहब, बुद्धि तो मेरी नष्ट नहीं हुई?"

"नष्ट नहीं हुई किन्तु चक्करमें पड़कर धुँधली हो गई है। अभी रहने दो। शामके बाद जब स्थिरतासे बैठोगी तब बातें करूँगा। दे सका तो तभी इसका जवाब दूँगा।"

"तो यही ठीक है। इस वक्त मुझे भी फुरसत नहीं है।"—कहकर बन्दना वहाँसे चली गई। असलमें देखा जाय तो उसे इतना काम करना था कि जिसकी हद नहीं। सबेरेसे अन्नदा पूजा लेकर कालीघाट गई है, उसके करनेका काम भी आज बन्दनाको ही करना है। जितने ही नौकर-चाकर हैं और जितने ही लड़के यहाँ रहकर स्कूल-कालेजमें पढ़ते हैं,—उनका न जाने कितना काम है। कामकी भीड़में उसे मालूम ही नहीं हुआ कि वह कल रात सोई नहीं है और बहुत थकी हुई है।

× × ×

सन्ध्याके बाद विप्रदास जब रातका खाना खाकर निवृत्त हो चुके तब नीचेका सारा इन्तजाम करके बन्दना उनके पलंगके पास एक कुरसीपर आकर बैठ गई, और बोली—"मुखर्जी साहब, एक बातका सच-सच जवाब देंगे?"

विप्रदासने कहा—"साधारणतः ऐसा ही तो किया करता हूँ। प्रश्न क्या है?"

बन्दनाने कहा—"दीदीको आप क्या सचमुच ही प्यार करते हैं? बचपनमें आप लोगोंका ब्याह हुआ है—बहुत दिनोंकी बात है यह—कभी क्या इसमें अन्यथा नहीं हुआ?"

विप्रदास दंग रह गये। ऐसी बात भी किसीके मनमें उठ सकती है, इसकी उन्हें कल्पना भी न थी। परन्तु अपनेको सँभालकर उन्होंने हँसते हुए कहा—"बल्कि यह प्रश्न तुम अपनी दीदीसे ही करना।"

बन्दनाने कहा—"वे कैसे जान सकती हैं? आपके मनकी असली बात तो सुना है कि कोई भी नहीं जान पाता। न बताना चाहें तो मत बताइए, मैं

किसी-न-किसी तरह उसका खूँटी पर बतायें तो आपको सच बात ही कहनी पड़ेगी।"

"सच बात ही बताऊँगा, पर मुझपर क्या तुम्हें सन्देह होता है?"

"होता है। आप बहुत बड़े आदमी हैं, फिर भी हैं आदमी ही। मालूम होता है जैसे आप मानो बिलकुल अकेले हैं, यहाँ आपका कोई भी संगी-साथी नहीं है। क्या यह बात सच नहीं?"

विप्रदासने उसकी बातका ठीक-ठीक उत्तर नहीं दिया, कहा—"सबको प्यार करना तो मेरा धर्म है वन्दना।"

वन्दनाने कहा—'धर्म क्योंकि पैदा हुआ है क्योंकि आप शासित हैं, पर उससे भी बड़ा क्या संसारमें और कुछ नहीं है?"

"देखनेमें तो नहीं आता वन्दना।"

वन्दनाने कहा—"मुझे विश्वास पड़ता है मुखर्जी साहब बताऊँ वह बात?"

विप्रदासका चेहरा सहसा मानो फीका पड़ गया—बल्कि गोरे चेहरेपर जैसे खूनका चिह्नतक न रह गया हो; उन्होंने दोनों हाथ सामनेकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"नहीं नहीं, अब एक बात भी मत कहो वन्दना। आज तुम अपने कमरेमें चली जाओ—कल हो, परसों हो—जब तुम शान्त स्वाभाविक अवस्थामें आ जाओगी, अपनेमें आलोचना करनेकी बुद्धि पा जाओगी तब मैं तुम्हें इसका जवाब दूँगा। या फिर, हो सकता है कि अपने आप ही समझ जाओगी कि तुम्हारी मौसीके घरपर जिन लोगोंने तुम्हारी बुद्धिको आच्छन्न कर दिया है वे ही सब कुछ नहीं हैं। जिनके लिए अस्वाभाविक है वे भी हैं, संसारमें उनका भी अस्तित्व है। नहीं नहीं अब तक बिलकुल रहने दो—तुम जाओ।"

वन्दना समझ गई कि यह आदेश है, अवहेलनाकी चीज नहीं। यही शायद वह चीज है जिससे घर-भरके लोग डरा करते हैं। वन्दना चुपचाप वहाँसे चल दी।

× × ×

१९

दूसरे दिन शामको वन्दनाने आकर कहा—"मुखर्जी साहब, फिर जा रही हूँ मौसीजीके घर। अबकी बार कुछ दिनोंके लिए नहीं, बल्कि जबतक मौसी

मुझे बम्बई रवाना करनेका इन्तजाम नहीं करतीं तबतकके लिए।"

"यानी ?"

"यानी अरजेण्ट टेलिग्राम आया है। पिताजीका हुक्म है। कल ही सुबह मौसी गाड़ी भेजेंगी मुझे लिवानेके लिए।"

विप्रदासने कहा—'यानी समझ लिया जाय कि तुम्हारी मौसीमें बदला लेनेका अध्यवसाय और बुद्धिमत्ता है। यह शायद उन्हींके जवाबी तारका जवाब है। कहाँ है देखूँ तार ?"

"नहीं, आपको मैं नहीं दिखा सकती।"

सुनकर विप्रदास क्षण भर स्तब्ध हो रहे, फिर ज़रा मुसकराकर बोले—"भगवान् किसीका दर्प कायम नहीं रखते, यह उसीका नमूना है। अबतक धारणा थी कि मुझ किसी बातमें आक्षेप नहीं आ सकता, पर अब देखता हूँ आक्षेप आ सकता है। कमसे कम ऐसे आदमी भी हैं। तुम्हारी मौसीके दिमागमें चाल भी आ गई। जो न कहा, पढ़ देखूँ कि अभियोग कितना गहरा है।"—कहकर उन्होंने हाथ बढ़ा दिया।

अबकी बार वन्दनाने तार उनके हाथमें दे दिया। राय साहबका लम्बा चौड़ा तार था,—शुरूसे आखिरतक एक पलक उसे वापस देते हुए विप्रदासने कहा—"कुल-जमा तुम्हारे पिताजीने असंगत कुछ भी नहीं लिखा। निःस्वार्थ परोपकारमें आपत्ति भारी है, बीमार रिश्तेदारको तीमारदारी करने जाना भी संसारमें आसान काम नहीं है।"

वन्दनाने पूछा—"मुझे क्या आप मौसीके घर ही लौट जानेके लिए कहेंगे ?"

"यही तो तुम्हारे पिताजीकी आज्ञा है वन्दना। यह तो बलरामपुरका मुखर्जियोंका घर नहीं है,—इस मामलेमें हुक्म देनेका मालिक मुखर्जी साहब नहीं हैं—मासी हैं—और फिर हुक्म दिलाया है पिताके मारफत, लिहाजा मानना ही पड़ेगा।"

वन्दनाने कहा—"यह तो आपके मामूली वचन हैं। पिताजीको यहाँका हाल कुछ भी नहीं मालूम, फिर उनका आदेश है, इसलिए न्याय-अन्याय कुछ भी क्यों न हो मानना ही पड़ेगा ? मौसीका घर कैसा है सो तो आप जानते हैं।"

विप्रदासने कहा—"जानता तो नहीं, पर तुम्हारे मुँहसे सुना है कि वह अच्छी जगह नहीं। मैं स्वस्थ होता तो खुद जाकर तुम्हें बम्बई पहुँचा आता, पर

उतनी शक्ति अभी नहीं है।"

"इस हालतमें आपको छोड़के चली जाऊँ? बिना मौसीके पहचानतीतक नहीं उन्हींकी फ़िक्र बड़ी हो जायगी?"

"मगर उपाय क्या है?"

"उपाय यही है कि मैं नहीं जाऊँगी।"

"तो रहो। सिराजीको एक तार दे दो। पर मौसी लिवाने आयेंगी तो उनसे क्या कहोगी?"

बन्दनाने कहा—"सिर्फ यही कि नहीं जा सकूँगी। इससे ज्यादा नहीं।"

विप्रदासने कहा—"तुम्हारी मौसी लेकिन इतनेसे ही शान्त न होंगी। सबकी बार शायद मेरी माँको तार देंगी।"

यह सम्भावना बन्दनाके मनमें नहीं आई थी। विप्रदासकी बात सुनकर वह उद्विग्न हो उठी बोली—'आप ठीक ही कह रहे हैं मुखर्जी साहब और शायद यह काम वे कर भी चुकी होंगी—माँको खबर देना मौसीने बाकी न रक्खा होगा। मगर क्यों, जानते हैं?"

विप्रदासने कहा—'जानना तो सम्भव नहीं, पर इतना अन्दाज लगाया जा सकता है कि उनका इतना बड़ा उद्यम निःस्वार्थ नहीं है, और तुम्हारे विशेष कल्याणके लिए भी नहीं है। शायद उनके मनमें कोई खास बात हो।'

बन्दनाने कहा—"क्या मनमें है सो मैं जानती हूँ। उनके भतीजे साहब आये हैं बैरिस्टरी पास करके,—मौसीने उनका मुझसे आलाप-परिचय करा दिया है। उनका दृढ़ विश्वास है कि वही मेरे लिए योग्य वर हैं। कारण अपने पिताकी एकलौती लड़की हूँ, और जितनी सम्पत्ति वे छोड़ जायँगे उसकी आमदनीसे कुछ उपार्जन बगैर किये भी—उनके भतीजेकी जिन्दगी आरामसे बीत जायगी।"

विप्रदासने कहा—"भतीजेकी हित-चिन्ता करना बुआके लिए कोई दोषकी बात नहीं। लड़का देखनेमें कैसा है?"

"अच्छा है।"

'मेरे जैसा होगा?'

बन्दना हँस दी बोली—"यह तो आपकी अहंकारकी बात हुई। मनमें खूब अच्छी तरह समझते हैं कि इतना रूप दुनियामें और किसीका नहीं है। मगर

ऐसी तुलना करने बैठेंगे तो संसारकी सब लड़कियोंको क्वाँरी रह जाना पड़ेगा मुखर्जी साहब। सिर्फ आपकी तरह देख-देखकर ही उन्हें अपने दिन काटने पड़ेंगे। फिर भी कहूँगी कि देखनेमें अशोक अच्छा है, दोष-त्रुटियाँ ढूँढ़ना कमसे कम मेरे लिए तो न सोहेगा।"

"तो पसन्द है, यों कहो!"

"अगर हुआ भी तो उस पसन्दको कोई मोल नहीं दे सकेगा, इतना कह सकती हूँ।"—इतना कहकर वन्दना उठकर खड़ी हो गई, बोली—"पाँच बज रहे हैं, आपका चाय पीनेका समय हो गया—जाऊँ, ले आऊँ। इस बीच अशोककी बात आप भी जरा सोच रखिए।"—कहकर वह चली गई। पाँचेक मिनट बाद वह वापस आई; उसके हाथमें चाँदीके कटोरेमें चाय थी—परन्तु अन्दर रखके ज्यों ही खड़ी हुई—उसमें थोड़ी मिठाइयाँ थीं, वह बोली—"यह सबकी सब पी लेनी होगी, छोड़ देनेसे काम न चलेगा। रोगकी त्रुटि दिखाकर कोई मुझसे कैफियत माँगे तो मैं नहीं जाने दूँगी।"

विप्रदासने कहा—"जुल्म करनेकी विद्या तुमने थोड़ेही आनेमें सीख ली है, किन्तु शासन इतना नहीं चलेगा तुम्हें, इतना तो मैं कह सकता हूँ।"

वन्दनाने कहा—"नहीं। कोई पूछेगा तो कह दूँगी, मुखर्जी साहबपर हाथ चलाकर पक्की हो गई हूँ।"

× × ×

चाय पी चुकनेके बाद जूठा कटोरा हाथमें लिए वन्दना चली जा रही थी, जाते जाते मुड़कर खड़ी हो गई, बोली—"मेरी एक बातका जवाब देंगे मुखर्जी साहब?"

"कौन-सी बातका वन्दना?"

"संसारमें सबसे ज्यादा आपको कौन प्यार करता है, बता सकते हैं?"

"बता सकता हूँ।"

"बताइए तो क्या नाम है उसका।"

"उसका नाम है वन्दना देवी।"

सुनते ही वन्दना तेजीसे कमरेसे बाहर चली गई। परन्तु पन्द्रह-बीस मिनट बाद ही फिर आकर कुरसी खींचके विप्रदासके बिस्तरके पास बैठ गई। विप्रदासने हँसते हुए पूछा—"इस तरह कमरेसे भाग क्यों गई थीं बताओ तो?"

वन्दना पहले तो कुछ जवाब न दे सकी, फिर धीरे-धीरे बोली—"बाद आपकी अचानक मुझसे रही नहीं गई मुखर्जी साहब, मालूम हुआ जैसे मेरी कोई बड़ी चोरी आपने पकड़ ली है।"

"इसीसे अबतक मेरी तरफ तुमसे देखते नहीं बनता, क्यों?"

"हो क्यों न बनेगा!"—कहकर वह जबरदस्ती मुँह उठाकर हँसने लगी, किन्तु फिर भी मारे शरमके उसका चेहरा लाल-सुर्ख हो उठा। बादमें अपनेको सँभालते हुए उसने कहा—"कैसे आपने यह बात जान ली, सो बताइए?"

विप्रदासने कहा—"यह पूछना बिलकुल फिजूल है वन्दना। मुझे क्या तुमने बिलकुल पाषाण ही समझ लिया है कि इतनी-सी बातको मैं न समझ सकूँ? इसके सिवा सन्देह अगर कभी रहा भी हो तो आज तुम्हारी तरफ देखके नहीं रहा।"

वन्दनाने फिर मुँह झुका लिया। विप्रदासने कहा—"किन्तु इससे तुम यह नहीं कर सकती, तुम्हें मुँह उठाकर देखना ही पड़ेगा। शरमाने लायक कोई काम तुमने नहीं किया, और फिर मेरे सामने तुम्हें शरमानेकी कोई जरूरत भी नहीं। देखो मेरी तरफ मुँह उठाओ, सुनो मेरी बात।"

यह बड़ी आदेश है। वन्दनाने मुँह उठाकर देखा, फिर कुछ देर चुप रहकर कहा—"आप शायद मुझपर बहुत नाराज हो गये हैं न, मुखर्जी साहब?"

विप्रदासने मुसकराते हुए कहा—"जरा भी नहीं। यह क्या नाराज होनेकी बात है? सिर्फ मेरे मनकी आशा इतनी-सी है कि इस भूलको तुम खुद ही किसी दिन पकड़ लोगी और उसी दिन इसका प्रतीकार होगा।"

"मगर पकड़ाई अगर किसी भी दिन न पड़े तो? इसे भूल ही कभी न समझ पाई तो?"

"पागलपन ही। इससे संसारमें कितने अनर्थोंका सूत्रपात हो सकता है—इस बातको अगर न समझ सको तो मैं समझूँगा कि तुमने मुझे प्यार ही नहीं किया। सुधीरको प्यार करनेके समान यह भी तुम्हारी एक सामयिक खामखयाली है—मनके अन्दर किसीको खींच लाकर सिर्फ अपनेको बहलाना है, इससे ज्यादा नहीं।"

वन्दनाका चेहरा एक क्षणमें म्लान हो उठा वह अस्पष्ट व्यथित कण्ठसे बोली—"सुधीरके साथ तुलना न कीजिए मुखर्जी साहब, यह मुझसे न सहा जायगा। पर इससे संसारमें अनर्थोंका सूत्रपात हो सकता है, यह बात आपकी मानूँगी। मानूँगी कि यह अमंगलको खींच लाना है, पर इसीलिए इसे झूठ नहीं

मानूँगी। झूठ ही अगर होता तो जरा-सा भी प्यार क्या आपका पा सकती थी? नहीं पाया क्या मैंने?"

साँस रोके हुए विप्रदास उसकी बातें सुन रहे थे, बात खतम होते ही ज्यों ही वन्दनाने मुँह उठाकर विप्रदासकी तरफ देखा त्यों ही वे चौंक पड़े और बोले— "पाया क्यों नहीं वन्दना, तुमने बहुत-सा पाया है। नहीं तो तुम्हारे हाथका मैं खाता कैसे? तुम्हारी रात-दिनकी सेवा मैं किस जोरसे ले सकता? मगर इससे क्या मैं धर्मनिष्ठासे या अधर्ममें उतर आ सकता हूँ, या तुम्हें उतार ला सकता हूँ? जो लोग मेरी तरफ देखकर हमेशासे विश्वासके बलपर सिर ऊँचा किये हुए हैं, सब-कुछ तोड़-फोड़कर क्या मैं उन्हें नीचा कर दूँगा? क्या तुम यही करना चाहती हो?"

वन्दनाने दृढ़ स्वरमें कहा—"तो आप भी स्वीकार कीजिए कि आज जिसे आप छोड़ नहीं सकते वह है आपका दम्भ। बचपनसे सब-कुछ, उन लोगोंकी दृष्टिमें बड़ा बनकर रहनेके मोहको आपने बड़ा मान लिया है। नहीं तो और किस बातकी ग्लानि है मुखर्जी साहब,—जिसे हम अधर्म मानें? मनुष्यकी एक मनगढ़न्त व्यवस्था—मनुष्यने ही बार-बार जिसे माना है और बार-बार तोड़ा है—उसीका? आप भले ही मान लें, पर मैं नहीं मान सकूँगी।"

विप्रदास गम्भीर हो उठे, बोले—"तुम्हारे न माननेपर भी मैं मान सकूँगा और मानूँगा, उसीसे मेरा काम चल जायगा। अंग्रेजी किताबें तुमने बहुत सी पढ़ी हैं वन्दना, लोगोंके पर आलोचनाएँ भी बहुत सुनी होंगी, इन सबको भूलनेमें समय लगेगा, मालूम होता है।"

वन्दनाने कहा—"आप तो मेरा मजाक कर रहे हैं, लेकिन मैं जरा भी मजाक नहीं कर रही मुखर्जी साहब, जो भी कुछ कहा है, मैंने सब सच कहा है।"

"सो तो समझ गया; पर इस पागलपनको मगजमें भर किसने दिया?"

"आपने।"

"कहती क्या हो? यह अधर्म-बुद्धि आखिर दी खुद मैंने ही तुमको?"

"हाँ आपने ही दी है। शायद अनजानमें ही हो, पर आपके सिवा और किसीने नहीं दी।"

इस बार विप्रदास निर्वाक् विस्मयसे उसकी ओर देखते रह गये। वन्दना कहने लगी—"अधर्म बताकर जिस चीजकी आपने निन्दा की है उसे तो मैं

मानती नहीं —मैं जानती हूँ कि जिसे आपने एकाग्र चित्तसे धर्म समझके स्वीकार किया है वह धर्म नहीं सिर्फ एक संस्कार है। अत्यन्त दृढ़ संस्कार है, उससे अधिक कुछ नहीं।'

विप्रदासने सिर हिलाकर स्वीकार किया और कहा— 'हो सकता है कि यह बात तुम्हारी सच हो वन्दना यह मेरा संस्कार ही हो—सुदृढ़ संस्कार। परन्तु मनुष्यका धर्म जब इस प्रकार संस्कारका रूप धारण कर लेता है वन्दना, तभी वह यथार्थ हो जाता है तभी वह सहज स्वाभाविक चीज बन जाता है। जीवनके कर्तव्यमें फिर कोई संघर्ष या टक्कर नहीं होती, उसे माननेके लिए अपने ही साथ लड़-झगड़कर नहीं मरना पड़ता। तब बुद्धि शान्त हो जाती है, अबाध जल-स्रोतके समान वह सहज स्वाभाविक तरीकेसे बहती रहती है। शायद इसीको मैंने उस दिन कहा था—यह है विप्रदासका अभ्यस्त धर्म—इसमें किसी तरहका परिवर्तन नहीं है।"

"कभी किसी भी दिन इसमें परिवर्तन नहीं आ सकता मुखर्जी साहब?"

'अबतक तो ऐसा ही जानता हूँ वन्दना। आज भी मैं यह नहीं सोच सकता कि इस जीवनमें इसमें कोई परिवर्तन हो सकता है।"

इतनी देरमें वन्दनाकी आँखें भर आईं विप्रदासने बड़े स्नेहसे उसका हाथ खींचते हुए कहा— 'लेकिन परिवर्तनकी जरूरत क्या है वन्दना? प्यार तुमसे किया है मैंने —वह प्यार तुम्हारा मेरे मनके भीतर रहेगा —जिससे वह हमेशा मुझे दुःखमें सान्त्वना और कमजोरीमें बल। भार जब अकेले मुझसे न ढोया जायगा तब तुम्हें पुकारूँगा। यह भी आजसे तुम्हारे लिए सुरक्षित रख दिया है मैंने अगर। आओगी तो तब?'

वन्दनाने बायें हाथसे अपनी आँखें पोंछते हुए कहा—"आऊँगी, अगर आनेकी शक्ति रही—रास्ता भी अगर तबतक खुला रहा, नहीं तो नहीं आ सकूँगी मुखर्जी साहब।"

बात सुनकर विप्रदास मानो चौंक पड़े, बोले—"ठीक ही तो है! ठीक ही तो है। आनेका रास्ता अगर खुला रहा—हमेशाके लिए अगर बन्द न हो गया। तब आना जरूर लेकिन, अभिमानसे मुँह मत मोड़ लेना।"

वन्दनाने फिर अपने आँसू पोंछते हुए कहा—"मेरी एक भीख लेनी रही मुखर्जी साहब, मेरी बात आप किसीसे कहें नहीं।"

"नहीं, नहीं कहूँगा। मेरा ऐसा कोई आदमी नहीं, जिसे मैं मनकी बात बताऊँ, यह तो तुम जान ही चुकी हो।"

"हाँ, जान चुकी हूँ।"

इसके बाद दोनों कुछ देर चुप रहे। फिर विप्रदासने कहा—"इस विशाल जगतमें मैं इतना अकेला हूँ यह बात तुमने कैसे समझी थी वन्दना?"

वन्दनाने कहा—"क्या मालूम कैसे समझी थी। आपके घरसे जब नाराज होकर चली आई तब आप साथ आये थे। गाड़ीके उन मतवाले साहबोंकी बात याद है? ऐसी कुछ खास बात नहीं थी—फिर भी उस वक्त मालूम हुआ कि जिन्हें हम लोग अपने चारों तरफ देखा करते हैं उनमेंसे आप नहीं हैं, अकेले [illegible] ओर भार अपने सिर उठानेमें आपको दुविधा नहीं होती। यही बात कही थी उस दिन द्विजू बाबूसे,—मैंने मिला-मिलाकर देखा कि आप किसीसे भी कोई प्रत्याशा नहीं करते। रातको बिस्तरपर पड़े-पड़े आपका ही खयाल आता रहा—किसी भी तरह नींद नहीं आई। आखिरी रातमें उठी तो देखा कि नीचे पूजा घरमें बत्ती जल रही है और आप बैठे हुए हैं ध्यानमें। एकटक देखते-देखते सबेर हो गया। कहीं नौकर-चाकर न देख लें, इस डरसे अपने कमरेमें भाग आई। आपकी उस मूर्तिको फिर भूल ही न सकी मुखर्जी साहब, आँखें मींचते ही मुझे दिखाई देने लगती है।"

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"देखा था क्या मुझे पूजा करते हुए?"

वन्दनाने कहा—"पूजा करते हुए तो आपकी माँको भी देखा है, पर वह यह नहीं। यह अलग चीज है। आप किसका ध्यान करते हैं मुखर्जी साहब?"

विप्रदासने हँसते हुए जवाब दिया—"यह जानकर तुम क्या करोगी? तुम तो करोगी नहीं।"

"नहीं करूँगी तो नहीं, फिर भी जाननेकी इच्छा होती है।"

विप्रदास चुप रहे। वन्दना कहने लगी—"मुझे उस दिन पहले-पहल यह मालूम हुआ कि सबके बीच रहते हुए भी आप अलग हैं, अकेले हैं। जहाँपर आपका साथी बना जा सकता है वहाँ उतनी ऊँचाईपर ये लोग कोई भी नहीं चढ़ सकते। और एक बात पूछूँगी मुखर्जी साहब बतायेंगे?"

"कौन-सी बात वन्दना?"

"नारीके प्रेमकी भी शायद आपको जरूरत नहीं है न?"

"इस प्रश्नके मानी ?"

"मानी नहीं जानती, ऐसे ही पूछती हूँ। इसकी शायद अब आप कामना नहीं करते,—आपकी दृष्टिमें अब यह चीज बहुत ही तुच्छ हो गई है।—सच है या नहीं, बताइए ?"

विप्रदासने जवाब नहीं दिया, सिर्फ मुसकराते हुए उसकी ओर देखते रहे।

इतनेमें नीचेके आँगनमें सहसा गाड़ीकी आवाज सुनाई दी, और, द्विजदास-का कण्ठस्वर सुनाई दिया। दूसरे ही क्षण दरवाजेके पास आकर बसन्तने कहा —"द्विजू आ गया विपिन।"

"अकेला ही है क्या ? या और भी कोई साथ है ?"

"नहीं अकेला ही दीख पड़ता है। और कोई नहीं है।"

सुनकर वन्दना चंचल हो उठी, बोली—'जाती हूँ मुखर्जी साहब, देखूँ उनके लिए खाने-पीनेका इन्तजाम ठीक है या नहीं।' और वह उठके चली गई।

* * *

सवेरे द्विजदासने आकर जब विप्रदासके पाँव छूकर प्रणाम किया, वन्दना उस कमरेके एक कोनेमें पूजाकी तैयारी कर रही थी। द्विजदासने कहा—"इसी पंचमीके दिन भी माँ वासन्तीको प्रतिष्ठा करना रही हैं। बड़ा-भारी समारोह है भाई साहब।"

"माँका समारोह तो बड़ा-भारी ही हुआ करता है द्विजू। इसमें चिन्ताकी क्या बात है ?"—कहकर विप्रदास हँस दिया।

द्विजदासने कहा—"सो तो है ही। अबकी बार संयोग मिल गया है बापके आरोग्य होनेका मंगल-पूजाका—उसे भी एक तरहका अश्वमेध-यज्ञ ही समझिए। अध्यापक-पण्डितोंकी विदाईकी फेहरिस्त तैयार हो रही है,—कुटुम्बी सज्जन और अतिथि-अभ्यागतोंकी जो लम्बी सूची माँजीके मुँहसे सुनी है उससे आशंका हो रही है कि अबकी बार आपके धनपर ये लोग अब गहरा डाका मारेंगे। समय रहते सावधान हो जाइए।"

वन्दनाने मुँह नहीं उठाया पर हँसीको सँभाल न सकनेसे हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई। विप्रदास जमींदार और दुनियवी आदमी हैं, कंजूस हैं—सिवा एक मौके इस बदनामीके प्रचार करनेका मौका मिल जाय तो कोई रिआयत नहीं करता। विप्रदास भी इस हँसीमें शामिल होते हुए बोले—

"लेकिन अब तेरी पारी है। अबकी बार सब तेरा होगा।"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं अगर मेरे पास कुछ हो। लेकिन तब व्यवस्थामें कुछ रद्दोबदल करना होगा। विदाई जिन लोगोंको दी जायगी वह 'टोलों'[1] या पाठशालाओंका पण्डित समाज न होगा, बल्कि 'टोलों' का दरवाजा बन्द करके जिन्हें बाहर ढकेल रखा गया है—वे होंगे।"

विप्रदासने पूर्ववत् हँसते हुए कहा—"टोलों"पर तेरी इतनी नाराजगी क्यों है? लोगोंके मुँहसे उनकी सिर्फ निन्दा-ही निन्दा सुन ली है, खुद तो कभी उन्हें आँखोंसे देखा नहीं तूने। उन लोगोंके दलमें-शामिल होनेसे शायद मुझे भी तेरे शासनमें आनेको न मिलेगा।"

द्विजदासने पास आकर और एक बार पाँव छुए, और कहा—"यह बात मत कहिए। आप दोनों दलोंसे बाहरके हैं, और तीसरा स्थान कौन-सा है सो मुझे मालूम नहीं। मैंने तो सिर्फ इतना जान रखा है कि मेरे भाई-साहब हम लोगोंकी विचारधाराके बाहरके हैं।"

विप्रदासने उसकी बातको दबा दिया। पूछा—"मेरी बीमारीकी बात माँको तो नहीं मालूम हुई?"

"नहीं। पर मालूम हो जाता तो अच्छा होता, शायद उनकी प्रतिज्ञा कमसे कम स्थगित हो जाती।"

"नाते-रिश्तेदारोंको बुलानेका इन्तजाम हो गया?"

"हो रहा है, भूत, भविष्य, वर्तमान सभी रिश्तेदारोंको बुलानेका। सकन्या अक्षय बाबूके लिए भी आमंत्रण पत्र भेजा गया है। माँकी धारणा है कि इस विराट् आयोजनमें मेरी ही अग्नि परीक्षा हो जायगी। मेरे ऊपर भार पड़ा है उन लोगोंको यहाँसे ले आनेका।"

"माँने और किसीको लिवा ले आनेको नहीं कहा?"

"हाँ, अनु-दीदीको भी ले आना होगा। कालेजके लड़कोंमेंसे अगर कोई चलना चाहें तो वे भी चल सकते हैं।"

"तेरी भाभीकी कोई फरमाइश नहीं है?"

"नहीं।"

---

१. प्राचीन बंगालकी संस्कृत-पाठशालाओंको बंगालमें 'टोल' कहते हैं। इनमें भिन्न जातिके छात्रोंके लिए स्थान नहीं होता।

नीचे फिर मोटरकी आवाज सुनाई दी। हॉर्नकी परिचित आवाज कानमें पड़ते ही वन्दनाने खिड़कीसे झाँककर कहा—"मौसीजीकी गाड़ी है। मैं देखूँ जाकर। आप सन्ध्या-पूजा कर लीजिए—देर हो रही है।"—कहकर वह नीचे चली गई।

"मैं भी जाऊँ, हाथ-मुँह धोऊँ जाकर, घण्टे-भर बाद आऊँगा।"—कहकर द्विजदास भी चला गया।

विप्रदासकी सन्ध्या-पूजा समाप्त हुई। आज फल-मूल वगैरह दे गए अन्नदा। मौसीके घरसे जो आदमी वन्दनाको लेने आई है, वन्दना उसीके साथ व्यस्त है—यह खबर अन्नदाने ही दी।

द्विजदास यथासमय वापस आ गया। हाथमें उसके एक लम्बी चौड़ी फेहरिस्त है, उसकी सारी चीज कलकत्तेसे खरीदकर गाड़ी भरके चालान करना है। दोनों भाई जब कि उस फेहरिस्तको लेकर व्यस्त थे, तब दरवाजेके पाससे सामने आई—"मुनशी साहब, भीतर आ सकती हूँ क्या? पैरोंमें लेकिन जूते हैं।"

"जूते? तो पहने रहो, आओ।"

वन्दना कमरेके भीतर आ गई। जिस वेशमें उसे पहले-पहल बलरामपुरमें देखा था, वही वेश था। विप्रदासने आपन्न आश्चर्यके साथ पूछा—"कहीं जा रही हो क्या?"

"हाँ, मौसीके घर।"

"कब लौटोगी?"

"मौसीजीकी बात तो नहीं मालूम मुनशी साहब।" इतना कहकर उसने झुकके प्रणाम किया, किन्तु और दिनकी तरह पाँव नहीं छुए और बगैर मुँह उठाये माथेसे हाथ लगाकर द्विजदासको भी नमस्कार किया, उसके बाद वह कमरेसे बाहर निकल गई।

× × ×

२०

द्विजदासने पूछा—"वन्दना अचानक कैसे चली गई? क्या मेरा आ जाना इसका कारण है?"

विप्रदासने कहा—"नहीं। उसके पिताने तार भेजा है कि जबतक बम्बई नहीं आती तबतक मौसीके घर आकर रहे।"

"पर अचानक मौसी कहाँसे आ गई? वन्दनाने मेरे साथ तो लगभग बात ही नहीं की, जबसे आया हूँ तबसे अलग-अलग ही रही, उसके बाद सवेरा होते-न-होते चल दी। एक नमस्कार जरूर कर गई, लेकिन वह भी मुँह फेरकर। मेरे विरुद्ध हो क्या गया उसे?"

विप्रदासने प्रश्नको टाल दिया और मौसीकी बात संक्षेपमें सुनाकर कहा—"मेरी बीमारीसे डरकर बहू-दीदी उसे मौसीके घरसे ही लिवा लाई थीं—मेरी तीमारदारीके लिए। काफी सेवा-शुश्रूषा की उसने। उसके प्रति तुम लोगोंको कृतज्ञ होना चाहिए।"

द्विजदासने कहा—"नहीं चाहिए, यह मैं नहीं कहता, पर आपकी सेवा करनेका मौका मिलना भी तो एक सौभाग्यकी बात है। इस मूल्यको अगर वह भी महसूस कर सकी हो तो कृतज्ञता उसपर हम लोगोंकी बनी रही।"

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"तू बड़ा नराधम है।"

द्विजदासने कहा—"नराधम हूँ पर निर्बोध नहीं। मेरी बात जाने दीजिए। पर इस सेवा करनेकी बात माँके कानोंतक पहुँच गई तो वह हमेशाके लिए हमारी माँको ही खरीद लेगी। यह क्या कुछ कम समस्या है?"

सुनकर विप्रदास हँस दिए, बोले—"माँको इतने दिनोंके बाद तू पहचान गया मालूम होता है?"

द्विजदासने कहा—"अगर पहचान गया होऊँ तो इस बातको सिर्फ आप ही मन रखिए। मैं माँका कुपुत्र हूँ, कुलांगार हूँ—उनके यहाँ यही परिचय रहने दीजिए। इसे अब डिगानेकी जरूरत नहीं भाई साहब।"

"अगर कभी मैं तुमपर विश्वास कर सकूँ, तुझे अच्छा समझने लगूँ—पर क्या तू सचमुच ही नहीं चाहता? इस अभिमानसे लाभ क्या हो सो बता?"

"लाभ क्या है सो नहीं जानता, पर लोभ विशेष नहीं है। मुझे आपका स्नेह मिला है, भाभीका प्यार मिला है, यही मेरे लिए सात राजाओंका धन है, सात-जन्ममें दोनों हाथोंसे लौटकर भी इसे खतम नहीं कर सकूँगा।"—यह कहते-कहते ही उसका चेहरा मारे शरमके सुर्ख हो उठा। इसपर इन आवेग-

उच्छ्वासोंको प्रकट करनेमें वह हमेशासे ही पराङ्मुख रहा है,—हमेशा निस्पृहताके आवरणसे अपनेको ढकके रखना ही उसकी प्रकृति है,—एक क्षणमें अपनेको सँभालकर हुआ बोला—"पर इस तरहकी आलोचना करना फिजूल है। जिस बातकी जरूरत है वह यह है कि मेरी दृष्टिमें वन्दनाका इस तरह चला जाना उसकी नाराजगी ही मालूम होती है। इसके मानी बता दीजिए।"

"मानो शायद नहीं है कि तू अब आ पहुँचा तो फिर उसकी यहाँ जरूरत नहीं रही। अबसे सेवा-शुश्रूषाका भार तेरे ऊपर है।"—इतना कहकर विप्रदास हँसने लगे।

द्विजदासने कहा—"आप मजाक कर रहे हैं, लेकिन मैं सच कहता हूँ कि वे सब अंग्रेजी-नवीस लड़कियाँ इसी जन्ममें एक दिन मर मिटेंगी। आपकी सेवा करनेका दिन कभी न आये, पर आ जानेपर यह प्रमाणित होनेमें देर न लगेगी कि भाई-साहबकी सेवा करनेमें हिम्मत हार देना दस-दस वन्दनाओंके भी बूतेके बाहरकी बात है। यह बात उससे कह दीजिएगा।"

स्नेह-हास्यसे विप्रदासका चेहरा प्रदीप्त हो उठा, बोले—"अच्छा कह दूँगा; पर वह विश्वास करेगी या नहीं सो नहीं मालूम। लेकिन, परीक्षाकी जरूरत मेरे लिए नहीं है—है सिर्फ एकके लिए और वे हैं माँ। तुम दोनोंमें समझौता हो जाना चाहिए, समझा न?"

द्विजदासने कहा—"नहीं भाई साहब नहीं समझा। लेकिन माँ जब हैं तब अगर जिन्दा रहा, तो एक दिन समझौता हो ही जायगा पर अभी जरूरत क्यों आ पड़ी, यह समझमें नहीं आ रहा है।"—कहकर कुछ देर चुप रहा, फिर कहने लगा—"मेरी तकदीरमें सभी-कुछ उलटा है। पिताजीने जन्म दिया, पर वे दे नहीं गये एक कानीकौड़ीकी सम्पत्ति,—सो दी आपने। माँने गर्भमें धारण किया, पर पाल-पोसकर बड़ा किया अन्नदा-दीदीने, और आदमीका छप मार उठाकर आदमी बनाया मामीने,—दोनोंने ही अपने पल्लेसे आकर सब-कुछ किया। पिता स्वर्ग पिता धर्म आर 'स्वर्गादपि गरीयसी'—ये श्लोक पढ़-पढ़कर मनको मन कहाँतक धोगा मनाते रहूँ, भाई साहब, आप ही बताइए?"

विप्रदासने कहा—"माँके मामलेको लेकर अब वकालत नहीं करूँगा, पर तू अपने आप ही किसी दिन समझ जायगा, पर पिताजीके संबंधमें जो धारणा

ली है—यह गलत है। आधी सम्पत्तिका सचमुच ही तू मालिक है।"

द्विजदासने कहा—"हो सकता है सच, पर पिताजीके मरनेके बाद, कमरेका दरवाजा बन्द करके उनका 'वसीयतनामा' क्या आपने नहीं फाड़ डाला?"

"किसने कहा तुमसे?"

"बचपनसे जो मेरी सब तरहसे रक्षा करती आई हैं उन्हींके मुँहसे सुना है यह।"

"सो हो सकता है, पर तेरी माँजीने तो वह वसीयतनामा पढ़ा नहीं। ऐसा भी तो हो सकता है कि पिताजी तुमको ही सब दे गये हों और इसीलिए गुस्सेमें आकर मैंने उसे फाड़ दिया हो। यह भी तो असंभव नहीं?"

सुनकर द्विजदासको हँसीसे पहले तो वह खूब हँस लिया, फिर बोला—"भाई साहब, आप तो कभी झूठ नहीं बोलते। द्वापरमें युधिष्ठिरके झूठको नोट कर गये हैं वेदव्यास, और कलियुगमें आपके झूठको नोट कर रखेगा यह द्विजदास। दोनों ही समान होंगे। खैर, कुछ भी हो, इतना समझ लिया कि कलयुगके हिसाबमें यह अनेक सब-कुछ सम्भव हो सकता है। अब और ज्यादा पाप न बढ़ाऊँगा, बताइए अबसे मुझे क्या-क्या करना होगा?"

"हम लोगोंका कारोबार और जमींदारीका काम सब-कुछ तुझे ही देखना भालना पड़ेगा।"

"मगर क्यों? किसलिए इतना भार मैं ढोऊँ, मुझे समझा दीजिए। क्या अकेले आपसे सम्हाले नहीं सम्हलता? असंभव बात है। मैं निकम्मा आवारा हुआ जा रहा हूँ इसलिए? नहीं, सो बात नहीं, फिर भी माँ पूछें तो उनसे कह दीजियेगा कि आपलोगोंको मेरी जरूरत नहीं, मैं नालायक रहकर ही दिन काट दूँगा, उन्हें सोच-फिकर करनेकी जरूरत नहीं। आपके गढ़े हुए रुपये-पैसों और जमीन-जायदादका बोझ मैं नहीं ढोऊँगा। अन्तमें क्या मैं भी आप ही जैसा घोरतर सम्पत्तिशाली दुनियावी हो जाऊँ? लोग कहेंगे, इसकी शिराओंमें खून नहीं बहता, बहता है रुपयोंका स्रोत।"—परन्तु कहते-कहते ही उसने देखा कि विप्रदास अन्यमनस्क होकर न जाने क्या सोच रहे हैं, उसकी बातोंपर उनका ध्यान ही नहीं। साधारणतः ऐसा नहीं होता,—विप्रदासका ऐसा स्वभाव नहीं। इसलिए उसे कुछ आश्चर्य हुआ बोला—"भाई साहब, सचमुच ही क्या आप चाहते हैं कि मैं काम-धन्धा देखा करूँ, उस स्वदेश-सेवाको जलाञ्जलि

देकर वह मेरा हमेशाका स्वप्न है।"

विप्रदासने उसके चेहरेकी ओर गौरसे देखते हुए कहा—"असम्भव है रे, ऐसी बात तो तुमसे कभी नहीं कही द्विजू। जो तेरा स्वप्न है वह बना रहे,—हमेशा बना रहे, फिर भी मैं कहता हूँ कि घर-गृहस्थीका भार तू ले ले।"

"पर क्यों, सो तो बताइए। कारण बगैर जाने मैं हर्गिज यह बात नहीं माननेका।"

विप्रदास एक क्षण मौन रहकर बोले—"इसका कारण तो बहुत ही स्पष्ट है द्विजू। आज मैं हूँ पर ऐसा भी तो हो सकता है कि मैं न रहूँ।"

द्विजदास जोर देकर कह उठा—"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। आप न हों—कहीं भी न हों यह मैं सोच ही नहीं सकता।"

उसके विश्वासकी प्रबलताने विप्रदासको चोट पहुँचाई परन्तु उन्होंने हँसते हुए कहा—"संसारमें सब कुछ हो सकता है रे, यहाँतक कि असम्भव भी। इस बातको सोचते हुए जो लोग डरते हैं वे अपनेको धोखा देते हैं। और ऐसा भी तो हो सकता है कि मैं थक गया होऊँ, मुझे छुट्टीकी जरूरत हो—तो भी छुट्टी न देगा तू?"

"नहीं भाई साहब न दे सकूँगा। इससे तो बहुत आसान होगा आपका आदेश पालन करना। बताइए, कबसे मुझे क्या करना होगा?"

"आजसे इस घरका सारा भार तुझे लेना पड़ेगा।"

"आजसे ही। इतनी जल्दी! अच्छी बात है, यही सही। आपकी हुक्म-उदूली न करूँगा।"—यह कहकर वह चला गया, पर भाईके ये शब्द सुनता गया—"ऐसे कहनेकी जरूरत नहीं है रे, मैं जानता हूँ कि मेरी आज्ञा भंग करनेवाला तू नहीं है।"

× × ×

द्विजदासने काम करना शुरू कर दिया। वह आलसी है, अकर्मण्य है, उदासीन है यही उसकी हमेशाकी शिकायत थी; पर अपने भाई-साहबके आदेशसे माँके व्रत-प्रतिष्ठानुष्ठानके सम्पूर्ण आयोजनका सारा भार जब अकेले उसीपर आ पड़ा तब अपनी उस बदनामीको अप्रमाणित करनेमें उसे ज्यादा समय न लगा। इस तरहका अनभ्यस्त भारी कार्यभार वह इतनी आसानीसे उठा लेगा, इतनी आशा विप्रदासको न थी; उसकी आलस्यहीन शृंखलाबद्ध कार्यपटुताको

देखकर वे एकबारगी आश्चर्यचकित हो गये। जो कुछ खरीदके भेजना था उसे गाड़ीमें रखवाकर उसने देख भेज दिया जो कुछ साथ ले जानेका था वह साथ ले जानेके लिए रख छोड़ा, आत्मीय कुटुम्बी जनोंको इकट्ठा करके यथायोग्य आदर-सत्कारके साथ उन्हें भी रवाना कर दिया। यहाँका सारा काम पूरा करके आज घर जानेके दिन वह माँ-साहबसे आखिरी उपदेश ग्रहण करनेके लिए उनके कमरेमें गया तो देखा कि वहाँ वन्दना बैठी है। उस दिनसे वह यहाँ नहीं आई थी। काम-काजकी भीड़में उसकी बात द्विजदास भूल ही गया था। आज अचानक उसे देखकर मन ही-मन उसे आश्चर्य हुआ परन्तु उस भावको प्रकट न करके, उसने सिर्फ एक मामूली नमस्कार शिष्टाचार करके विप्रदाससे बोला—"भाई साहब, आज रातकी गाड़ीसे मैं घर जा रहा हूँ, साथ जा रहे हैं अक्षय बाबू, उनकी स्त्री और पुत्री मैत्रेयी। आपके कालेजके लड़के शायद कल-परसोंतक आयेंगे, उन लोगोंको मैं किराया दे चला हूं। अनु-दीदीको क्या आप ही अपने साथ लाइएगा? पर तीन-चार दिनसे ज्यादा दिन न लगाइए।"

"मुझे क्या जाना ही पड़ेगा?"

"हाँ। न जानेका विचार हो तो एक जोड़ी खड़ाऊँ खरीद दीजिए, ले जाकर भरतकी तरह सिंहासनपर रख दूँगा।"

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"बानियोंका सिरताज हो गया तू तो। पर आश्चर्य होता है अक्षय बाबूकी बात सुनके। वे कैसे जायेंगे? उम्र तो पुत्री नहीं मिले—नौकर-दासियों हो आयगी अब?"

द्विजदासने कहा—"सो तो आयगी; पर नुकसान नहीं होगा,—उधर उससे भी बहुत बड़ा काम हो जायगा वह घरमें लड़की पढ़ानेका। मैत्रेयी जैसी मितव्ययके लिए बहुत मतलबकी चीज है,—कालेजमें बँधी हुई धनल्याल बहुत बड़ी बात है।"

विप्रदासने नाराज होकर कहा—"तेरी बात जैसी कच्ची होती है वैसी ही कच्चा। किसी आदमीका सम्मान रखते हुए बात करना तू जानता ही नहीं।"

द्विजदासने कहा—"जानता हूँ या नहीं, सो भाभीसे पूछ देखिए। सम्मानका लिहाज भर नहीं करता, सिर्फ यही मुझमें दोष है।"

सुनकर विप्रदाससे गंभीर रहा न गया, बोले—"तेरी एक ही गंवार है,

मत मानो। जैसे शराबीका गवाह कलवार।"

द्विजदासने कहा—"सो होने दो, पर आपकी भी बात बहुत साफ-सीधी नहीं मालूम हो रही है भाई साहब। कारण, न तो मैं शराबी हूँ और न ये शराब दवाई करती हैं। देती हैं अमृत; और देती हैं छिपे-छिपे बहुतोंको भय, जो बहुतेरे बड़े आदमी भी नहीं दे सकते।"

विप्रदासने कहा—"उन्हें दे सकनेकी जरूरत भी नहीं। लाड़ देकर देवरको जानवर बना डालनेके अलावा बड़े आदमियोंको और भी काम हैं।"

बन्दना मुँह नीचा किये हुए हँसने लगी। द्विजदासने उसे ताड़ते हुए कहा—"इस विषयको लेकर अब बहस नहीं करूँगा भाई साहब। आपके कोई भाभी नहीं है—भाभीयोंकी घर गृहस्थीमें उनका स्नेह क्या चीज है सो आपको कभी मालूम नहीं हो सकता। अच्छेको छिपा दिखानेकी कोशिश करना निष्फल है।' —फिर क्या हँसके कहा — 'बन्दना मुँह छिपाके हँस रही है, पर भौजीके घरके वास्ते कुछ दिन हमारे घर बिता आतीं तो शायद मेरी बात समझ जातीं। पर जाने दो इन सब बातोंको। आप कब घर आ रहे हैं सो बताइए।'"

'मैं बहुत थका हुआ हूँ द्विजू, माँको समझाकर कह नहीं सकेगा क्या?"

विप्रदासका ऐसा निर्जीव निस्पृह कण्ठस्वर उसने कभी नहीं सुना, वह चौंक पड़ा, देखा कि क्षीण हँसी अभीतक ओठोंपर लगी हुई है—पर वह मानो उसके भाईसाहबकी नहीं, और किसीकी है। विस्मय और व्यथासे वह अभिभूत हो गया, बोला—"आपकी तबीयत क्या अभीतक अच्छी नहीं हुई भाई-साहब?"

नहीं, अच्छी तो हो गई।"

'तो फिर माँको कैसे समझाऊँगा कि आप घर नहीं आ सकेंगे? डरकर कहीं वे यहीं चली आएँ तो उनकी सारी तैयारियाँ नष्ट-भ्रष्ट हो जायँगी।"

विप्रदासने क्षण-भर सोचा, फिर कहा—"तू मुझे कब आनेके लिए कहता है?"

द्विजदासने कहा—'आज, कल, परसों,—जब हो। मुझे आज्ञा दीजिए, मैं खुद आकर ले जाऊँगा।'

विप्रदास कुछ देर चुपचाप मुसकराते रहे फिर बोले—"अच्छी बात है, नहीं। मैं खुद ही आ जाऊँगा, तेरे आनेकी जरूरत नहीं।"

द्विजदासके चले जानेपर बन्दनाने पूछा—"यह क्या हुआ मुखर्जी साहब,

घर जानेमें आपत्ति क्यों की ?"

विप्रदासने कहा—"कारण तो तुम अपने कानोंसे ही सुन चुकी हो ।"

"सुना तो सही, पर वह जवाब तो दूसरोंके लिए है, मेरे लिए नहीं । बताइए, क्यों आप घर नहीं जाना चाहते ? आपको कहना ही पड़ेगा ।"

"मैं थका हुआ हूँ ।"

"नहीं ।"

"नहीं क्यों ? थकनेका हक सभीका होता है, नहीं है तो सिर्फ मेरा ?"

"आपका भी है, लेकिन वह सचमुचका होता तो सबसे पहले समझ जाती मैं । और सबकी दृष्टिको आप धोखा दे सकते हैं, किन्तु मेरी दृष्टिको नहीं दे सकते । जाते वक्त बौदीको मैं चिट्ठी लिखती जाऊँगी कि आपकी बीमारी समझनेकी अगर कभी जरूरत हो, तो वे मुझे बुला लिया करें ।"

"तुम्हारी बौदी खुद बीमारी नहीं पहचान सकेंगी, और तुम उन्हें पहचनवा दोगी ।—यह बात सुनकर वे खुश न होंगी ।"

वन्दनाने कहा—'खुश भले ही न हों पर कृतज्ञ जरूर होंगी । मेरी बौदी ठहरीं उस युगकी भाग्यवती थीं, उन्हें पतिको ढूँढ़ना-चुनना नहीं पड़ा, भगवान्‌ने आशीर्वादकी भाँति उनकी अंजुलि भर दी थी । उसी खास एक आदमीके साथ ही उनका कारोबार चल रहा है । पर उस आदमीका भी किसी दिन हृदय टूट सकता है, यह वे कैसे जान सकती हैं ?'

विप्रदास मुँहसे कुछ जवाब न देकर सिर्फ हँस दिए ।

वन्दनाने कहा—'आप हँसे कैसे ?"

विप्रदासने कहा—"हँसी अपने आप ही आ जाती है वन्दना । पति ढूँढ़ने चुननेके अभियानमें आजतक तुमने जिन मार्गोंका पता है उनके बाहर भी कुछ है—यह तुम लोग सोच ही नहीं सकतीं । व्यवहारके साधारण नियमोंको सिर्फ मानती हो तुम लोग, उनके व्यतिक्रमको नहीं मानना चाहतीं । पर मजा यह कि इस व्यतिक्रमके अन्दर ही छिपा हुआ है धर्म, छिपा हुआ है पुण्य, काव्य साहित्य, अविचलित श्रद्धा और विश्वास, सब कुछ । इसके न रहनेसे तो दुनिया बिल्कुल मरुभूमि हो जाती । इन सबको तुम आवश्यक नहीं मानतीं ।"

वन्दनाने क्षोभके स्वरमें कहा—"व्यतिक्रम शायद आप खुद हैं मुखर्जी महाशय ! मगर उस दिन तो आपने कहा था कि मुझे भी आप प्यार करते हैं ।"

"सो आज भी करता हूँ, परन्तु प्यारका सिर्फ एक ही रास्ता तुम लोगोंको दिखाई देता है, और सब रास्ते बन्द दिखते हैं, इसीसे उस दिनकी मेरी बातें तुम समझ नहीं सकी हो। एक बार देख आओ द्विज और उसकी मामीको। यदि जल्दी न होगी तो देख सकोगी कि किस तरह श्रद्धा आकर मिली है प्यारके साथ। दुःख-सम्पदमें, आमोद-आह्लादमें स्नेह-प्यारमें, निविड़ घनिष्ठतामें वह सिर्फ उसकी मामी ही नहीं है, वह उसकी मित्र है, वह उसकी माँ है। यही सम्बन्ध तो तुम्हारा हमारा भी है—ठीक उसी तरह ही क्यों नहीं मुझे ग्रहण कर सकी वन्दना!"

उसके कण्ठ-स्वरमें था गहरा स्नेह और उसके साथ मिला हुआ था तिरस्कारका सुर। वन्दनाको उसने बड़ी गहरी चोट पहुँचाई। वह कुछ देर सिर झुकाये चुप बैठी रही फिर सहसा आँख उठाकर बोली—"आपको मैंने गलत समझा था मुखर्जी साहब। मेरी दीदीको अगर आप सचमुच ही प्यार करते होते तो मुझे कोई दुःख न था किन्तु आप तो उन्हें प्यार नहीं करते। आप पालन करते हैं सिर्फ धर्म। सिर्फ कर्तव्यको मानकर चलते हैं। कठिन है आपकी प्रकृति—जो किसीको प्यार करना नहीं जानती। चाहे कितना भी छिपाके इसलिए यह सब एक-न-एक दिन प्रकट होना ही था।"

क्षण-भर सिर झुकाकर फिर कहने लगी—"आज मेरी भी गलती दूर हो गई। आज मुझे आप यही आशीर्वाद दीजिए कि मैं अब इसमें आदमी हँसने न आऊँ।"

विप्रदासने हँसते हुए हाथ ऊँचा करके कहा—'दिया तुम्हें आशीर्वाद। आजसे आदमी हँसनेका काम तुम्हारा समाप्त हो जाय और जो तुम्हारा सिर नवाना है उसे वे ही ग्रहण करें।'

विप्रदासकी बातको अपमानजनक परिहास समझकर वन्दना नाराज हो गई, बोली—"आप गलती कर रहे हैं मुखर्जी साहब आदमी ढूँढते फिरना मेरा पेशा नहीं है। वे कोई और ही होंगी। परन्तु अचानक आज क्यों आपके पास आई थी सो आपसे कह ही न पाई। एक दिनमें सचमुच ही मेरी एक बड़ी भारी गलती दूर हो गई। यहाँ आप लोगोंके ढंगमें सोचा था कि यह सब शायद सचमुच ही अच्छा होगा, छूआछूतका नियम मानके चलना, धूप चन्दन लगाना, पूजाका आयोजन करना,—और भी न जाने क्या

था—समझा था कि यह सब शायद सचमुच ही मनुष्यको पवित्र बनाता है किन्तु अबकी बार मौसीके घर जानेपर यह भ्रम भी दूर हो गया। कुछ दिनों तक कैसा पागलपन किया था मैंने तुम्हें याद है! मानो सचमुच ही उन बातों पर मेरा विश्वास हो मानो हमारी शिक्षामें संस्कारोंमें सचमुच ही कहीं इससे कोई प्रभेद न हो!"—इतना कहकर वह अचानक हँसने लगी।

उसने सोचा था कि उसकी इन बातोंसे विप्रदासको बड़ी गहरी चोट पहुँचेगी किन्तु देखा कि जरा भी नहीं पहुँची। उसकी उस हँसीमें शामिल होते हुए विप्रदासने कहा—"मैं जानता था बन्दना। तुम्हें क्या याद नहीं कि मैंने सावधान करते हुए एक दिन तुमसे कहा था कि यह सब तुम्हारे लिए नहीं है, तुम मत करो यह-सब। यह भ्रम तुम्हारा दूर हो गया, यह जानकर मुझे खुशी हुई। तुमने शायद सोचा होगा कि तुम्हारी यह बात सुनकर मुझे बड़ा कष्ट होगा, मगर वह बात नहीं। जिसके लिए जो स्वाभाविक नहीं है उसे वह न करे तो मैं दुःखी नहीं होता। तुम्हें तो याद है कि जब तुमने पूछा कि मैं किसका ध्यान करता हूँ, तो मैं चुप रह गया था। कहनेमें कोई बाधा हो सो बात नहीं, पर व्यर्थ था कहना। पर अभी इन सब बातोंको रहने दो। तुम्हारा बम्बई जानेका क्या कोई दिन तय हो गया?"

मारे अभिमानके बन्दनाका चेहरा सुर्ख हो उठा, विप्रदासकी बातके जवाबमें उसने सिर्फ कहा—"नहीं।"

"उस दिन तुम अपनी मौसीके मकानमें ब्याहकी बात कर रही थीं। कहती थीं लड़का तुम्हें अच्छा ही लगा है। इन कई दिनोंमें उसके विषयमें क्या और कुछ जान सकी हो?"

"नहीं।"

"तुम लोगोंका अगर प्यार हो, तो मैं आशीर्वाद दूँगा, पर मौसीकी जल्दबाजीमें कुछ कर न बैठना। उनको ठीकसे जरा जाँच परखना।"

बन्दनाकी आँखोंमें आँसू आ गये, पर मुँह नीचा किये हुए उसने मनको सँभाल लिया, कहा—"अच्छा।"

विप्रदासने कहा—"मैं परसों घर जाऊँगा। दो-तीन दिनसे ज्यादा वहाँ रह न सकूँगा। मेरे वापस आनेतक अगर कलकत्तेमें रहो, तो एक बार आना यहाँ।"

बन्दना मुँह नीचे किये हुए ही सिर हिलाकर उसने कुछ जवाब तो दिया,

पर उसका अर्थ स्पष्ट समझनेमें नहीं आया ।

विप्रदासने कहा—"सुन लिया न, मेरी छुट्टी मंजूर हो गई है, अबसे सारा भार द्विजूपर रहेगा । घर-गृहस्थीके घानीमें बापूजीने मुझे बचपनसे ही जोत दिया था, कभी फुरसत नहीं पाई थी कहीं जानेको । आज मालूम हो रहा है जैसे खुली हवामें साँस लेकर जी उठूँगा ।"

अबकी बार वन्दनाने मुँह उठाकर पूछा—"सचमुच ही साँस लेनेकी ऐसी जरूरत आ पड़ी है मुखर्जी साहब ? सचमुच ही क्या आज आप इतने थके हुए हैं ?"

विप्रदासने इस प्रश्नके उत्तरसे अपनेको बचाते हुए कहा—"हाँ, एक बात तो तुम्हें बताई ही नहीं वन्दना, मेरी बीमारीमें तुम्हारी सेवाका उल्लेख करके मैंने द्विजूसे कहा था कि तुम लोगोंको वन्दनाका कृतज्ञ होना चाहिए । उससे अच्छी भी सेवा तुममेंसे कोई न कर सकता । द्विजूने कृतज्ञता स्वीकार करते हुए भी तुमसे कह देनेके लिए कहा है कि अगर फिर कभी ऐसा समय आ जाय, तो अपने भाईकी सेवामें उसके आगे दस-दस वन्दनाएँ भी हार मानेंगी ।"

वन्दनाने कहा—"उनसे भी कह दीजिएगा कि मुझे यह शर्त मंजूर है । मगर मौकेका दिन अगर कभी आ जाय तो उनके दर्शन मिलने चाहिए ।"

सुनकर विप्रदासने मुसकराते हुए कहा—"दर्शन मिलेंगे वन्दना, वह पीठ दिखानेवाला आदमी नहीं है । उसे तुम पहचानती नहीं ।"

"पहचानती हूँ मुखर्जी साहब । यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि आपके लिए उनकी प्रतियोगिता करना सचमुच ही वन्दनाके बूतेके बाहरकी बात है ।"

स्नेहगर्वसे विप्रदासका चेहरा प्रसन्न हो उठा, उसने कहा—"जानती हो वन्दना द्विजू मेरा बाहु-युगल है ।"

"आपसे भी ज्यादा क्या ?"

"हाँ, मुझसे भी ज्यादा ।"—इतना कहकर विप्रदासने क्षण-भर इधर उधर करके कहा—"पर वह कह रहा था कि तुम शायद उसपर नाराज हो । तुम उससे बोलीं क्यों नहीं ?"

"बोलनेकी जरूरत नहीं पड़ी थी मुखर्जी साहब ।"

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"सब तो देख रहा हूँ तुम सचमुच ही नाराज हो । पर एक बात आज तुमसे कहता हूँ वन्दना, द्विजूका व्यवहार भला होता

है, उसकी बातचीत भी हमेशा खूब मुलायम नहीं होती, पर उसके इस कर्कश आवरणको हटाकर अगर कभी उसके वास्तविक दर्शन पा जाओ, तो देखोगी कि ऐसा मधुर आदमी भी तुम्हें आसानीसे ढूँढ़े न मिलेगा।"

वन्दना दूसरी तरफ देखती रही, कोई जवाब नहीं दिया। इसके बाद अकस्मात् उठ खड़ी हुई और बोली—"गाड़ी बहुत देरसे खड़ी है मुखर्जी साहब, —मैं जा रही हूँ। अगर रह सकी तो, आपके वापस आनेपर मिलूँगी। और अगर नहीं रह सकी तो यही मेरा आखिरी नमस्कार है।"—इतना कहकर उसने झुकके विमलदासके पाँव छुए और हाथ माथेसे लगाकर तेजीसे बाहर चल दी। विमलदासको कोई बात कहनेका अवसर नहीं दिया।

× × ×

वन्दनाने बरामदा पार करके जीनेके पास आकर आश्चर्यके साथ देखा कि हिमराज हाथ-जोड़े खड़ा है।

वन्दना हँस पड़ी बोली—"यह क्या बात है?"

"एक प्रार्थना है। भाई साहबको साथ लेकर एक बार आपको हमारे देहातके घर चलना पड़ेगा।"

"मुझे साथ ले जाना पड़ेगा, इसकी वजह?"

हिमराजने कहा—"यही कहनेके लिए खड़ा हुआ हूँ। एक दिन बिना आह्वानके ही आपने हमारे घर पदार्पण किया था, आज फिर वही दया आपको करनी होगी।"

वन्दना क्षण-भर चुपके सोचती रही, फिर बोली—"मगर मुझे निमंत्रण दे कौन रहा है? माँ, भाई साहब या आप खुद?"

"मैं खुद ही दे रहा हूँ।"

"मगर आप तो उस घरमें 'तृतीय पुरुष' हैं, आपको इसका अधिकार क्या है?"

हिमराजने कहा—"और कोई अधिकार हो या न हो, जीनेका अधिकार जरूर है। उसी अधिकारसे मैं प्रार्थना-पत्र पेश कर रहा हूँ। कहिए, मंजूर किया? अत्यन्त आवश्यक हुए बगैर मैं कोई भी प्रार्थना किसीके आगे पेश नहीं करता।"

वन्दना बहुत देरतक दूसरी ओर देखती रही, फिर बोली—"अच्छा, जा

ही सही, मार्डेनमी मैं पर मेरे मान-अपमानकी जुम्मेवारी सब आपपर रहेगी ।"

द्विजदासने कृतज्ञतापूर्ण स्वरमें कहा—"मेरी शक्ति बहुत ही मामूली है, फिर भी ली मैंने यह जुम्मेवारी ।"

बन्दनाने कहा—"आपत्ति-कालमें यह बात भूल न जाइएगा ।"

"नहीं, नहीं भूलूँगा ।"

× × ×

२१

बहुत दिन बाद विप्रदास नीचेके ऑफिस-रूममें आकर बैठे हैं । सामने टेबिलपर कागजोंका ढेर है—कितने दिनोंका काम बाकी है, कोई ठीक है ! शरीर क्लान्त है, पर डाक्टरके मनोंसे छोड़ रखना भी ठीक नहीं । एक लालभाकी जिल्ददार बही उठाकर वे देख रहे थे, इतनेमें बाहरसे मोटरका हार्न सुनाई दिया; और उसके थोड़ी देर बाद ही पूरबके खुले हुए दरवाजेसे बन्दनाने प्रवेश किया । आज वह अकेली नहीं थी, उसके साथ एक अपरिचित युवक भी था । पहनावेमें धोती-कुरता, पाँवोंमें फूलदार कलकी चट्टी और कंधेसे लेकर घुटनेतक एक सफेद मोटी चादर लिपटे ढंगसे पड़ी हुई है । उमर तीससे कम, देहकी गठन और भी कुछ दीर्घता लिये-हुए होती तो उसे सुपुरुष कहा जा सकता था । विप्रदास अभ्यर्थना करनेकी गरजसे कुरसी छोड़कर उठ खड़े हुए ।

बन्दनाने कहा—"मुखर्जी साहब, ये हैं मिस्टर चाकी बार-एट्-लॉ । पर यहाँ अशोक बाबू कहनेसे भी ये कोई आपत्ति न कर सकेंगे—इस शर्तपर आपसे परिचय करानेको राजी करके इन्हें आज लाई हूँ । आत्मपरिचय तो होता रहेगा, पर उसके पहले मैं अपना कर्तव्य पूरा कर दूँ ।"—कहते हुए उसने पास आकर झुकके विप्रदासको प्रणाम किया, और कहा—"पाँवकी धूल लेकिन इनके सामने न ले सकी इसलिए कि कहीं ये ऐसा न समझ बैठें कि इनके समाजका वंचक हूँ मैं । पर इसके मानी यह नहीं कि आप ऐसा समझ ले कि यह नया कायदा मौसीके यहाँका सीखा हुआ है । उसके बाद फिर आपकी प्रसन्नताकी गहराईका माप मुझे मालूम है न !"

विप्रदासने कहा—"अपनी मौसीजीके सामने इसी तरह मेरा गुण-गान

किया करती हो क्या ?"—फिर अशोककी तरफ देखकर कहा—"वन्दनाके मुँहसे आपकी बात इतनी ज्यादा सुन चुका हूँ कि बीमार न होता तो खुद ही आपसे मिलता। देखते ही ऐसा लगा जैसे चेहरा आपका परिचित हो, बहुत बार देखा हुआ हो। अच्छा ही हुआ जो व्यर्थमें देर न करके ये साथ ही साथ ले आईं आपको।"

प्रत्युत्तरमें अशोक कुछ कहना ही चाहता था कि उसके पहले ही वन्दना शासनकी शैलीसे तर्जनी उठाकर बोल उठी—"मुखर्जी साहब, आप अत्युक्ति और अतिशयोक्तिको लाँघकर लगभग असत्यके कोठेमें आ चुके हैं,—अब रुक जाइए, नहीं तो दंगा शुरू कर दूँगी।"

"इसके मानी ?"

"इसके मानी यह कि हम अति-साधारण लोगोंकी तरह आप भी सब झूठ या मनमें आये बनाकर कह सकते हैं। आप तनिक भी असाधारण व्यक्ति नहीं हैं,—ठीक हम ही लोगोंके समान साधारण मनुष्य हैं।"

विप्रदासने कहा—"नहीं। सबको पूछ देखो, वे सब एक स्वरसे गवाही देंगे कि तुम्हारा अनुमान अमूलक है, असत्य है।"

वन्दनाने कहा—"अबकी बार उन्हीं लोगोंके पास ले जाकर आपके इस सिंह-चर्मको दोनों हाथोंसे फाड़-फूड़कर अलग कर दूँगी। तब असल मूर्ति उन लोगोंको दीख पड़ेगी,—उनका भ्रम दूर हो जायगा। फिर वे मुझे आशीर्वाद देते हुए कहेंगे—तुम राज-रानी होओ।"

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"आशीर्वादमें मुझे कोई आपत्ति नहीं, यहाँ तक कि मैं खुद भी देनेको तैयार हूँ, मगर आशीर्वाद तो तुम लोग चाहती नहीं, कह देती हो—कुसंस्कार है यह, विज्ञानकी बात है, रूढ़ि है।"

वन्दनाने सिर उसकी उठाकर कहा—"फिर चुटकी लेनेकी कोशिश ? कौन कहता है कि बड़ोंका आशीर्वाद हम नहीं चाहतीं—किसने कहा है यह कुसंस्कार है ? लेकिन अब सचमुच गुस्सा आ रहा है मुझको महाशय।"

विप्रदासने गम्भीर होकर कहा—"सचमुच ही गुस्सा आ रहा है क्या ? तो रहने दो इन गड़बड़ीकी बातोंको। पर यह तो बताओ कि—अचानक सबेरे ही कैसे आविर्भाव हुआ ? कोई काम है क्या मुझसे ?"

वन्दनाने कहा—"बहुत। पहला काम है आपसे कैफियत तलब करना।

क्यों आपने बिना मेरी इजाजतके पीछे आकर काम शुरू किया ?"

"किया नहीं अभी, करनेका संकल्प-मात्र कर रहा था। ये रहा काम।"—कहते हुए विप्रदासने मोटी बहीको अलग सरका दिया।

वन्दनाने प्रसन्न होकर कहा—"कैफियत Salt factory (सन्तोष जनक) है। अवाध्यता (आज्ञा न मानना) माफ की गई। भविष्यमें इसी तरह अनुगामी बने रहनेसे मेरा काम चल जायगा। अब सुनिए मन लगाकर—तब तक इनके पास बैठके गपशप कीजिए—मुखर्जियोंके ऐश्वर्यका विवरण, प्रजा शासनकी अनेक रोमांचकारी कहानियाँ—जो सुनी जावें। मैं ऊपर जा रही हूँ, अनु-दीदीको लेकर सब तैयारियाँ करने। कल सवेरेकी गाड़ीसे हम लोग बलराम-पुर रवाना होंगे, दिन ही-दिनमें पहुँच जायँगे, ठंड लगनेका डर नहीं रहेगा। मिस्टर चाउड्रीकी इच्छा है कि वे भी साथ चलें—वह परगना वह उनका भाग वह किला-कलाप और दीघी पुष्करिणी आदि कभी आँखोंसे देखा-भाला नहीं—और इसके भी कहेंगे—"

विप्रदासने पूछा—"तुमने खूब अवश्य ही बहुत देखा होगा—"

वन्दनाने कहा—"यह प्रश्न सम्पूर्णरूपसे अप्रासंगिक और भद्र-रुचिकी सीमाके बहिर्गत है। इन्होंने नहीं देखा, पर बात हो रही थी। खुशी है, इन्हें अनुमति दे दी गई है कि साथ चल सकते हैं। इससे इतने वे खुश हुए हैं कि उसके बाद मुझे बम्बईतक पहुँचा आनेको राजी हो गये हैं।"

विप्रदासने चेहरा अत्यन्त गम्भीर बनाकर कहा—"कहती क्या हो! इतना ज्यादा त्याग-स्वीकार हमारे समाजमें नहीं देखनेमें आता, यह सिर्फ तुम्हारे ही यहाँ पाया जा सकता है। सुनकर आश्चर्य हो रहा है!"

वन्दनाने कहा—"आश्चर्यकी बात ही है। मन-हर भी है और लोगोंको जलाने ईर्ष्या भी है।"—कहके वह अपनी निगाहोंसे बिजलीकी एक झलक चारों ओर बिखेरती हुई ऊपर जा रही थी कि विप्रदासने पुकारकर कहा—"यह तो 'कथामाला'के उस कुत्तेकी-सी कहानी है जो भूसेपर पहरा दे रहा था। न तो खुद खाता था और न बैलोंको ही पाससे मुँह मारने देता था। आदमी जीये कैसे, बताओ भला!"

वन्दना दरवाजेके पास ठिठकके खड़ी हो गई और कृत्रिम रोषसे भौंहें सिकोड़कर बोली—"बिलकुल हमारे जैसे साधारण आदमी हैं आप,—जरा भी

फर्क नहीं। लोग व्यर्थ ही डर कर भगते हैं।"

'तुम जाकर अबकी उनका डर दूर कर आना।"

"इसीसे तो जा रही हूँ। और, भूमाके साथ उपमा देनेकी दुर्बुद्धिका बदला लेके छोड़ूँगी"—इतना कहकर वह तीक्ष्ण कटाक्षके साथ फिर बिजली-सी चमकाती हुई तेजीसे अदृश्य हो गई।

× × ×

विप्रदासने कहा—"मिस्टर—"

अशोकने विनयके साथ बाधा देते हुए कहा—"नहीं नहीं, सो नहीं होगा। इसे निकाल देनेमें कोई बाधा न हो, इसीलिए तो धोती-चादर और चट्टी पहनके आया हूं विप्रदास बाबू। और वन्दना दीदीने भी भरोसा दिया है कि—"

विप्रदासने मन-ही-मन खुश होकर कहा—"अच्छा ही हुआ अशोक बाबू, सम्बोधन जरा आसान हो गया। गँवई-गाँवका आदमी ठहरा, न तो याद ही रहता है और न अभ्यास ही है। अब आसानीके साथ बातचीत कर सकूँगा। जैसा कि सुना, आप हमारे गाँव जाना चाहते हैं, सचमुच ही अगर जायें तो मैं कृतार्थ होऊँगा। हमारे घरकी बड़ी-बूढ़ी स्वामिनी मेरी माँ हैं, उनकी तरफसे मैं आपको सादर निमन्त्रण देता हूं।"

विप्रदासके विनय-वचनसे अशोक पुलकित हो उठा, बोला—"जरूर आऊँगा। जरूर आऊँगा। कितने दरिद्र अनाथ आतुर आयेंगे निमन्त्रित होकर, कितने अध्यापक-पण्डित उपस्थित होंगे बिदाई लेने—आनन्द उत्सव, खाना-पीना, गाना-बजाना, कितना विचित्र आयोजन—"

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"यह सब बढ़ाई हुई बातें हैं अशोक बाबू, वन्दना सिर्फ मजाक कर रही है।"

"मजाक करनेसे उन्हें फायदा क्या विप्रदास बाबू?"

"एक फायदा है मुझे शर्मिन्दा करना। बलरामपुरके मुखर्जी-घरानेसे वह मन-ही-मन नाखुश है। दूसरा काम है आपको यह किसी बहानेसे बम्बई घसीट ले जाना चाहती है।"

अशोकने कहा—"अवश्य पहुँचनेपर बम्बईतक मुझे साथ जाना होगा, यह बात तो हुई है पर मुखर्जी-घरानेसे ये नाखुश हैं, आप लोगोंको शर्मिन्दा करना चाहती हैं—यह नहीं हो सकता। कलतक बलरामपुर जानेका तय नहीं हुआ

उनकी निजी प्रसन्नताकी अपेक्षा मुझे बहुत ज्यादा जरूरत है आपकी प्रसन्नता की। वह जिस दिन मिल जायगी उस दिन मेरे लिए न मिलनेवाला कुछ न रह जायगा।"

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"मेरी प्रसन्न दृष्टि वह पतिका निर्वाचन करेगी,—यह अद्भुत इशारा आपको किसने दिया?—वन्दनाने कुछ? अगर दिया हो तो उसने महज मजाक किया है, मैं सिर्फ इतना ही आपसे कह सकता हूँ अशोक बाबू।"

"नहीं, मजाक नहीं, वह सच है।"

"किसने कहा?"

अशोक क्षण-भर चुप रहकर बोला—"वह सब मुँहसे कहनेकी चीज नहीं विप्रदास बाबू। उस दिन दोपहर बाद अचानक मेरे कमरेमें आईं—ऐसा वे कभी नहीं करतीं—एक कुरसी खींचकर बैठ गईं और मुझसे बोलीं—'मुझे बम्बई पहुँचा देना होगा।' मैंने कहा—जब हुक्म दें तभी तैयार हूँ।' उन्होंने कहा—'अभी जा रही हूँ बलरामपुर, लौट आनेपर आपसे कहूँगी।' मैंने कहा—'जाइएगा, पर मोतीको आपने क्यों खामख्वाह नाराज कर दिया? उन लोगोंके पूजा-पाठ, होम-यज्ञ, देवी-देवताओंपर तो वास्तवमें आपका विश्वास नहीं है!' फिर भी उन्होंने यही कहा—विश्वास करने लगूँ तो भी जाऊँ।' मैंने पूछा—'ऐसा क्यों कहती हैं?' उन्होंने कहा—झूठ नहीं कहती अशोक बाबू, उन लोगोंकी तरह सच्चे विश्वासके साथ अगर मैं उन बातोंको ग्रहण कर सकूँ तो धन्य हो जाऊँ। मुखर्जी साहबकी बीमारीमें मैंने उनकी सेवा की थी, उनसे किसी दिन मैं विश्वासका वर माँग लूँगी।' इसके बाद शुरू हो गईं आपकी बातें। इतनी श्रद्धा भी कोई किसीपर करता है, किसीकी शुभ-कामनामें कोई इस कदर इतना मग्न रह सकता है, इसके पहले मैंने इसकी कल्पना भी न की थी। बातों-ही-बातोंमें उन्होंने एक दिनकी एक घटनाका उल्लेख किया। जब आप बीमार थे, आपकी संध्या पूजाकी तैयारी वे ही किया करती थीं। उस दिन अबेर हो गई थी जल्दी-जल्दी आनेमें पाँवसे कोई चीज छू गई। जितना ही उन्होंने अपनेको समझाना चाहा कि ऐसी कोई बात नहीं, इससे पूजामें कोई बाधा नहीं आ सकती उतना ही उनका मन समझानेसे इनकार करने लगा कि कहीं किसी भी रास्ते आपके काममें त्रुटि न हो जाय। इसलिए दुबारा नहाकर

फिर आपकी पूजाकी तैयारियाँ कीं। आपने लेकिन उस दिन नाराज होकर कह दिया था कि 'वन्दना, सुबह अगर तुम न जग सको तो अन्नदा-दीदीसे पूजाकी तैयारियाँ करवा देना।' याद है आपको विप्रदास बाबू?"

विप्रदासने सिर हिलाकर कहा—"है।"

अशोक कहने लगा—"इसी तरह कितने ही दिनोंकी कितनी ही छोटी-छोटी बातें करते-करते उस दिन बहुत रात हो गई, अन्तमें उन्होंने कहा—मौसीने उन लोगोंके कुसंस्कारकी बात कहके मुझकी की, —मैंने खुद भी एक दिन ऐसा किया था,—पर आज कौन-सा अच्छा है और कौन-सा बुरा, इसके समझनेमें उलझन हो जाती है। खाने-पीनेका विचार तो कभी किया नहीं, आजन्मका विश्वास है कि इसमें दोष नहीं, पर अब झिझक-सी आती है। बुद्धिकी ओरसे लज्जा पाती हूँ, लोगोंसे छिपाना चाहती हूँ पर जब कभी मनमें खयाल आता है कि यह सब उन्हें पसन्द नहीं तभी मन मानो उस तरफसे मुँह फेर बैठता है।"

सुनते-सुनते विप्रदासका चेहरा फीका पड़ गया, उन्होंने जबरदस्ती हँसनेकी कोशिश करते हुए कहा—"वन्दनाने क्या अब खाने-पीनेमें छुआछूतका विचार करना शुरू कर दिया है? पर उस दिन तो वह यहाँ आकर हमसे साफ कह गई थी कि मौसीके घर आकर उसने अपने स्वभाव और अपनी स्वाभाविक बुद्धिको पुनः प्राप्त कर लिया है और मुखर्जी-परिवारकी हजारों तरहकी कृत्रिमता से छुटकारा पाकर बच गई है।"

अशोक आश्चर्यके साथ कुछ कहना ही चाहता था कि इतनेमें विघ्न उपस्थित हो गया। परदा हटाकर वन्दना वहाँ आ पहुँची। उसने कहा—"मुखर्जी साहब, सब कुछ ठीक करके रख आती हूँ। कल सबेरे नौ बजेकी गाड़ीसे चलना है। पूजा-ऊजा वाहियात काम सब उसके पहले ही कर डालिएगा। इतनी विडम्बना भी भगवान्ने आपकी तकदीरमें लिख दी है!"

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"ऐसा ही हो शायद!"

"शायद नहीं, निश्चय। सोचा करती हूँ क्या कोई आपकी इन सब बातों को मिटा सकता। अच्छा सुनिए—कल सबेरेके लिए खाने-पीनेकी व्यवस्था भी कर दी है,—मैं खुद आकर खिलाऊँगी, फिर कपड़े वगैरह पहनाऊँगी, उसके बाद आपको अपने साथ ले जाकर घर पहुँचा दूँगी। कमजोर रोगी आदमी ठहरे, इसीसे।—चलिए अशोक बाबू, अब हम लोग चलें। पैदलकी

भूल लेकिन माफ न करूँगी मुन्शी साहब,—यह कुसंस्कार है। मेरे समाजमें न पढ़नेवाला थोड़ा सिखा है।"—इतना कहकर वह हँस दी और दोनों हाथोंको माथेसे लगाकर कमरेसे बाहर निकल गई।

× × ×

२२

दूसरे दिन सबेरे ही सब-कोई बलरामपुरके लिए रवाना हो गये। वहाँ मकानके पास पहुँचनेपर देखा गया कि द्विजदासने मानो राजसूय-यज्ञ सरीखी धूमधाम कर रखी है। सामनेवाले मैदानमें झोपड़ियोंकी कतार खड़ी है,—कुछ बन चुकी हैं, कुछ बन रही हैं;—इसी बीचमें आहूत और अनाहूतोंसे घर भर उठा है और अभी कितने लोग और आयेंगे उसका पता लगाना कठिन है।

विप्रदासको देखते ही माँ चौंक गईं, बोलीं—"यह क्या शरीर हो गया है बेटा! बिल्कुल आधा रह गया!"

विप्रदासने माँके पाँव छूकर सिरसे हाथ लगाते हुए कहा—"अब कोई डर नहीं माँ, अबकी तन्दुरुस्त होनेमें देर न लगेगी।'

"पर अब कलकत्ता मैं नहीं जाने दूँगी तुझे, कितना भी क्यों न हो। अबसे मैं अपनी आँखोंके सामने रखूँगी।"

विप्रदास चुप रहकर मुसकराता था।

वन्दनाके प्रणाम करनेपर दयामयीने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा—"आओ बेटी, आओ—जीती रहो।"

परन्तु उनके कण्ठस्वरमें उत्साह नहीं था, समझमें आ गया कि यह सिर्फ शिष्टाचार है, उससे ज्यादा नहीं। उसे आनेके लिए निमन्त्रण नहीं दिया गया, वह अपनी इच्छासे आई है,—माँको सिर्फ इतना ही मालूम हुआ। उन्होंने मैत्रेयीकी बात छेड़ी। उस लड़कीके गुणोंकी सीमा नहीं, दयामयीको दुःख इस बातका है कि एक मुखसे उनकी सूची रचकर शामिल करना सम्भव नहीं हो सकता। बोलीं—"बापने सिखाया न हो ऐसा कोई विषय ही बाकी नहीं। ऐसा कोई काम नहीं जो वह न जानती हो। बहूकी तबीयत भी अच्छी नहीं चल रही है—इसीसे उस अकेलीने ही मानो सारा भार सिरपर लाद लिया है। भाग्यसे

उसे पूरा किया था, नहीं तो क्या होता, सोचते भी डर लगता है।"

विप्रदासने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"कहती क्या हो माँ!"

दयामयीने कहा—"सच्ची बात है बेटा। लड़केका काम धन्धा देखकर मालूम होता है कि तेरे बाप जो बोझ मेरे ऊपर छोड़कर चले गये हैं उसके लिए अब कोई फिकरकी बात नहीं रह गई। बहूको ऐसी देवरानी मिल जाय तो वह सारा भार मजेमें उठा सकेगी, कहीं भी कोई कोर कसर नहीं रहेगी। इस साल तो अब हो न सकेगा अगर जीती रही तो अगले साल निश्चिन्त होकर कैलास-दर्शनको जा सकूँगी।"

विप्रदास चुप रहे। दयामयीकी बात संभव है कि झूठ न हो, हो सकता है कि मैत्रेयी ऐसी ही प्रशंसाके योग्य हो, किन्तु फिर भी प्रयोगपनकी एक सीमा होती है, स्थान-काल भी देखा जाता है। उनका लक्ष्य चाहे कुछ भी हो, पर उल्लास भी छिपा न रहा। एक तरहकी अकारण असहिष्णु क्षुब्धताने उनकी सुपरिचित मर्यादाको मानो लांछित कर दिया। सहसा लड़केके मुँहकी ओर देखकर दयामयी अपनी इस भूलको तो समझ गईं, पर कैसे इसका प्रतिकार किया जाय,—यह उनकी समझमें न आया। द्विजदास कामकी भीड़में अन्यत्र लिप्त हुआ था, खबर पाते ही वहाँ आ पहुँचा।

विप्रदासने कहा—"बहुत भारी काम छेड़ दिया है तूने, सँभालेगा कैसे?"

द्विजदासने कहा—"भार तो आपने कुछ अपने ऊपर नहीं लिया भाई साहब, मुझपर दिया है। आपको क्या डर है?"

वन्दनाने इसका जवाब दिया, कहा—"इन्हें तो इस बातकी चिन्ता है कि एस्टेटका तमाम रुपया अगर प्रजासे वसूल न हुआ तो मूल-धनमें हाथ लगाना पड़ेगा। क्या यह डरकी बात नहीं द्विजू बाबू?"

सबके सब हँस पड़े, और इस हँसीके भीतरसे मौका मनोमालिन्य मानो कुछ घट गया, दयामयीने प्रसन्न मुखसे कृत्रिम रोषके स्वरमें कहा—"इस फरमान करनेमें तुम भी क्या ठीक अपनी बहन जैसी हो गई वन्दना? विपिन मेरा परम धार्मिक लड़का है, सब मिलकर छुआछूतकी चुटकियाँ लिया करती हो, तो मुझसे नहीं सहा जाता।"

वन्दनाने कहा—"छुआछूतकी चुटकियाँ लड़का नहीं करती माँ, उनसे नाराज भी न होना चाहिए।"

माँने कहा—"नाराज तो वह होता ही नहीं, हँस देता है।"

कल्पनाने कहा—"इसकी भी एक वजह है माँ। मुखर्जी साहब जानते हैं
कि पेट भरे तो पीनेकी चाह भी जाती है, नाराज-नाराज होना मूर्खता है। ठीक
है न मुखर्जी साहब?"

विश्वासने हँसते हुए कहा—"क्यों नहीं। मूर्खकी बातपर नाराज होना
निषिद्ध है, शास्त्रोंमें उसकी अलग व्यवस्था है।"

कल्पनाने कहा—"सोची लेकिन मुझसे भी ज्यादा मूर्ख हैं मुखर्जी साहब।
अगर आपके धर्मकी इसी व्यवस्थाके कारण सब आपकी इतनी अवज्ञा करते
हैं।"—इतना कहकर उसने हँसते हुए मुँह फेर लिया। विश्वास हँसी रोकनेके
लिए दूसरी ओर देखने लगा और दयामयी खुद ही हँस दीं, बोलीं—"कल्पना
बड़ी दुष्ट लड़की है, इसके साथ बातोंमें कोई नहीं जीत सकता।"

कुछ देर ठहरकर जरा गम्भीर होकर फिर कहने लगीं—"मगर देखो बेटी,
मुसलमानोंके जमानेमें प्रजापर ऐसा कहर न ढाया हो तो मैं नहीं कहती, पर तुमसे
तो मैं कह चुकी हूँ कि विपिन मेरा परम धार्मिक लड़का है—जो अन्याय है,
जिसपर उसका बचाव हक नहीं, उसे वह किसी भी हालतमें नहीं ले सकता।
पर डर है मुझे किससे वह ले सकता है।"

विश्वासने प्रतिवाद करते हुए कहा—"यह तुम्हारी बेजा बात है माँ।
हिन्दू प्रजाको कष्ट दिया! प्रजाका पक्ष लेकर उसने हमारे ही विरुद्ध एक बार
उन लोगोंको स्वत्वानुसारी देनेकी मनाही कर दी थी तो क्या तुम्हें याद नहीं?"

माँने कहा—"याद है, इसीलिए तो कह रही हूँ। जो न्यायका कर्ज देनेकी
मनाही कर सकता है, वह अन्यायका वसूल भी कर सकता है लेकिन, दूसरा
नहीं कर सकता। दया-माया उसके है—और कुछ ज्यादा ही है, यह मैं मानती
हूँ—मगर फिर भी तू देखेगा किसी दिन कि उसीके हाथसे प्रजा ज्यादा दुःख
पा रही है।"

"नहीं माँ, नहीं पायेगी, देख लेना।"

दयामयीने कहा—"भरोसेकी बात सिर्फ इतनी ही है कि तू है। नहीं तो
उसके लिए किसी ऐसेकी जरूरत है जो उसे ठीक रास्तेपर चला ले जा सके।
नहीं तो वह किसी दिन खुद भी डूबेगा और दूसरोंको भी डुबायेगा।"

विश्वास अबतक चुप था, अब उसने बात की, बोला—"तुम्हारी

आखिरी बात ठीक नहीं हुई माँ। खुद डूबूँगा, यह बात शायद किसी दिन सच हो सकती है, पर दूसरोंको न डुबाऊँगा, इतना तुम निश्चय जान लो।"

माँने कहा—'इनमेंसे एक भी सुननेकी बात नहीं द्विजू, एक भी आनन्दकी बात नहीं। असलमें तुझे बचानेवाला कोई-न-कोई होना ही चाहिए।"

द्विजदासने कहा—"यही बात साफ-साफ कहो जिससे सबकी चिन्ता दूर हो। मुझे बचानेवाला कोई एक चाहिए ही, यह ठीक है, पर इसका उपाय भी तो तुम लगभग कर चुकी हो।"

माने कहा—"अगर सचमुच ही कर चुकी होऊँ तो तू अपना भाग्य समझ।'

तर्क-वितर्कका मूल तात्पर्य अब सबके सामने स्पष्ट-सा हो पड़ा।

मा कहने लगीं—'इतना बड़ा यज्ञ ठान कर आखिर मैंने, किसीकी बात सुनी? कह दिया—भाई-साहबका हुक्म है। पर भाई-साहबने क्या यह कह दिया था कि अश्वमेध-यज्ञ कर डाल? अब सँभालेगा कौन इसे, बता? भाग्यसे मैत्रेयी आ गई है, उसीका थोड़ा-बहुत भरोसा है।"

द्विजदासने कहा—"काम पहले पूरा हो जाने दो माँ, उसके बाद जिसे चाहो सनद लिखके दे देना, मैं जरा भी आपत्ति न करूँगा। अभीसे उसकी जल्दी क्या है?"

वन्दनाने पूछा—"उस सनदपर दस्तखत कौन करेगा द्विजू बाबू, तृतीय-पुरुष तो नहीं?"

द्विजदासने कहा—"नहीं, तृतीय पुरुषकी क्या मजाल है? आजतक सदा पराक्रान्त प्रथम और द्वितीय पुरुष क्योंकि अभी तो विद्यमान हैं।"—कहते-कहते दोनों हँस पड़े।

विप्रदास और उसकी माँ परस्पर एक-दूसरेका मुँह देखने लगे, उनकी कुछ समझमें न आया।

इतनेमें अन्नदाने आकर कहा—"बीबी-रानी, बड़े बाबूकी दवाएँ कल जिनमें सँभालकर रक्खी थीं वह कागजका बक्स तो नहीं मिल रहा है,—खो-सा तो नहीं गया?"

वन्दनाने कहा—"नहीं, खोया नहीं, कलकत्तेके मकानमें ही रह गया है।"

दयामयी डर-सी गईं, बोलीं—'अब क्या होगा वन्दना, वहाँ भारी

हो गई यह तो !"

वन्दनाने कहा—"गलती नहीं हुई माँ, जाते वक्त उसे जान-बूझकर ही छोड़ आई हूँ।"

"जान-बूझकर छोड़ आई ! इसके मानी !"

"सोचा कि बहुत पी चुके हैं, अब रहने दो। तब माँ पास नहीं थी इसीसे दवाओंकी जरूरत पड़ी थी, अब बगैर दवाके ही अच्छे हो जायेंगे, अब भी देर न लगेगी।"

उसके ये शब्द दयामयीको बहुत ही अच्छे लगे फिर भी उन्होंने कहा—"लेकिन अच्छा नहीं किया बेटी, गँवई-गाँव ठहरा यह, डाक्टर-वैद्य कैसे यहाँ मिलते नहीं, जरूरत पड़ गई तो—"

अन्नदा बीचहीमें बोल उठी—"अब जरूरत नहीं पड़ेगी माँ। पड़ती तो ये उन्हें हर्गिज न छोड़ आतीं। वन्दना-बीबी डाक्टर-वैद्योंसे भी ज्यादा जानती हैं।"

दयामयी प्रशंसापूर्ण दृष्टिसे चुपचाप वन्दनाकी ओर देखती रहीं। वन्दनाने कहा—"अन्नदा-दीदीका बढ़ा-चढ़ाकर कहनेका स्वभाव है माँ, नहीं तो हर बातमें मैं कुछ नहीं जानती। जो कुछ थोड़ा-सा सीखा है, वो मुझली दादाकी सेवा करते हुए।"

अन्नदाने कहा—"वह कैसी सेवा थी माँ सो सिर्फ मैं ही जानती हूँ। ऊपर अचानक एक दिन मैं ऐसी आफतमें पड़ गई कि कुछ कहनेकी नहीं। बाबू आया यहाँ, कोई था नहीं,—बाबूकी बीमारीका तार पाकर दिद्दू तो चले गये थे ढाका, विपिनको बड़ा बुखार। शुरू दो दिन तो किसी तरह कट गये, डाक्टर बुलवाये, उन लोगोंने दवा दी, पर डर दिखा गये चौगुना। मैं मूरख औरतकी जात क्या करूँ कुछ समझमें ही न आया। तुम लोगोंको भी खबर नहीं दे सकती थी, विपिनने मना कर दिया सख्त,—आखिर व्याकुल होकर दौड़ी गई वन्दना-बीबीके पास इनकी मौसीके घर। रोकर कहा—बीबी-बाई, नागाकी लड़की, भैयाको चलो मेरे साथ। तुम्हारे मुझली साहब बहुत बीमार हैं। ये जैसे बैठी थीं वैसे ही उठकर चली आईं हमारे यहाँ, मौसीसे कहने-सुननेका भी वक्त न मिला इन्हें। घर आकर विपिनका सारा भार इन्होंने उठा लिया। दिन रातमें एक पलभर भी उन दिनों ये आराम नहीं कर सकीं। सिर्फ दवा पिलाना ही तो नहीं था,—सवेरे सन्ध्या-पूजाकी तैयारी लेकर रातको

मझहरी डालकर सुला आनेतक जो-कुछ काम था, सब ये ही करती थीं। अब वे अगर दवा नहीं देना चाहतीं माँ, तो रहने दो, विपिन ऐसे ही भला-चंगा हो उठेगा।"

विप्रदासने उसी वक्त इस बातका समर्थन करते हुए गंभीरतापूर्वक कहा—"सचमुच स्वस्थ हो उठूँगा माँ, तुम लोग अब वन्दनाके काममें बाधा न डालो, इसके सुबुद्धि हो और मुझे दवा पिलाना बन्द कर दे। मैं मन-वचन-कायसे आशीर्वाद दूँगा—वन्दना राज-रानी होवे।"

दयामयी चुपचाप देखती रहीं। उनकी दोनों आँखोंसे मानो स्नेह और ममता छलकी पड़ती थी।

एक महरीने आकर कहा—"माँ, बहूरानी पूछ रही हैं, कलकत्तेसे जो अभी चीज़-वस्त आई है वह किस कमरेमें रखी जायगी?"

दयामयीके जवाब देनेके पहले ही वन्दना बोल उठी—"माँ, मैं आपकी म्लेच्छ-लड़की हूँ तो क्या आपके इतने बड़े-काममेंसे मुझे कोई भी भार नहीं मिलेगा, सिर्फ चुपचाप बैठी रहूँगी? ऐसी भी तो बहुत-सी चीज़ें हैं जिनके छूने छानेसे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं?"

दयामयीने हाथ पकड़कर उसे बिलकुल छातीसे लगा लिया, और आँचलसे चाभियोंका एक गुच्छा खोलकर उसके हाथमें थमाते हुए कहा—"चुपचाप तुम्हें बैठी रहने क्यों दूँगी बेटी? यह ली तुम्हें अपने भण्डारकी चाभी जिसे सिवा बहूके मैं और किसीको नहीं दे सकती। आजसे इसका भार तुम्हीपर रहा।"

"क्या है माँ, इस भण्डारमें?"

चाभियोंका यह गुच्छा अत्यन्त परिचित है। द्विजदासने तिरछी आँखोंसे उसे देखते हुए कहा—"जो कुछ है सब छुआछूतकी हदके बाहरकी चीज़ें हैं—सोना-चाँदी, रुपये-पैसे, रेशमी कपड़,—जिन्हें बड़े-बड़े धार्मिक व्यक्ति भी सिरपर लादनेमें आपत्ति नहीं करेंगे—तुम्हारे छू देनेपर भी।"

वन्दनाने पूछा—"क्या करना होगा माँ मुझे?"

दयामयी कहने लगीं—"अध्यापक-पण्डितोंकी विदाई, अतिथि-अभ्यागतों की सम्मान-रक्षा, आत्मीय-स्वजनोंके खर्चेका इन्तजाम, और साथ-साथ इस लड़केपर कड़ा शासन—यही काम है।"

उन्होंने द्विजदासकी तरफ इशारा किया और फिर कहा—"मैं

समझती इससे मुझे ठग-ठगाकर यह इतना रुपया फ़जूल खर्च कर रहा है कि जिसकी हद नहीं देती। इस फ़जूल-खर्चीको तुम्हें बन्द करना पड़ेगा।"

द्विजदासने कहा—"भाई साहबके सामने तुम ऐसी बातें मत करो माँ। नहीं तो वे सच ही मान लेंगे। सबके खातेमें बाकायदा खर्चका हिसाब लिखा जा रहा है, बिना देखनेसे ही सब मालूम हो जायगा।"

दयामयीने कहा—"लिखा क्या रहूँ? खर्चका हिसाब लिखा जा रहा है सो तो मानती हूँ, पर फ़जूल-खर्चका हिसाब कौन लिख रहा है सो बता? मैं यही बात वन्दनासे कह रही थी।"

वन्दनाने कहा—"मैं जानकर ही क्या करूँगी माँ? उनके रुपये, वे ही खर्च करें तो मैं कैसे रोक सकती हूँ?"

दयामयीने कहा—"सो मैं नहीं जानती। तुमने भार लेना चाहा था, मैं भार देकर निश्चिन्त हुई। पर एक बात कहती हूँ वन्दना, तुम्हें भी किसी-न-किसी दिन घर-गृहस्थी करनी पड़ेगी, तब अगर फ़जूल-खर्च बचानेकी जुम्मेवारी तुम्हारे हाथ आ पड़ी तो फिर नाहीं करनेसे छुटकारा नहीं मिलेगा।"

वन्दनाने द्विजदासकी तरफ देखकर कहा—"सुन लिया न माँका हुक्म?"

द्विजदासने कहा—'सुना क्यों नहीं। पर भाई साहबने मुझे दिया है खर्च करनेका भार, और माँने तुम्हें दिया है खर्च न करनेका भार। विरोध जब शुरू होगा ही, तब मुझे दोष देनेसे काम न चलेगा।'

वन्दनाने सिर हिलाते और मुसकराते हुए कहा—"दोष देनेकी जरूरत न पड़ेगी द्विजू बाबू, झगड़ा हम लोगोंमें नहीं होनेका। आपके ही रुपयोंके बारेमें बाप-बेटीमें मॉक-फाइट (नकली लड़ाई) शुरू करनेका बचपन मेरा चला गया है। बंबईमें जाकर यह शिक्षा मुझे मिल चुकी है। झगड़ा होनेके पहले माँका दिया हुआ भार चोर हाथ ही लौटाकर खिसक जाऊँगी।"

दयामयी ठीक न समझ सकनेपर भी समझ गईं कि यह अभिमान स्वाभाविक है। व्यथित कंठसे कहने लगीं—"भार मैं वापस नहीं लेनेकी बेटी, तुम्हींको ढोना पड़ेगा। पर अब यहाँ नहीं, भीतर चलो; तुम्हारा काम तुम्हें समझा दूँ।"—इतना कहकर वे उसे हाथ पकड़कर भीतर ले गईं।

उस दिन वन्दना इस घरमें कुछ पल ही रही थी। यहाँ क्या है, देखने-भालनेका मौका नहीं मिला था। आज उसने देखा कि मकानके भीतर सामने

नार रोज आते-जाते हैं कोई अन्त ही नहीं। आश्रित आत्मीय जनोंकी संख्या भी कम नहीं; बहू बेटियों और नाती-पोतोंको लेकर प्रत्येकको अलग अलग रहती है। बाहरकी तरफ है कचहरी और उससे सम्बन्धित सब तरहकी व्यवस्था परन्तु भीतरकी तरफ इस हिस्सेमें है ठाकुरद्वारा, रसोईघर, दयामयीकी विधवा गौ शाला, ऊँची चहारदीवारीवाला बगीचा और उसके बीच तालाब। दुमंजिलेकी पूरबकी तरफके कमरे दयामयीके हैं, उन्हींमेंसे एकके सामने ले आकर उन्होंने वन्दनासे कहा—"बेटी, यह कमरा तुम्हारा है, इसका सारा भार तुमपर छोड़ती हूँ।"

उधरके बरामदेमें बैठी सती और मैत्रेयी कुछ चीजें बड़े ध्यानसे देख-भाल रही थीं, दयामयीकी आवाज सुनकर इधर देख उठीं, और वन्दनाको देखते ही दोनों काम छोड़कर उसके पास आकर खड़ी हो गईं। वन्दना सचमुच ही आयेगी, यह आशा किसीको न थी। सतीके पाँव छूकर वन्दनाने मैत्रेयीको नमस्कार किया। माँने कहा—"मेरी यह म्लेच्छ लड़की भी किसी कामका भार लेना चाहती है बहू, चुपचाप बैठी रहनेसे नाराज है। तुम लोगोंको बहुत सा काम दे रखा है, इसे इसी हूँ मैं अपने भण्डारकी चाबी।"

मैत्रेयीने पूछा—"भण्डारमें क्या है माँ?"

माँने कहा—"इसमें ऐसी चीजें हैं जिनमें म्लेच्छ लड़कीके छूनेपर भी छूत नहीं लगती।"—इतना कहकर दयामयीने कौतुककी हँसी हँसकर कमरा खोला और उसके भीतर जा खड़ी हुईं। अलमारियोंपर बहुतसे चाँदीके थाल रखे हुए थे—ब्राह्मण-पण्डितोंको विदाईमें देनेके लिए। एक जगह कलकत्तेसे चुनकर मँगाये हुए रुपये और अठन्नियोंका ढेर लगा हुआ था। कीमती रेशमी वस्त्रादि अभीतक ज्योंके त्यों बँधे पड़े हैं—खोलकर देखनेका अवकाश ही नहीं मिला। इसके अलावा दयामयीकी अपनी आलमारी और सन्दूक भी इसी कमरेमें है। हाथसे उन्हें दिखाते हुए उन्होंने हँसकर कहा—"वन्दना, इनमें मेरा सब-सबस है, और इन्हींपर किसीका सबसे ज्यादा लोभ है। यहीं तुम्हें सबसे ज्यादा पहरा देना होगा बेटी।"

वन्दनाने मुँहकी तरफ देखकर सतीने कहा—"इतने बड़े कामका भार क्या इससे संभाला जा सकता है माँ? बहुत ज्यादा रुपये-पैसेका मामला है!"—उसकी बात पूरी भी न हो पाई कि दयामयी कहने लगीं—"बहुत ज्यादा

पैसेका मामला होनेसे ही तो इसके हाथमें चाभी सौंपी है बहू। नहीं तो हिस्र
मुझ हिसाकिया कर देगा।”

“पर यह तो बाहरसे आए हैं माँ।”

इसकी यह बात भी पूरी न हो पाई और दयामयी हँसती हुई बोलीं—“बाहरसे तो किसी दिन तुम भी आई थीं बहू, और उसके भी बहुत पहले इसी तरह मुझे भी बाहरसे ही आना पड़ा था। यह कोई डर नहीं है। पर अब मेरे पास वक्त नहीं है, मैं जाती हूँ।”—इतना कहकर वे कमरेसे निकलकर नीचे चली गईं।

बन्दनाने कहा—‘तुम्हारे घरमें आकर वह कैसे बन्धनमें फँस गई भाभी। मुझे तो अब साँस लेनेका भी वक्त न मिलेगा।”

“मालूम तो ऐसा ही पड़ता है।”—कहकर सती खिल-खिल कर हँस दी।

× × ×

२३

संसारमें विपत्ति कहाँसे और किस रास्तेसे आकर कब अपना स्वरूप दिखाती है, इसका अनुमान करनेसे आश्चर्यमें पड़ना पड़ता है। काम-काजके बीचमें कल्याणीने आकर रोते हुए कहा—“माँ वे कह रहे हैं कि उनके साथ मुझे अभी तुरन्त घर वापस लौटना होगा। आद्धका अभी कुछ नहीं हुआ,—स्टेशनपर आकर बैठे रहेंगे तो अच्छा,—पर इस घरमें अब एक क्षण भी नहीं रहना चाहते।”

दानसागरकी प्रतिष्ठाकी धार्मिक क्रिया अभी-अभी समाप्त हुई है और अभी तुरत ही दयामयीने स्नानसे आकर घरमें पैर रक्खा है। अकस्मात् व्यस्ततामें लड़कीकी बात सुनके वे ठिठककर खड़ी हो गईं, उसकी बात अच्छी तरह समझ न सकीं हतबुद्धि सी होकर बोलीं—“कौन कह रहा है तुम्हें जानेके लिए,—दामादने? क्यों भला?”

“बड़े-भइयाने उनका बड़ा-भारी अपमान किया है—घरसे निकाल दिया है।”—कहकर कल्याणी उफनते हुए आवेगसे रो पड़ी।

चारों तरफ भी पुरुषोंकी भीड़ है,—कहीं खाने-पीनेकी तैयारियाँ हो रही हैं तो कहीं गाने-बजानेका आयोजन, कहीं भिखारियोंका परस्पर विसम्वाद हो

रहा है तो कहीं ब्राह्मण-पण्डितोंका शास्त्रार्थ—अगणित लोगोंका अपरिमेय कोला-हल हो रहा है, उसीके बीच अकस्मात् यह उपद्रव उठ खड़ा हुआ।

सती और मैत्रेयी भी आ पहुँचीं, वन्दना भण्डारके दरवाजेमें ताला लगाकर पास आ खड़ी हुई, नाते-रिश्तेदारोंमेंसे भी बहुतसे स्त्री पुरुष कुतूहली हो उठे। शशधरने आकर प्रणाम करते हुए कहा—"माँ, हम लोग चल दिये। आनेके लिए आज्ञा दी थी सो आ गये थे, पर टिक नहीं सके।"

"क्यों बेटा?"

"विप्रदास बाबूने अपने कमरेमेंसे मुझे निकाल दिया है।"

"इसकी वजह?"

"वजह शायद यही होगी कि वे बड़े आदमी हैं। मारे अहंकारके आँख कानसे कुछ दिखाई-सुनाई नहीं देता। सोचा होगा कि अपने घर बुलाकर अपमान करना आसान है। लेकिन अपने लड़केको जरा समझा दीजियेगा, मेरे बाप भी जमींदारी छोड़ गये हैं और वह निहायत छोटी भी नहीं है। मुझे भी भीख माँगकर गुजर नहीं करनी पड़ती।"

दयामयी व्याकुल होकर बोलीं—"विपिनको बुलवाती हूँ बेटा, क्या हुआ है सो पूछती हूँ। मेरा काम अभी पूरा नहीं हुआ है। ब्राह्मण भोजन बाकी है, वैष्णव-भिक्षुओंकी विदा" भी अभी नहीं हुई है। उसके पहले ही अगर तुम लोग नाराज होकर चले जाओगे शशधर, तो जिस शालग्रामकी अभी प्रतिष्ठा हुई है मैं उसीमें डूब मरूँगी, यह तुम लोग निश्चय समझ लेना।" कहते-कहते उनकी आँखोंमें आँसू भर आये।

शायद आँसुओंका विशेष कोई फल न हुआ। भद्र-सन्तान होनेसे भी शशधरकी आकृति और प्रकृति दोनोंमेंसे कोई भद्रोचित नहीं है। इनके पास जाकर खड़े होनेमें मन संकुचित हो उठता है। उसका विपुल शरीर और विपुलतर मुख-मण्डल कुम्हड़ेकी तरह फूलने लगा, बोला—"रह सकता हूँ, अगर विप्रदास बाबू यहाँ आकर सबके सामने हाथ जोड़कर मुझसे माफी माँगें। नहीं तो नहीं।"

उसका यह प्रस्ताव इतना अधिक अचिन्त्य और असम्भव-सा था कि सुनकर सब आश्चर्यसे दंग रह गये। विप्रदास माफी माँगेगा हाथ जोड़के! सो सबके सामने! कुछ देरतक सभी चुप रहे, सहसा आसपाससे कोई

विनयके साथ सती बोल उठी—"ननदरानी, अभी ठहरो। काम-काज सब निबट जाने दो उसके बाद जरूर इसका फैसला कर दूँगी। तुम्हारा अपमान क्या कभी किया जा सकता है! अन्याय किया होगा तो ये जरूर माफी माँग लेंगे।"

वन्दनाकी आँखोंकी कोरें जरा स्फुरित हो उठीं, किन्तु उसने शान्त स्वरमें ही कहा—"ये अन्याय तो कभी करते नहीं भाभी!"

सतीने डाँट दिया कहा—"तू चुप रह वन्दना। अन्याय सभी करते हैं।"

वन्दनाने कहा—"नहीं, ये नहीं करते।"

सुनकर मैत्रेयी मानो जल-भुन उठी, उसने तीक्ष्णस्वरसे कहा—"कैसे बनना आपने! यहाँ तो आप थीं नहीं। ये क्या बनाके कह रही हैं!"

वन्दनाने क्षण-भर उसकी तरफ देखा, फिर कहा—"बनाके कहनेकी बात मैं नहीं कह रही। मैंने सिर्फ यही कहा है कि मुखर्जी साहब अन्याय नहीं करते।"

मैत्रेयीने इसके उत्तरमें वैसे ही व्यङ्ग्यके साथ कहा—"अन्याय सभी करते हैं। कोई भगवान् नहीं हैं। अपमान करनेमें तो उन्होंने मेरे पिताजीको भी नहीं छोड़ा।"

वन्दनाने कहा—"तब तो फिर उसपर बाबूकी तरह उन्हें भी चला जाना चाहिए था, रहना नहीं चाहिए था।"

मैत्रेयीने तीक्ष्ण-स्वरमें जवाब दिया—"इसकी कैफियत आपको नहीं देनी है इसका फैसला होगा द्विजू बाबूके साथ जो निमन्त्रण देकर लाये हैं।"

सतीने क्रोधके साथ तिरस्कार करते हुए कहा—"तेरे पैरों पड़ती हूँ वन्दना, तू जा यहाँसे, अपने काममें लग।"

द्विजदासने क्षमाभिक्षाका स्वर करके कहा—"लेकिन मैं न्याय-अन्यायका फैसला-कराने नहीं आया माँ, आया हूँ यह जाननेके लिए कि आप लोग हाथ जोड़कर मुझसे माफी माँगेंगे या नहीं? नहीं तो मैं चला—एक मिनट भी नहीं रह सकता। आपकी लड़की चलना चाहे तो मेरे साथ चल सकती है, न जाना चाहे तो न सही, मगर उसके बाद फिर ससुरालका नाम जबानपर न लावे। फौरन, आज ही, सब खतम कर देना है।"

यह कैसी वञ्चनाकी बात है! द्विजदासके लिए कुछ असम्भव नहीं है,—

लड़की जमाईको घर बुलाकर यह कैसी भीषण विपत्ति मोल ले ली। सामने खड़ी-खड़ी कल्याणी रोती ही रही। समझाने देनेवाला कोई नहीं, सोचनेका भी वक्त नहीं। त्रास, लज्जा और गहरे अपमानसे दयामयीकी कर्तव्य-बुद्धिपर परदा-सा पड़ गया। वे कुछ सोच न सकीं और डरती हुई बोलीं—"तुम जरा ठहरो बेटा, मैं विपिनको बुलवाती हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि तुमसे कहीं-न-कहीं कोई जबरदस्त भूल हो गई है। पर इन सब घर भरके आदमियोंके बीच यह कलंक प्रकट हो जानेसे मुझे आत्महत्या करके मर जाना पड़ेगा बेटा।"

शशधरने कहा—"मैं खड़ा हूँ, बुलाइए उन्हें। विप्रदास बाबू इतना ही कह दें कि यह काम उन्होंने नहीं किया।"

"यह बात पूछना नहीं शशधर।"—इतना कहकर दयामयीने विप्रदासको बुलवा भेजा। कोई पाँच मिनट बाद विप्रदास आकर खड़े हो गये। वैसे ही शान्त गम्भीर और आत्म-निमग्न। सिर्फ आँखोंमें एक तरहकी उदास क्लान्तिकी छाया झलक रही है,—पर उसके पीछे कौन-सी बात छिपी हुई है यह बताना कठिन है।

दयामयी उफनते हुए आवेगके साथ कह उठीं—"तेरे खिलाफ शशधर क्या बात कह रहा है विपिन! कहता है तूने उसे अपने कमरेसे निकाल दिया है यह क्या कभी सच हो सकता है!"

विप्रदासने कहा—"सच ही तो है माँ।"

"कमरेसे सचमुच ही निकाल दिया है तूने मेरे जमाईको! मेरे इस काम-काजके घरमेंसे!"

"हाँ, सचमुच ही निकाल दिया है। कह दिया है कि आइन्दा फिर कभी मेरे कमरेमें न आवें।"

सुनकर दयामयी वज्राहतकी भाँति निस्तब्ध हो गईं। कुछ देर बाद यह अभिभूत भाव दूर होनेपर उन्होंने पूछा—"क्यों?"

"उसे तुम्हारा न सुनना ही अच्छा है माँ।"

वे स्थिर न रह सकीं, व्याकुल होकर बोल उठीं—"हम लोग सुनना भी नहीं चाहतीं, पर ननदोईजी कल्याणीको लेकर इसी वक्त चले जाना चाहते हैं। इतने आदमियोंके बीच, जरा सोच देखो कि कितनी जबरदस्त फजीहत होगी,—इससे कहो कि तुमसे अचानक अन्याय हो गया है, कहो इन लोगोंसे रहनेके लिए।"

विप्रदासने क्षण-भरके लिए अपनी स्त्रीके मुँहकी ओर देखा, फिर कहा—"मुझसे भयानक अन्याय नहीं होता सती।"

"होता है, होता है, भयानक अन्याय तुमीसे हो जाता है। कहो न इनसे जानेको।"

विप्रदासने सिर हिलाते हुए कहा—"नहीं, अन्याय मुझसे नहीं होता।"

पति-पत्नीकी बातचीतके बीचमें दयामयी स्तब्ध हुई खड़ी थी, अकस्मात् किसीने मानो उन्हें झकझोर कर सचेत कर दिया। तीव्र कण्ठसे कह उठीं—"न्याय-अन्यायकी तकरार रहने दो। भाभी-जमाई मेरे हमेशाके लिए गैर हो जायेंगे—यह मुझसे नहीं सहा जायगा। उधरसे तुम माफी माँग लो विपिन।"

'यह नहीं होगा माँ, यह असम्भव है।'

"सम्भव-असम्भव मैं नहीं जानती। माफी तुझे माँगनी ही होगी।'

विप्रदास स्थिर होकर खड़े रहे। दयामयीने मन-ही-मन समझ लिया कि इस असम्भवको अब सम्भव नहीं किया जा सकता। अब तो उनके क्रोधकी सीमा न रही, बोलीं—"घर तुम्हारा अकेलेका नहीं है विपिन। किसीको निकाल बाहर करनेका अधिकार तुम्हारे पिता तुम्हें नहीं दे गये। वे लोग इस घरमें रहेंगे।"

विप्रदासने कहा—"देखो माँ, मुझ बगैर बुलाये अगर तुम यह आदेश देतीं तो मैं चुप ही बना रहता, पर अब नहीं रह सकता। लाचार होगा तो मुझे घर छोड़कर चला जाना पड़ेगा। फिर मुझे वापस नहीं बुला सकोगी। कौन-सी बात चाहती हो, बताओ!"

जीवनमें ऐसे भयानक प्रश्नका उत्तर देनेके लिए कभी किसीने उन्हें नहीं पुकारा, न इतनी बड़ी दुर्भेद्य समस्याका सामना करनेको ही कभी किसीने कहा। एक तरफ लड़की और जमाई हैं और दूसरी तरफ खड़ा है उनका विपिन—जिसको उन्होंने छातीसे लगाकर इतना बड़ा किया है, जो समस्त आत्मीयोंसे बड़ा आत्मीय है, दुःखमें सान्त्वना है, विपत्तिमें आश्रय है—और जो उनको प्राणोंसे भी प्यारा है। यह समझाया उन्हें मृत्यु देगी, किन्तु संकल्पच्युत न करेगी। समझ गईं कि सपनाधारका अवलम्ब गाड़कर उनके पैरोंके नीचे आ गया है, इस भूलका प्रतिकार नहीं है, यह बातके तिरसे वापस लानेका भी मार्ग रहता नहीं, परिणाम इसका दैवके समान ही अमोघ है, निर्मम है, और अमन्यगतिक भी। फिर भी, अपनेको वे दमन न कर सकीं, अदम्य क्रोध

ौर अभिमानके तूफानने उन्हें सामनेकी ओर ही धकेल दिया, कटु कण्ठसे हीं—"यह तुम्हारी अन्यायपूर्ण जिद है विपिन तुम्हारे लिए मैं लड़की-जमाईको नम-भरके लिए पराया नहीं बना सकती बेटा। तुम्हारी जो इच्छा हो सो रो। द्विजू, आओ तुम लोग मेरे साथ आओ—इसकी बातपर ध्यान देनेकी रूरत नहीं। मकान इसका अकेलेका नहीं है।"—इतना कहकर वे द्विजू ौर कल्याणीको अपने साथ लेकर चली गईं। उनके पीछे-पीछे गई मैत्रेयी, से वह उन्हीं लोगोंकी अपनी कोई हो।

मालूम होता था कि सतीका हृदय मन अब बिल्कुल चकनाचूर हो जायगा। न्तु उसकी अचंचल दृढ़ता देखकर वन्दना और विप्रदास दोनों ही आश्चर्यसे ग रह गये। उसकी आँखोंमें आँसू न थे, किन्तु चेहरा पीला-जर्द पड़ गया था। ती बोली—"ननदोईजीने क्या किया है हम नहीं जानतीं, पर बिना कारण न्होंने भी इतनी बड़ी वारदात न की होगी सो निश्चयसे जानती हूँ। सोच-विचार त करो, अपने मनमें मैं तुम्हें रंचमात्र भी दोष न दूँगी।"

विप्रदास चुप रहे। सतीने पूछा—"तुम क्या आज ही चले जाओगे?"

"नहीं, कल जाऊँगा।"

"अब न आओगे इस घरमें?

"जान तो नहीं पड़ता।"

"मैं? माँ?"

"जाना तुम लोगोंको भी होगा। कल न जा सको, तो और किसी दिन सही।"

"नहीं, और किसी दिन नहीं—हम लोग भी कल ही चलेंगे।"—इतना कहकर सतीने वन्दनासे पूछा—"तू क्या करेगी वन्दना, कल ही जायेगी?"

वन्दनाने कहा—"नहीं। मैंने तो झगड़ा किया नहीं जीजी, जो एक बाँधकर कल ही जाना पड़े?"

सतीने कहा—"झगड़ा मैंने भी नहीं किया वन्दना, न इन्होंने किया है। पर जहाँ इनके लिए जगह नहीं है वहाँ मेरे लिए भी नहीं है। एक दिनके लिए भी नहीं। तेरा ब्याह हुआ होता तो तू भी इस बातको समझ जाती।"

वन्दनाने कहा—"ब्याह नहीं होनेपर भी समझती हूँ जीजी कि पतिके लिए जहाँ जगह नहीं होती वहाँ स्त्रीके लिए भी नहीं हो सकती। पर भूल तो

होती ही है। बगैर हमसे उसीको स्वीकार करना सीधा कर्तव्य है—हमारी यह बात मैं नहीं मानूँगी।"

शरत्के प्रति सतीके अभिमानकी सीमा नहीं थी, बोली—"पति होते तो मान जाती।" और आँसू दबानेके लिए तेजीसे वहाँसे चली गई।

बन्दनाने कहा—'यह क्या किया मुखर्जी साहब?'

"बगैर किये कोई उपाय न था बन्दना।'

"लेकिन माँके साथ विच्छेद! लड़की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।"

विप्रदासने कहा—"नहीं की जा सकती यह सच है, किन्तु नया प्रश्न आकर जब रास्ता घेर लेता है तब नये समाधानकी ही बात सोचनी पड़ती है। सबके निकलनेका रास्ता नहीं रहता। तुम्हारी मौसी मेरे साथ ही जायगी—रोकना जरूर है। मगर तुम? और भी दो चार दिन रहनेका इरादा है क्या?"

बन्दनाने कहा—"कितने दिन रहना पड़ेगा, मुझे नहीं मालूम। नये प्रश्न आपके आगे चाहे जितने भी आयँ, पर मैं तो उस पुराने रास्तेमें ही उसका नजर ढूँढ़ती फिरूँगी—जो रास्ता पहले दिन मेरी नजरोंमें पड़ा था जब कि ठीक इस घरमें आकर खड़ी हुई थी,—जिसकी तुलना कहीं भी नहीं देखी, उसे मेरे मनकी चाह ही उपेक्षाके लिए बदल दी?"

विप्रदासने इसका कोई जवाब नहीं दिया, सिर्फ उनके ओठोंके किनारेपर म्लान हँसीका जरा-सा आभास दिखाई दिया। उस हँसीमें जितनी वेदना थी उतनी ही निराशा। उन्होंने कहा—"मैं बाहर जा रहा हूँ बन्दना, फिर मुलाकात होगी?"

बन्दनाकी आँखोंमें आँसू भाप बनकर घुमड़ रहे थे वह बोली—"मुलाकात अगर कभी हुई तो उस समय मैं पूछने ही आपको प्रणाम करूँगी। कठोर है आपकी प्रकृति कठिन है आपका मन—न उसमें स्नेह है, न क्षमा। तब शायद न कह सकूँ शायद मौका न मिले इसलिए अभीसे कहे रखती हूँ मुझमें मालूम कि किनको लेकर हमारी घर-गृहस्थी, हँसना-रोना, मान-अभिमान चला करता है। हम उन्हींको साथ लेकर चल सकें—उन्हींको हम इस जीवनमें अपना सोचना-समझना सीख सकें मरीचिकाके पीछे-पीछे हमें न भटकना पड़े।" फिर जरा ठहरकर बोली—"दूसरे जब कभी आप याद आयेंगे तभी प्रणाम मनसे यह मंत्र जपा करूँगी—वे निर्मल हैं, वे निष्पाप हैं, वे महान् हैं।

मनकी पाषाण-शिलापर उनका लेशमात्र भी दाग नहीं पड़ता। जगत्में वे अकेले हैं, किसीके अपने नहीं हैं,—संसारमें कोई उनका अपना नहीं हो सकता।"—यह कहकर आँखोंपर आँचल दबाकर वह वहाँसे चली गई।

× × ×

उस दिन काम-काज बहुत रात बीते खतम हुआ। इस घरकी सुव्यवस्थित धारामें कहीं भी कोई व्याघात नहीं हुआ, बाहरसे कोई जान ही न सका कि आज उस शृंखलाकी सबसे बड़ी कड़ी टूटकर चकनाचूर हो गई है। सवेरा होनेमें ज्यादा देर नहीं है। काम काजसे थका हुआ विशाल भवन बिलकुल नीरव है—जिसे जहाँ जगह मिल गई वह वहीं नींदमें पड़ा सो रहा है। भण्डारकी भारी जुम्मेदारी निभाकर वन्दना श्रान्त कदमोंसे अपने कमरेकी तरफ जा रही थी उसकी निगाह पड़ गई कि उधरके बरामदेके पास द्विजदासके कमरेमें बत्ती जल रही है। दुविधा उठ खड़ी हुई कि इस समय वहाँ जाना उचित है या नहीं किसीकी निगाह पड़ गई तो वह उसके साथ न्याय नहीं करेगा और निन्दा शायद सौ-सौ मुँहसे फैल जायगी; मगर फिर भी वह रुक न सकी, जिस उद्वेगने उसे दिन-भरसे चंचल और अशान्त कर रक्खा है वह उसे उसी ओर खींच ले गया। बन्द दरवाजेके सामने आकर उसने पुकारा—
"द्विजू बाबू, अभीतक जाग रहे हैं!"

भीतरसे जवाब आया—"हाँ। पर इतनी रातमें आप कैसे!"

"आ सकती हूँ!"

"बड़ी खुशीसे।"

वन्दनाने दरवाजा खोलकर भीतर आकर देखा कि ढेरके ढेर कागजात लिये हुए द्विजदास बिस्तरपर बैठा हुआ है। उसने पूछा—"यह आजका हिसाब होगा! पर हिसाब तो भागा नहीं जा रहा द्विजू बाबू, इतनी राततक जागनेसे तबीयत जो खराब हो जायगी!"

द्विजदासने कहा—"हो जाती तो भी भला, इन सबका आँखोंसे न देखना पड़ता।"

"खर्च बहुत ज्यादा हो गया होगा! भाई साहबके सामने कैफियत देनी पड़ेगी क्या!"

द्विजदास कागजातोंको एक तरफ हटा रखकर सीधा होकर बैठ गया, बोला

—"चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च । श्रीगुरुकी कृपासे वे दिन अब मेरे नहीं रहे बन्दना देवी, अब भाई-साहबके आगे कैफियत देनी होगी । अब तो समय मैं कैफियत चाहूँगा उनसे । कहूँगा—लाओ अपनी हिसाब, अपनी लाओ बस्ता, कहाँ कैसा खर्च-वर्च किया है बताओ ।"

बन्दना दंग रह गई, बोली—"बात क्या है ?"

हिमदास दोनों हाथोंकी मुट्ठी बाँधकर उन्हें माथेके ऊपर उठाकर बोला—"बात आनन्द मौज्म है । माँ दयामयी मुझपर दया करें, बदनोई ठाकुर मेरे सहाय हों—सावधान हिमदास । अबकी बार मैं तुम्हारा धन और प्राण दोनोंसे बध करूँगा । इन लोगोंके हाथसे अब तुम्हारा निस्तार नहीं ।"

बन्दनाकी चिन्ता दुर्दमनीय हो उठी, फिर भी वह बगैर हँसे न रह सकी, बोली—"सब बातोंमें आपको मज़ाक ही सूझता रहता है ? आप क्या एक छन भी सीरियस (गम्भीर) नहीं रहना जानते हिमू बाबू ?"

हिमदासने कहा—"जानता नहीं ? तो ले आओ ठाकुरको, लाओ,—नहीं, रहने दो उन लोगोंको । देखोगी कि उनके सामने हँसी-मज़ाक गाँव छोड़के दुर्दिनोंमें ग्लानिकी मरुभूमिमें भाग जायगा और गाम्भीर्यका मुलम्मा हो उठेगा काली-मोड (कमीकल्प) के समान ठाठमना । परीक्षा कर देखिए ।"

बन्दना कुरसी खींचकर बैठ गई; बोली—"तो आपने सब सुन लिया है ?"

"सब नहीं, किञ्चित् । सब तो जानते हैं भाई साहब । पर वहाँ तो गहन वन है कुछ पता नहीं चलनेका । और जानता है ठाकुर । वह क्या कहकर दिया पर सब गढ़ बनाकर बतायेगा ।"

बन्दना व्याकुल-कण्ठसे बोली—"जो कुछ आपको मालूम है, मुझे बता सकते हैं हिमू बाबू ? मैं सचमुच बहुत डर गई हूँ ।"

हिमदासने कहा—"डरना व्यर्थ है । भाई-साहबका नुकसान उनसे सब नहीं हो सकता—उनको हम लोगोंने लो लिया ।"

वर्षाके उच्छ्वाससे अब देखा गया कि आँसुओंसे उसकी आँखें डबडबा आई हैं, गरदन फेरकर किसी कदर उन्हें पोंछकर वह सीधा होकर बैठ गया ।

बन्दनाने गाढ़े स्वरसे कहा—"छिः ! इतनी आसानीसे आ जायगा हिमू बाबू ! सचमुच ही क्या इसे रोका नहीं जा सकता ?"

हिमदासने सिर हिलाते हुए कहा—"नहीं । यह ऐसी चीज़ है कि जब

आती है तब ऐसी ही अबाध गतिसे—ऐसी ही तेजीसे आती है, मनाही फिर मानती ही नहीं। जिसे होना होता है, वह होता है, पर अन्त उसका भयंकर है।"—क्षण-भर मौन रहकर फिर कहने लगा—"आप जानना चाहती हैं कारण? विस्तारसे तो मैं नहीं जानता, पर जितना जानता हूँ उसे सिर्फ आपको ही बताऊँगा, और सहायता अगर कभी माँगनी पड़ी तो आपसे ही माँगूँगा—फिर आप चाहे कहीं भी क्यों न रहें।"

'सिर्फ मुझसे ही क्यों?"

"उसका कारण यह है कि हाथ अगर पसारना ही पड़े तो महत्के आगे—यही शास्त्रका विधान है।"

"पर महत् क्या और कोई नहीं है?"

"शायद हो, पर मुझे उसका पता नहीं मालूम। भाई-साहबकी बात न छेड़ूँगा, पर हमेशाका अभ्यास था भाभीके आगे हाथ पसारनेका, वह रास्ता आज बन्द हो गया। आप उनकी बहन हैं, मेरा दावा उसी नातेसे है।"

"और माँ?"

द्विजदासने कहा—"रथ जब लीकसे चलता है तो माँ उसकी असाधारण सारथी रहती हैं, पर जब पहिये कीचड़में धँस जाते हैं तो माँ उस वक्त असहाय निरुपाय हो जाती हैं। उबारकर वे उसे ढकेल नहीं सकतीं। उस बुरे वक्तपर आऊँगा आपके पास,—देंगी भिक्षा?"

"भिक्षाका विषय बगैर जाने कैसे बताऊँ द्विजू बाबू?"

"सो तो मैं खुद भी नहीं जानता वन्दना; और सहजमें माँगने भी न आऊँगा। जब कहींसे भी कुछ न मिलेगा तभी पहुँचूँगा आपके पास।"

वन्दना बहुत देरतक नीचेको सिर झुकाये बैठी रही, फिर मुँह उठाकर बोली—"जो मैंने जानना चाहा था, नहीं बतायेंगे?"

द्विजदासने कहा—"सब मुझे नहीं मालूम, जितना जानता हूँ वह भी शायद अभ्रान्त न हो पर इस विषयमें मुझे कोई सन्देह नहीं कि भाई साहब आज सर्वस्वान्त हो गये—उनके पास कुछ भी न रहा, सब चला गया।"

"वन्दना चौंक उठी, बोली—"मुखर्जी साहब आज सर्वस्वान्त हो गये! कैसे यह हुआ द्विजू बाबू?"

द्विजदासने कहा—"बहुत ही आसानीसे और उस शशधरके षड्यन्त्रसे।

बाद चौधरी-कम्पनीने अकस्मात् उस दिन दिवाला निकाल दिया और भाई-साहबका सर्वस्व भी उसी वक्त उस गड्ढेमें डूब गया। भीतर छिपा रह गया एक और इतिहास।"

कल्पना व्याकुल होकर बोली—"इतिहासको रहने दीजिए द्विजू बाबू, सिर्फ घटनाकी बात बताइए। सर्वस्व जानेकी बात सच है या नहीं?"

"हाँ, सच है। यहाँ कोई गलती नहीं है।"

"और बीबी? बाबू? उनके लिए भी कुछ नहीं रह गया?"

"नहीं। रह गई सिर्फ भाभीके मायकेकी आमदनी। मामूली थोड़ेसे रुपये।"

"पर उसे तो भाई साहब छूएँगे नहीं द्विजू बाबू?"

"नहीं। उसकी अपेक्षा उपवास करनेपर भाईसाहबको कहीं ज्यादा विश्वास है। दो भी दिन बीते।'

दोनों चुप रह गये। कुछ मिनट बाद कल्पनाने पूछा—"और आप? आपका अपना क्या हुआ?"

द्विजदासने कहा—"परम निर्भय और निरापद बना हुआ हूँ। भाईसाहब डूब हुये पर मुझे ऐसा ही छोड़ गये। पानीकी एक बूँद भी पेटमें नहीं जाने दी। आप पूछेंगी कि यह असम्भव सम्भव कैसे हुआ?—मोटी सुबुद्धि, भाई साहबकी साधुता और मेरे अपने शुभ ग्रहकी खूबी कहिये। किस्सा सुनाता हूँ, सुनिए,—यह शशधर था भाई-साहबका बालबन्धु सहपाठी। दोनोंकी मुहब्बत-की बार हद न थी। बड़े होनेपर भाई साहबने उसके साथ कर दिया कल्याणीका ब्याह। यह घटना (उनका मिलाना) ही भाई साहबके जीवनकी असल कीर्ति है। सुननेमें आया कि शशधरके पिताके बड़ी-भारी जमींदारी है, बहुत पैसा है, विशाल कारोबार है। इतना बड़ा धनवान् व्यक्ति अपना जिसमें आर छोर नहीं है। चार ही साल बीते होंगे कि अचानक एक दिन शशधरने आकर खबर दी कि जमींदारी, धनधान्य कारोबार सब अपार पानीमें डूबनेवाला है अब देर नहीं,—आपको रक्षा करनी होगी। मैंने कहा, 'रक्षा ही उचित है, पर द्विजू मेरा अभी नाबालिग है, उसके पैसेपर तो हाथ लगाया नहीं जा सकता भैया।' शशधरने कहा, 'साल भर भी न लगेगा भाई, सब चुकता हो जायगा।' मैंने कह दिया, 'आशीर्वाद करता हूँ कि ऐसा ही हो, पर नाबालिग-

की सम्पत्ति है, उसके सिवा बिलकुल मनाही कर गये हैं।'

"कल्याणी रोती हुई आई और भाई साहबके पैरों पड़ गई, बोली, 'भय्या, न्याय तुम्हींने किया था मेरा, आज बाल-बच्चोंको लेकर मैं भीख माँगती फिरूँगी और तुम अपनी आँखोंसे देखा करोगे! माँ देख सकती है, पर तुम!' जहाँ उनका धर्म है, जहाँ उनका विवेक और वैराग्य है, जहाँ वे हम सबसे बड़े हैं, कल्याणीने वहीं चोट की। भाई साहबने अभय देते हुए कहा, 'तू घर जा बहन, जो कुछ करना होगा मैं करूँगा।' उसी अभय मंत्रको लेकर अपने कल्याणी अपने घर चली गई। उसके बादका इतिहास संक्षिप्त है वन्दना। पर उधर तो देखो, सवेरा हो रहा है।"—कहते हुए उसने खुली हुई खिड़कीकी ओर उसकी दृष्टि आकर्षित की।

वन्दना उठकर खड़ी हो गई, बोली—"और ये सब कागजात कैसे हैं?"

द्विजदासने कहा—"मेरे निर्भय रहनेके दस्तावेज हैं। आते वक्त भाई साहब अपने साथ लेते आये थे। पर मैं पूछता हूँ, आप भी क्या हम लोगोंको ऐसे ही छोड़कर आज चली जायँगी?"

"ठीक नहीं मालूम द्विजू बाबू। पर अब समय नहीं रहा, मैं जा रही हूँ। फिर मुलाकात होगी।"—इतना कहकर वन्दना धीरेसे वहाँसे चली आई।

× × ×

२४

अपनी दीदीको जबरदस्ती एक कुरसीपर बिठाकर वन्दना उसके पाँवोंमें मलहम लगा रही थी। उस घर मंगलाचार सिखाकर अक्षय खुद न-जाने कहाँ छिप गए हैं। उसकी आँखें लाल सुर्ख हो रही हैं, लगातार आँसू बहाते-बहाते आँखें सूज गई हैं। वन्दनाके पूछनेपर उसने सवेरेमें कहा था—"बहूको मैं अपना मुँह नहीं दिखा सकूँगी।"

"तुम क्यों नहीं दिखा सकोगी अनु-दीदी, तुम्हें किस बातकी शरम है?"

"मुझे शरम इस बातकी है कि इसके पहले ही मैं क्यों नहीं मर गई! सिर्फ द्विजूको ही तो मैंने पाल-पोसकर इतना बड़ा नहीं किया मौजी-बाई, विपिनको भी किया है। उसकी माँ जब मरी थी तो किसके हाथ सौंप गया था उसने अपने दो महीनेके नन्हे-से बच्चेको? मेरे ही हाथों। उस दिन कहाँ थी

दयामयी ! क्यों ये उनकी बहकी और जमाई !"—कहते-कहते वह मुहपर आँचल दबाकर कहीं अन्यत्र चली गई। जमीनपर बैठके अपने घुटनोंपर बीबीके पाँव रखकर कल्पनाका महावर लगाना मानो खतम ही नहीं होना चाहता।

इतनेमें एक बूँद गरम आँसू सतीके पाँवपर आ पड़ा। झुककर भी वह कल्पनाका मुँह नहीं देख सकी। पर हाथसे उसकी आँखें पोंछकर बोली—"तू अभी रो रही है क्या री कल्पना ?"

कल्पनाने उसी तरह सिर झुकाये हुए रुँधे हुए कंठसे कहा—"रो तो तुम भी रही हो बीबी। मैं ही अकेली तो नहीं रो रही हूँ !"

"तुम्ही रो रही हो तो क्या तुझे भी रोना पड़ेगा ? इतना पढ़-लिखकर क्या तूने यही बुद्धि सीखी है ?"

सतीकी बात सुनकर कल्पनाने एक क्षणके लिए अपना मुँह उठाकर उसकी ओर देखा, और कहा—"बुद्धि दिखाके रोना पड़ेगा, नहीं तो आदमी रोयेगा नहीं, तुम्हारी भी यह कैसी बुद्धि है बीबी !"

सतीने अपने हाथमें कल्पनाका माथा सहलाते हुए स्नेहके साथ कहा—"तर्कवालीके साथ तर्कमें जीतना मुश्किल है। ऐसा नहीं कहा री मैंने, ऐसा नहीं कहा। उन लोगोंका खयाल है कि हमारा सब कुछ जाता रहा, इसीसे वे रो रहे हैं। मगर दरअसल तो ऐसा हुआ नहीं। मेरे एक तरफ तो हैं पति और दूसरी ओर हैं पुत्र,—संसारमें कोई भी नुकसान मेरा नहीं हुआ बहन, मेरे लिए तू शोक मत कर। दुःख मुझे नहीं है।"

कल्पनाने कहा—"दुःख भगवान् करें तुम्हें कभी न हो बीबी। पर तुम्हारा दुःख ही सब-कुछ नहीं है। तुम्हारा कितना गया सो तुम जानो, पर जो रो-रोकर आँखें अन्धी कर रहे हैं उनका नुकसान कौन पूरा करेगा, बताओ ?"

फिर थोड़ी देर ठहरकर कहने लगी—"मुनसी महाशय भले आदमी हैं, वे तो सुखी हो रहें पर जाते समय सूनी आँखोंसे आज तुम विदा मत होना बीबी। यह बात उन लोगोंको बहुत ज्यादा चुभेगी !"

"किन लोगोंको चुभेगी री कल्पना ?"

"किन लोगोंको ! नहीं जानती तुम उन्हें ! जो बालकी उमरसे तुम आई थी इस पराये घरमें, इस घरको बारहों साल तुम्हारा अपना घर बनाते चले

सारे ही लोग—आपके एक ही पलमें उन लोगोंको तुम भूल गईं जीजी ! तुम्हारी सास, तुम्हारे देवर, तुम्हारे घरके दासी-दास, आश्रित लोग, ठाकुरद्वारा, अतिथिशाला, गोशाला, गुरु-पुरोहित—इन सबका अभाव पूरा हो जायगा केवल पति और पुत्रसे ? और कोई नहीं है जीवनमें—सिर्फ वही है ?"

वन्दना कहने लगी—"यह किन लोगोंके मुँहकी बात है जानती हो जीजी ? जिन समाजमें मैं पली-पनपी हूँ उन लोगोंके मुँहकी । तुम सोचती होगी कि पति भक्तिकी यही अन्तिम बात है, स्त्रीके लिए इससे बढ़कर सोचनेकी और कोई बात नहीं । पर यह तुम्हारी भूल है । कलकत्ते चलो मेरी मौसीके घर देखोगी—यह बात वहाँ पुरानी हुई पड़ी है—इससे ज्यादा वे सोचती भी नहीं, करती भी नहीं । इसपर तुर्रा यह कि"—कहते-कहते वह रुक गई । उसे सहसा ऐसा लगा कि कोई आकर पीछे खड़ा है, मुड़कर देखा तो द्विजदास है । कब वह पीछे आ खड़ा हुआ, दोनोंमेंसे किसीको मालूम नहीं पड़ा । शरमा कर वन्दना कुछ कहना ही चाहती थी कि द्विजदासने कहा—"डरनेकी कोई बात नहीं, न तो मैं आपकी मौसीको पहचानता हूँ और न उनके घरके लोगोंको, आपकी बात उन लोगोंपर प्रकट नहीं करूँगा । पर असलमें आपसे गलती हो रही है । संसारमें पशु-पक्षियोंका भी दल होता है, उनके आचरणको किसी सूत्रमें बाँधा जा सकता है, पर आदमियोंका दल नहीं । एक साथ इस तरह आदत विचार उनके बारेमें नहीं किया जा सकता । सबेरेसे यही बात सोच रहा हूँ । मौसीके दलसे पकड़कर अनायास ही आपको भारतवर्षके दलमें शामिल किया जा सकता है, और दयामयीके दलसे निकालकर मजेसे उस मैत्रेयीको आपकी मौसीके दलमें चालान किया जा सकता है । मैं शर्त लगाकर कह सकता हूँ कि कहीं भी रत्तीभर विस्मय नहीं होनेका । वाह रे आदमीका मन ! वाह रे उसकी प्रकृति !"

सतीने आश्चर्यके साथ पूछा—"इस बातके मानी क्या बबुआजी ?"

द्विजदासने उससे ज्यादा आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"तुम्हारे सामने भी मानी ? जिसके काम और जिसकी बातके भी अगर मानी होने लग जायें, तो फिर अबतक दयामयी-विप्रदासके दरबारमें न जाकर तुम्हारे पास ही उसकी सब अर्जियाँ क्यों पेश होतीं भला ? मानी समझनेकी गरज तुम्हें नहीं है, इसी लिए तो ! आज तुम्हारे अनेक दिन भी उसे बना रहने का भाव, एक और

गैर-ठीककी बातकी लाज निभानेकी जरूरत नहीं।"—इतना कहकर सामने आकर उसने माँजीके पाँवोंपर अपना सिर रखकर प्रणाम किया। ऐसा वह नहीं किया करता। पाँवोंके गीले महावरका रंग उसके माथेमें लग गया सतीने मुसकराते अपने आँचलसे उसे पोंछना चाहा, पर उसने गरदन हिलाकर माथा अलग कर लिया, बोला— दाग अपने ही आप पुँछ जायगा भाभी, कमसे कम एक दिन तो बना रहने दो।"—बात ऐसी कोई खास नहीं थी, हिलते हँसते हुए ही कही थी, पर वन्दनाकी दोनों आँखें आँसुओंसे भर आईं। उन्हें छिपाना चाहा, तो फिर वह अपना मुँह ही न उठा सकी।

द्विजदासने कहा—"मैं आया था ताकीद करने। समय हो चला, भाई साहब जल्दी कर रहे हैं। चीज-वस्तु सब पहुँचा दी गई है, बासुको कपड़े-लत्ते पहना-पिन्हाकर गाड़ीमें बिठा आया हूँ, समारोहका आयोजन किसने कर दिया नहीं मालूम, वह भी हाथके हाथ हो गया। डर था कि अनुदीदी शायद कहीं छुप गयी हो, पर अब सन्देह हो रहा है कि कहीं-न-कहीं वे छिपी हैं। नहीं तो ये चीजें आतीं कहाँसे! लेकिन जब कि उन्हें ढूँढ़ पाया नहीं जा सकता तो फिर ढूँढ़नेकी जरूरत नहीं। उधर दयामयीके कमरेकी साँकल बन्द है। सफर पार करनेके लिए पैदल उन्होंने अवलम्बन लिया है उसमें करनेको कोई काम ही नहीं। हाँ, श्रीमती मैत्रेयीको जो कुछ कहना हो कह आ सकती हो, यथा-समय वह बात माँके कानोंतक पहुँच जायगी। मगर मेरा कहना है कि उसकी कोई आवश्यकता नहीं। अब तुम जरा जल्दी होकर गाड़ीमें बगलमें बैठो भाभी, तुम्हें रेलमें चढ़ाकर छुट्टी पा जाऊँ, और अपने काममें मन लगा सकूँ।"

सतीने म्लान हँसी हँसते हुए कहा—"मुझे विदा करनेके लिए आजकलको बड़ी जल्दी पड़ी हुई है!"

"मेरा काम पड़ा हुआ है जो बहुत सारा।"

"क्या काम है सुनूँ तो?"

"इसके पहले कभी तो तुमने सुनना नहीं चाहा भाभी। जब जो माँगा है तुमसे, बगैर पूछे ही देती आई हो बराबर। वह तुम्हारे सुनने योग्य नहीं है।"

सती और वन्दना दोनों ही क्षण-भर चुपचाप उसकी तरफ देखती रहीं, इसके बाद सतीने कहा—"तुम जाओ लालाजी, अब मुझे देर न लगेगी।" फिर वन्दनासे कहा—"तू भी यहाँ देर न लगाना बहन, जितनी जल्दी हो सके

बम्बई चली जाना। कलकत्ते आनेकी जरूरत नहीं, काकाजी यहाँ अकेले हैं, इसका ख्याल रखना।"

वन्दनाने भी हिन्दूकी तरह पाँवोंपर सिर रखकर प्रणाम किया, पाँवोंकी धूल लेकर माथेसे लगाई और कहा—"नहीं दीदी, मौसीके घर अब नहीं, ऊपरका पाठ खतम करके ही छोटी थी, उसे मैं नहीं भूलूँगी।"—कहते हुए उसने अपने आँचलसे आँखें पोंछी और फिर कहा—"शायद कल ही बम्बई रवाना हो जाऊँगी; मगर तुम जानेके पहले यह भरोसा देती जाओ दीदी, कि फिर जल्दी ही तुम लोगोंको देख सकूँ।"

सतीने मन-ही-मन क्या आशीर्वाद दिया सो वही जाने, हाथ उठाके उसकी ठोड़ी छूकर चुम्बन किया, और हँसते हुए कहा—"लो तेरे अपने हाथकी बात है वन्दना। काकाजीसे कहना जाकर कि तेरे ब्याहमें वे हमें निमन्त्रण भेजें, जहाँ कहीं भी रहूँगी जरूर पहुँच जाऊँगी।"—जरा ठहरकर, शायद मन-ही-मन यह सोचकर कि कहना ठीक है या नहीं, फिर कहा—"मेरी बड़ी-भारी साध थी कि इस घरमें ही तू आवे। बाबूजीके हाथ मुझे सौंपकर और तेरे हाथों घर-गिरस्ती का भार—बासूका भार—सब सौंपकर मोक्ष साथ कैलास-यात्राको जाती, लौटती तो लौट आती, नहीं तो नहीं,—लेकिन, आदमी सोचता कुछ है, होता कुछ और ही है।"—इतना कहकर वह चुप हो गई। कुछ देर स्तब्ध रहकर फिर कहने लगी—"इस घरमें मैंने जो कुछ पाया था, संसारमें कोई उसे नहीं पाता। और सबसे ज्यादा पाया था मैंने अपनी सासको। पर उन्होंके साथ विच्छेद हो गया सबसे बढ़कर। जानेके पहले पाँव भी नहीं छू सकी, दरवाजा बन्द है, चौखटकी धूल माथेसे लगाकर चली आई, माँ, इस काठकी चौखटपर तुम्हारे पाँवोंकी धूल लगी हुई है, कहते कहते—"बात पूरी न कर सकी, कण्ठ रुक आया, अब तो वह बेकल हो टूट-फूट-सी गई, उसकी दोनों आँखोंसे झर-झर आँसुओंकी धार बह चली। दो-तीन मिनट अपनेको सम्हालनेमें लग गये, फिर आँचलसे आँखें पोंछकर बोली—"और अनु-दीदीको भी देख-देख हैरान हो गई, वह भी नहीं मिली। वह मेरी माँसे भी बड़ी है वन्दना। तुम लोगोंके घरसे जानेपर उनसे कह तो देना तू, मैं उनसे नाराज होके गई हूँ।"—फिर उसकी आँखें भर आईं। उसने आँचलसे आँखें पोंछ डालीं। उसने एक गिलास पानी पी, साथ रखा था नीबू। काम-काजके घरमें वह कहाँ गायब हो गई है, पता नहीं। सबेरे कई बार

उसका ख्याल आया, और अब फिर उसकी याद आ गई, बोली—"नीमू भी न जाने कहाँ हड्डी बनाये बैठी है, उसे भी न देख पाई, अनु दीदीसे कह देना वन्दना।" मजेकी बात तो यह है कि कुछ ही देर पहले उसने ज़ोरके साथ कहा था कि उसके एक तरफ तो हैं पति और दूसरी ओर पुत्र,—संसारमें उसका कुछ भी नुकसान नहीं हुआ। बात उसकी कितनी जबरदस्त झूठ थी।

"भाभी, डर क्या गई हो!"—बाहरसे द्विजदासका फिर तकाजा आया।

"आ रही हूँ भइया, हो गया।"—कहती हुई वह जल्दीसे उसके बाहर चल दी।

× × ×

स्टेशनसे द्विजदास जब अकेला लौटा तब शाम हो चुकी थी। मकान-भरमें हर जगह बत्तियाँ जल रही हैं, स्त्री-पुरुष सब अपने-अपने काममें पूर्ववत् ही लगे हैं, इस बड़े परिवारमें कहीं कौन-सा विप्लव हो गया, कोई जानता भी नहीं। बाहरकी तरफ ऊपर विप्रदासकी बैठकके दरवाजे-खिड़की सब बन्द हैं,—उधरकी तरफ अँधेरा पड़ा है। ऐसे तो कितने ही दिन बत्ती नहीं जलती, जब विप्रदास कलकत्ते रहते हैं। इसमें अनहोनी-सी कोई बात नहीं। [illegible] बाईं तरफवाले कमरेमें [illegible] जलता है, खिड़कीसे दिखाई दिया कि वह आरामकुर्सी पर पैर फैलाये पड़ा है और बत्तीके उजालेमें बड़े ध्यानसे कोई किताब पढ़ रहा है। कॉलेजकी गैर हाजिरी करके अक्षय बाबू अब भी यहीं मौजूद हैं, उनका कमरा भीतरमें पड़ता है। वे बाहर ही हैं या बाहर हवा खाने गये हैं, कुछ मालूम न हो सका। बाहरसे उसके आँगनमें पैर रखते ही द्विजदासकी निगाह पहुँची तिमंजिलेके [illegible]-कमरेपर। [illegible] बाद वहाँ मानो अँधेरा ही रहता है, आज लेकिन खुली हुई खिड़कीमेंसे उजाला निकल रहा था। उसे सन्देह न रहा कि वहाँ वन्दना होगी। किताबें पढ़नेको नहीं, बल्कि आँखें पोंछनेके लिए और लोगोंके संसर्गसे आत्म-रक्षा करनेके लिए उसने एकान्तमें आकर आश्रय लिया है। आजकी रात किसी तरह कट जानेके बाद कल वह चली जायगी—बहुत दूर बम्बईकी तरफ, जहाँ वह पल-पलकर इतनी बड़ी हुई है—जहाँ उसके पिता हैं आत्मीय स्वजन हैं, और हैं कितने ही दिनोंके मित्र और सखी-सहेलियाँ। किसी दिन किसी बहानेसे फिर कभी उसका इस गाँवमें आना संभव हो सकता है—यह सोचा भी नहीं जा सकता। विचित्र है यह दुनिया,—न जाने कितनी

अद्भुत और अनहोनी घटनाएँ पल पलक मारते ही घट जाया करती हैं। एक-एक करके उस प्रथम दिनसे लेकर आजतककी सब बातें द्विजदासको याद आने लगीं। वही अचानक आना और फिर अचानक नाराज होकर चला जाना। बीचमें सिर्फ कुछ घंटोंकी बातचीत। उस दिन वन्दनाने हँसते हुए कहा था—सिर्फ आँखोंका परिचय ही नहीं है द्विजू बाबू, नहीं तो, देवरके गुण अवगुण लिख भेजनेमें बौदीने कभी आलस्य नहीं किया। मैं सब-कुछ जानती हूँ, आपके सम्बन्धमें मुझसे कोई बात छिपी नहीं है। जब जब घर-बाहरके लोगोंको आपने जलाया-सताया है तब-तब उसकी सारी खबर पहुँचती रही है मेरे पास। द्विजदासने पूछा था—हम परस्पर कोई किसीको जानते नहीं, फिर भी आपके सामने मेरी बदनामी फैलानेमें सार्थकता क्या थी? वन्दनाने हँसके जवाब दिया था—शायद मैं समझती हूँ कि बौदीको असलमें आप ऐसे नहीं सुहाते,—यह उसीका बदला है!

इसके बाद दोनोंने ही हँसके बातको परिहासमें रूपान्तरित कर दिया था; परन्तु उस दिन दोनोंमेंसे किसीने भी न सोचा था कि यह था सतीका द्विजूके प्रति वन्दनाका चित्त आकर्षित करनेका कौशल। शायद कभी अपनी बहनको अपने पास लाकर रख सके, शायद कभी उसके हाथ सौंपकर देवरको शासनमें लाया जा सके। परन्तु वैसा नहीं हुआ, उसकी मनकी कल्पना मनहीमें छिपी रह गई। आज भी दोनोंमेंसे कोई भी उन चिट्ठियोंके मानी न समझ सका।

द्विजदास सीधा ऊपर चला गया। परदा हटाकर भीतर जाकर देखा—वन्दनाकी गोदमें किताब खुली पड़ी है, पर वह मुँह जंगलेके बाहर देखती हुई स्थिर बैठी है। एक पंक्ति भी पढ़ी होगी कि नहीं शक है। सब समझते हुए भी सिर्फ बात शुरू करनेकी गरजसे द्विजदासने पूछा—"कौन-सी किताब पढ़ रही थीं?"

वन्दनाने किताब बन्द करके मेजपर रख दी, और वह खड़ी होकर पूछने लगी—"आपको लौटनेमें इतनी देर कैसे हुई? कलकत्तेकी गाड़ी तो कभीकी चली गई होगी?"

द्विजदासने कहा—"देर ही सही, पर लौट तो आया आखिर। नहीं भी तो लौट सकता था?"

वन्दनाने कहा—"आसानीसे।"

उसका खयाल आया, और अब फिर उसकी याद आ गई, बोली—"नीमू भी न जाने कहाँ डुबकी लगाये बैठी है, उसे भी न देख पाई, अनु दीदीसे कह देना वन्दना।' मजेकी बात तो यह है कि कुछ ही देर पहले उसने जोरके साथ कहा था कि उसके एक तरफ तो है पति और दूसरी ओर पुत्र—दोनोंमें उसका कुछ भी नुकसान नहीं हुआ। बात उसकी कितनी असत्य थी!

"भाभी, कह क्या रही हो!"—बाहरसे द्विजदासका फिर तकाजा आया।

"आ रही हूँ भइया, हो गया।"—कहती हुई सती जल्दीसे उठके बाहर चल दी।

× × ×

स्टेशनसे द्विजदास जब अकेला लौटा तब शाम हो चुकी थी। मकान-भरमें हर जगह बत्तियाँ जल रही हैं, स्त्री-पुरुष सब अपने-अपने काममें पूर्ववत् ही व्यस्त हैं, इस बड़े परिवारमें कहाँ कौन-सा विच्छेद हो गया, कोई जानता भी नहीं। बाहरकी तरफ ऊपर विप्रदासकी बैठकके दरवाजे-खिड़के सब बन्द हैं,—उसकी तरफ अँधेरा पड़ा है। ऐसे तो कितने ही दिन बत्ती नहीं जलती, जब विप्रदास कलकत्ते रहते हैं। इसमें अनहोनी-सी कोई बात नहीं। कोनेकी बाईं तरफवाले कमरेमें प्रकाश जल रहा है, खिड़कीसे दिखाई दिया कि वह आरामकुरसीपर पैर फैलाये पड़ा है और बत्तीके उजालेमें बड़े ध्यानसे कोई किताब पढ़ रहा है। कालेजकी गैर-हाजिरी करके अक्षय बाबू अब भी यहीं मौजूद हैं, उनका कमरा मालूम पड़ता है। वे शायद ही हैं या बाहर हवा खाने गये हैं, कुछ मालूम न हो सका। भाइसे उतरके आँगनमें पैर रखते ही द्विजदासकी निगाह पड़ी निचली मंजिलके लाइब्रेरी-कमरेपर। शामके बाद वहाँ प्रायः अँधेरा ही रहता है, आज लेकिन खुली हुई खिड़कियोंसे उजाला निकल रहा था। उसे सन्देह न रहा कि वहाँ वन्दना होगी। किताबें पढ़नेका नहीं, बल्कि आँखें पोंछनेके लिए और अनेक संकटसे आत्म-रक्षा करनेके लिए उसने पुस्तकालयमें आकर आश्रय लिया है। आजकी रात किसी प्रकार काट देनेके बाद कल वह चली जायगी—बहुत दूर बम्बईकी तरफ, जहाँ वह पल-पनपकर इतनी बड़ी हुई है—जहाँ उसके पिता हैं, आत्मीय स्वजन हैं, और हैं कितने ही विनोद मित्र और सखी-सहेलियाँ। किसी दिन किसी बहानेसे फिर कभी उसका इस गाँवमें आना संभव हो सकता है—यह सोचा भी नहीं जा सकता। विचित्र है यह दुनिया,—न जाने कितनी

अद्भुत और अनसोची घटनाएँ यहाँ पलक मारते ही घट जाया करती हैं। एक-एक करके उस प्रथम दिनसे लेकर आजतककी सब बातें द्विजदासको याद आने लगीं। वही अचानक आना और फिर अचानक नाराज होकर चला जाना। बीचमें सिर्फ कुछ घंटोंकी बातचीत। उस दिन वन्दनाने हँसते हुए कहा था—सिर्फ आँखोंका परिचय ही नहीं है द्विजू बाबू, नहीं तो, देवरके गुण अवगुण लिख भेजनेमें जीजीने कभी आलस्य नहीं किया। मैं सब-कुछ जानती हूँ, आपके तरफसे मुझसे कोई बात छिपी नहीं है। जब जब घर-भरके लोगोंको आपने जलाया-सताया है तब-तब उसकी सारी खबर पहुँचती रही है मेरे पास। द्विजदासने पूछा था—हम परस्पर और किसीको जानते नहीं, फिर भी आपके सामने मेरी बदनामी फैलानेमें सार्थकता क्या थी? वन्दनाने हँसके जवाब दिया था—शायद मैं समझती हूँ कि जीजीको असलमें आप देखे नहीं सुहाते,—यह उसीका बदला है।

इसके बाद दोनोंने ही हँसके बातको परिहासमें रूपान्तरित कर दिया था; परन्तु उस दिन दोनोंमेंसे किसीने भी न सोचा था कि यह था जीजीका द्विजूके प्रति वन्दनाका चित्त आकर्षित करनेका कौशल। शायद कभी अपनी बहनको अपने पास लाकर रख सके, शायद कभी उनके हाथ सौंपकर देवरको शासनमें लाया जा सके। परन्तु ऐसा नहीं हुआ, उनकी मनकी कल्पना मनहीमें छिपी रह गई। आज भी दोनोंमेंसे कोई भी उन चिट्ठियोंके मानी न समझ सका।

द्विजदास सीधा ऊपर चला गया। परदा हटाकर भीतर जाकर देखा—वन्दनाकी गोदमें किताब खुली पड़ी है, पर वह खुद जंगलेके बाहर देखती हुई स्थिर बैठी है। एक पंक्ति भी पढ़ी होगी कि नहीं शक है। सब समझते हुए भी सिर्फ बात शुरू करनेकी गरजसे द्विजदासने पूछा—"कौन-सी किताब पढ़ रही थीं?"

वन्दनाने किताब बन्द करके मेजपर रख दी, और वह खड़ी होकर पूछने लगी—"आपको लौटनेमें इतनी देर कैसे हुई? कलकत्तेकी गाड़ी तो कभीकी चली गई होगी?"

द्विजदासने कहा—"देर ही सही, पर लौट तो आया आखिर। नहीं भी तो लौट सकता था!"

वन्दनाने कहा—"आसानीसे।"

द्विजदास एक क्षण चुप रहकर बोला—"ठीक, यही बात पहले मेरे मनमें उठी थी। गाड़ी छूट गई, खिड़कीसे मुँह निकालकर बासू हाथ हिलाने लगा, क्रमशः उसका नन्हा-सा हाथ गाड़ी मुड़ते ही ओटमें छिप गया। पहले यही मनमें आया कि उसके साथ ही चला जाता तो ठीक रहता—"

वन्दनाने कहा—"आप बासूको बहुत प्यार करते हैं, न?"

द्विजदासने जरा सोचकर कहा—"शायद, जवाब क्या दूँ, इन सब चीजोंका जवाब मैं स्वयं ही नहीं जानता। प्रकृति मेरी ऐसी रूखी, ऐसी नीरस है कि दो ही क्षणमें सब छोड़कर सूखी बालूकी तरह फिर ज्योंकी त्यों चमक उठती है। प्लेटफार्मपर बड़े-बड़े आँसुओंमें आँख भर आये लेकिन फिर उसी वक्त अपने आप ही सूख गये,—आपका विश्वासतक न रह गया।"

वन्दनाने कहा—"यह एक प्रकारका भगवान्‌का आशीर्वाद है।"

द्विजदास कहने लगा—"क्या मालूम, हो भी सकता है। और, सच पूछो तो इस बासूके डरसे ही माँ अबतक दरवाजा बन्द किये पड़ी हैं। नहीं तो न भाई साहबके लिए, न भाभीके लिए। माँ सोचती हैं बासूको शायद उन्होंने पाला-पोसा है, पर हिसाब लगाकर देखा जाय तो देखेंगी कि उसकी उमरका आधा समय माँका बीता है तीर्थोंमें। तब किसके पास रहता था वह? मेरे पास। टाइफॉइड बुखारमें बेहोश पड़ा था आठ-आठ दिन? मैं। आज आये कल किसने उसे कपड़े-लत्ते पहनाये? मैंने। उसके कपड़े-लत्ते किसकी आलमारीमें रहते थे? मेरीमें। उसकी किताब-कापी सिलेट मेरी ही टेबिलपर रखी थी। उसके सोनेका बिस्तर मेरी ही खाटपर लगता था। माँ खींचातानी करके ले भी जाती थीं—पर कितनी ही रातोंको वह बैठे ही जगता, भाग आता मेरे कमरेमें।"

वन्दना एकटक उसके मुँहकी ओर देख रही थी, बोली—"तो भी तो आपकी आँखोंके आँसू सूखनेमें एक क्षणसे ज्यादा नहीं लगा।"

द्विजदासने कहा—"नहीं। ऐसा ही मेरा स्वभाव है। उसके विषयमें मुझे सिर्फ यही चिन्ता है कि वह जा पड़ेगा अपने माँ-बापके हाथोंमें। आप कहेंगी कि संसारमें यही तो स्वाभाविक है इसमें डरनेकी क्या बात है? परन्तु स्वाभाविक होनेसे ही मेरे लिए बड़ा-भारी संकट है कि इतनी बड़ी उलटी बात आदमीको समझाऊँ कैसे?"

वन्दनाने यह नहीं कहा कि समझानेकी ऐसी जरूरत ही क्या है। दूसरी

और माँ-बापके विरुद्ध इतना बड़ा अभियोग सत्य हो सकता है, यह विश्वास करना भी उसके लिए कठिन है, खासकर विप्रदासके विरुद्ध। किन्तु कोई तर्क न उठाकर वह चुप रह गई।

दूसरे ही क्षण अपने वक्तव्यको स्पष्टतर करनेके लिए द्विजदास खुद ही कहने लगा — "एक बातसे सान्त्वना है मुझे कि भाभी साथ हैं, नहीं तो भाई साहबके हाथ सौंपकर मुझे रत्तीभर भी शान्ति न रहती।"

वन्दनाने कहा—"आप तो निर्विकार हैं, बाबूकी भलाई-बुराईसे आपको मतलब ही क्या! जो चाहे हो, होता रहे न!"

सुनकर द्विजदासके चेहरेपर एक सुतीव्र वेदनाकी छाया-सी पड़ गई, किन्तु वह मौन रहा।

वन्दनाने कहा—"भाई साहबके प्रति गंभीर विश्वास और श्रद्धाकी बात एक दिन स्वयं आपके ही मुँहसे सुनी थी। वह भी क्या उन आँसुओंकी तरह ही पलक मारते सूख गई! या क्या आदमी अपने दोषसे निःस्व या सर्वस्वान्त हो जाता है उसपर विश्वास नहीं किया जा सकता—आखिर क्या यही आप कहना चाहते हैं!"

द्विजदास विस्मय और व्यथासे विह्वल आँखोंसे क्षण-भर उसकी ओर देखता रहा, फिर दोनों हाथ जोड़कर माथेसे लगाता हुआ आहिस्तेसे बोला—"नहीं, यह मैं नहीं कहना चाहता। मैं कह रहा था, प्यास बुझानेके लिए पानी माँगने कोई समुद्रके पास जाकर हाथ न फैलाए। पर, भाई साहबके सम्बन्धमें अब और आलोचना रहने दो, बाहरवाले उसे नहीं समझेंगे।"

इस बातसे वन्दनाको बड़ी-भारी भीतरी चोट पहुँची, पर प्रतिवादके लिए उसे कुछ ढूँढे नहीं मिला, वह स्तब्ध रह गई।

द्विजदासने अब बिलकुल दूसरी ही बात छेड़ी, उसने पूछा—"आप क्या कल ही बम्बई चली जायँगी?"

वन्दनाने कहा—"हाँ।"

"अशोक बाबू ही ले जायँगे?"

"हाँ, वे ही पहुँचा देंगे।"

द्विजदासने कहा—"बम्बई मेल यहाँसे बहुत रात बीते छूटती है। कल आप लोगोंको मैं स्टेशन पहुँचा आऊँगा। पर दिनमें न रह सकूँगा, जरा कुछ

काम है।"

"बाबूजीको एक तार भिजवा दीजिएगा।"

"अच्छी बात है।"

दो-एक मिनट चुप रहकर, सकुचाते हुए द्विजदासने कहा—"एक बात आपसे पूछूँगा—अक्सर सोचा करता हूँ, पर नाना कारणोंसे दिन बीतते चले गये पूछ न सका। कल आप चली ही जायँगी, फिर मौका नहीं मिलेगा। अगर नाराज न हों, तो कहूँ?"

"कहिए।"

देर होने लगी।

वन्दनाने कहा—"नाराज न होऊँगी, आप बेधड़क कह डालिए।"

द्विजदासने कहा—"कलकत्तेसे माँ एक दिन नाराज होकर मामीको लेकर अचानक चली आई थीं—याद है?"

"है।"

"कारण न मालूम होनेसे आप अचम्भेमें पड़ गई थीं। मन आपका बहुत खराब हो गया था। मेरे कमरेमें आकर उस दिन आपने एक बात कही थी कि आपको मैं अच्छा लगता हूँ। याद है?"

"है। पर बहुत शरमके साथ ही याद पड़ती है वह बात।"

"तो उस बातका मूल्य क्या कुछ भी नहीं?"

"नहीं।"

द्विजदास क्षण-भर स्तब्ध रहकर बोला—"मैं भी ऐसा ही सोचता हूँ। उसका मूल्य कुछ भी नहीं।"

फिर कुछ देर बाद कहने लगा—"मामीने कहा था कि आपकी मौसी चाहती हैं कि अशोकके साथ आपका ब्याह हो। सो क्या तय हो गया?"

वन्दनाने कहा—"यह हमारा पारिवारिक विषय है। बाहरवालोंसे इसकी आलोचना नहीं की जा सकती।"

द्विजदासने कहा—"आलोचना तो नहीं करता, सिर्फ एक बात जानना चाहता हूँ।"

वन्दनाने तीखे स्वरसे कहा—"आपके साथ मेरा ऐसा कोई आत्मीयताका सम्बन्ध नहीं कि जिससे ऐसी बात आप पूछ सकते हों। द्विजू बाबू, आप शिक्षित

पुरुष हैं, ऐसा कुत्सित कल्पनाजनक है।"

सुनके द्विजदास सचमुच ही लज्जित हो उठा, उसका चेहरा म्लान हो गया। बोला—"मुझसे गल्ती हो गई बन्दना। स्वभावसे मैं कुत्सित नहीं हूँ, दूसरोंकी बात जाननेका लोभ मुझमें बहुत कम है। मगर न जाने कैसे मुझे ऐसा लगता था कि संसारमें जो बात किसीसे भी नहीं कह सकता वह आपसे कह सकता हूँ। जिस विपत्तिमें और किसीको भी पुकारा नहीं जा सकता, आपको पुकार सकता हूँ। आप—"

उसकी बातके बीचमें ही बन्दना हँस पड़ी, बोली—"पर अभी अभी तो आप कह रहे थे कि भाई-भाभीके विषयमें बाहरवालोंके साथ आलोचना आप नहीं करना चाहते। मैं तो गैर ही हूँ, बिलकुल बाहरकी!"

द्विजदासने कहा—"अगर यही बात है तो फिर आपने ही क्यों उनके सम्बन्धमें मुझपर अश्रद्धाका आरोप लगाया? जानती नहीं आप, मेरे अन्दर क्या हो रहा है!"

बत्तीके प्रकाशमें स्पष्ट दिखाई दिया कि उसकी आँखोंकी कोरें आँसुओंसे भर आई हैं।

इतनेमें मैत्रेयीने कमरेमें प्रवेश किया। उसने कहा—आप कब लौटे, हम लोगोंको तो कुछ मालूम ही नहीं हुआ।"

द्विजदास मुड़कर खड़ा हो गया, बोला—"मालूम करनेकी कोई ज्यादा जरूरत थी क्या!"

मैत्रेयीने कहा—"यह खूब कहा! आपने कल नहीं खाया, आज भी नहीं खाया,—यह और किसीको मालूम हो या न हो, मुझे तो मालूम है। चलिए माँके कमरेमें।"

"लेकिन माँके कमरेका तो दरवाजा बन्द है।"

मैत्रेयीने कहा—"था तो बन्द ही, पर मैंने पीछा नहीं छोड़ा। सिर धुन धुनकर दरवाजा खुलवा लिया है, उन्हें नहला-धुला दिया है, संध्या-पूजा भी करवा दी है, जबरदस्ती कुछ फल खिला दिये हैं, तब पिण्ड छोड़ा है। कह रही थीं—द्विजू न खायगा तो मुझसे न खाया जायगा। मैंने कहा—सो नहीं होनेका माँ, आपका यह हुक्म मैं नहीं मान सकूँगी। लेकिन तबसे हम सभी आपकी बाट देख रही हैं। चलिए, आपका खाना रख आई हूँ माँके कमरेमें।"

द्विजदास दंग रह गया। इसके मुँहसे इतनी बात उसने पहले कभी नहीं सुनी थी। बोला—"चलिए।"

मैत्रेयीने वन्दनाको लक्ष्य करके कहा—"आप भी आइए। माँ आपको बुला रही हैं।"—इतना कहकर वह द्विजदासको एक प्रकारसे गिरफ्तार करके ही ले गई वहाँसे। उनके पीछे-पीछे गई वन्दना।

अपने कमरेमें दयामयी बिस्तरपर लेटी हुई थीं। अनुज्ज्वल दीपालोकमें उनके शोकाच्छन्न चेहरेकी तरफ देखनेसे स्पष्ट मालूम होता है। आँखें सूजकर लाल हो गई हैं। थोड़ी देर पहले नहानेसे माथेके बाल भीगे और बिखरे हुए हैं। सिरहाने बैठी कल्याणी माथेपर हाथ फेर रही है दूसरी ओर कुरसीपर शशधर बैठा है, कुछ दूरीपर एक कुरसीपर अक्षय बाबू बैठे हुए हैं। द्विजदासके कमरेमें घुसते ही दयामयीने करवट लेकर मुँह फेर लिया और दूसरे ही क्षण एक अस्फुट क्रन्दनके अवरुद्ध वेगसे उनका सारा शरीर काँपने लगा। वन्दना चुपकेसे धीरे धीरे जाकर उनके पैरोंके पास बैठ गई। इतनी बड़ी वेदनाके दृश्यकी शायद वह कभी कल्पना भी न कर सकती। बहुत देरतक सभी नीरव रहे, इस स्तब्धताको भंग करके सबसे पहले बात की शशधरने। बोला—"क्यों, सुना है कि तुम बिना खाये-पीये हो—जो भी थोड़ा-बहुत खा सको, खा लो।'

द्विजदासने कहा— हाँ।"

जमीन साफ करके मैत्रेयी थाली लगा रही थी, उस तरफ देखते हुए शशधरने कहा—"तुम्हें स्टेशनमें इतनी देर कैसे हो गई? वे लोग गये तो हैं रातकी गाड़ीसे?"

हाँ।"

शशधरने जरा हँसनेका प्रयत्न करते हुए कहा—"और मजेकी बात यह कि कलकत्तेका मकान भी सुना है तुम्हारा ही है।"

द्विजदासने कहा—"क्यों, मेरे मकानमें भाई-साहबका प्रवेश निषिद्ध है क्या?"

शशधरने कहा—"सो नहीं कहता। बल्कि वे ही ऐसा-कुछ भाव दिखला गये थे। इस मकानको छोड़कर भी तो उनके जानेकी जरूरत नहीं थी, आपसमें ही कोई निबटारा कर-करा लेते।"

द्विजदासने कहा— निबटारेका रास्ता अगर खुला था तो आपने कर

क्यों नहीं किया ?"

"मैं कर लेता ?"—शशधरने अत्यन्त आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"यह कैसी बात है तुम्हारी ? मेरा अपमान तो किया उन्होंने और निपटारा कर लेता मैं ? सलाह तो बुरी नहीं !"—कहकर वह जबरदस्ती खींच-खाँचके हँसने लगा। उसकी हँसी रुकनेपर द्विजदासने कहा—"सलाह तो आपने बुरी नहीं दी शशधर बाबू। औरतें कहा करती हैं पहाड़की ओट रहना,—सो भाईसाहब थे पहाड़, आप थे उनकी ओटमें। अब आमने-सामने खड़े होंगे हम और आप। मान अपमानका खेल अभी खतम थोड़े ही हो गया है,—अभी तो शुरू ही हुआ है।"

"इसके मानी ?"

"मानी यह कि मैं आपका बाल्य-बन्धु विप्रदास नहीं हूँ,—मैं हूँ द्विजदास।"

शशधरके चेहरेकी हँसी धीरे धीरे गायब हो गई, उसने भयकर गम्भीर कण्ठसे पूछा—"तुम्हारी बातका अर्थ क्या है, जरा खुलासा करके तो कहो ?"

बड़े भाईका मित्र होनेके कारण शशधर द्वारा 'तुम' कहे जानेपर भी द्विजदास उससे 'आप' ही कहा करता था बोला—'आपकी यह बात मैं मानता हूँ कि अर्थ आज स्पष्ट हो जाना ही अच्छा है। मेरे भाईसाहब उस श्रेणीके आदमी हैं जो सत्यकी रक्षाके लिए सर्वस्वान्तक हो सकते हैं, आश्रितोंके लिए देहका मस्तक काटके दे सकते हैं; उन जैसे लोगोंमें 'आदर्श' नामकी न-जाने कौन-सी एक विचित्र चीज होती है जिसके लिए ऐसा कोई काम नहीं जो वे न कर सकते हों —वे लोग एक तरहके पागल हैं—इसीसे उनकी ऐसी दुर्दशा होती है। परन्तु मैं नितान्त साधारण आदमी हूँ, मेरा आपके साथ ज्यादा प्रभेद नहीं है। ठीक आपकी ही तरह मुझमें ईर्ष्या है, घृणा है, और बदला लेनेकी शैतानी बुद्धि भी है, जिससे भाई-साहबको आपने धोखा देकर ठगा होगा तो मैं भी आपको ठगूँगा, उनके नामसे जालसाजी की होगी तो मैं भी आपको आपसमें जैसी दशा दिखाऊँगा,—इसमें कम कोशिश करनेमें कोई त्रुटि न रखूँगा जब तक कि दोनों पक्ष ही घरके भिखारी नहीं हो जाते। किस-बूढ़ोंके मुँहसे सुना है कि ऐसी ही शायद इसकी परिणति है। सो अब यही होने दो।"

शशधर चिल्लाकर कह उठा—"माँ, सुन रही हैं अपने द्विजूकी बातें ? जो मनमें आया कह दिया—इसे मना कर दीजिए।"

द्विजदासने कहा—"माँसे शिकायत करनेमें कोई लाभ नहीं शशधर

वे जानती हैं कि मैं विपिन नहीं हूँ,—मातृवाक्य द्विजूके लिए वेद-वाक्य नहीं है। द्विजू ताल ठोककर स्पर्धा करनेका अभिनय नहीं करता, वे इस बातको समझती हैं।"

किसीके मुँहसे कोई बात नहीं निकली। इन दोनोंका अकस्मात् इस तरहका वाद-प्रतिवाद मानो बिल्कुल अनहोनी बात थी। विस्मय और डरसे सबके सब स्तब्ध हो गये। शशधर समझ गया कि यह मजाक नहीं, अत्यन्त कठोर संकल्प है। उत्तर देते हुए अब उसके गलेमें पहले जैसा जोर नहीं रह गया था, फिर भी जोर देकर ही कह उठा—"बस यहीं खतम है। यहाँ अब मैं पानी-तक ग्रहण न करूँगा।"

द्विजदासने कहा—"कैसे अबतक ग्रहण कर रहे थे, यही तो आश्चर्य है शशधर बाबू!"

कल्याणी रो दी, बोली—"छोटे भइया अन्तमें तुम ही क्या हम लोगोंको मार डालना चाहते हो? अपनी माँके पेटके सगे भाई हो तुम, तुम्हीं करोगे हम लोगोंका सर्वनाश?"

द्विजदासने कहा—"तू समझती है कि आँखोंसे आँसू टपकाकर सर्वनाशको बार-बार रोका जा सकता है? कहीं भी कोई विचार न होगा तुम्हीं लोगोंकी ही होगी बार-बार जीत? माना कि भाई-साहब नहीं हैं, फिर भी तुझे अब खानेको न मिले; आना मेरे पास तब तेरा रोना-बिलखना सुनूँगा—अभी नहीं।"

दयामयी चुपचाप बहुत सह चुकी थीं अब उनसे न सहा गया, वे एकाएक चीत्कार कर उठीं—"द्विजू, तू जा यहाँसे। इस तरह गाली-गलौज करना क्या विपिन ही तुझे सिखा गया है?"

"कौन सिखा गया कहा? विपिन?"

"हाँ, वही। जरूर वही सिखा गया है?"

द्विजदासके ओठ क्षण-भरके लिए सिकुड़ गये, बोला—"मैं जा रहा हूँ। लेकिन माँ, अपनेको तुमने बहुत छोटा कर डाला है, अब और छोटा न बनाओ!"—कहता हुआ वह बाहर चला गया।

अपने कमरेमें आकर द्विजदास चुपचाप बैठा हुआ था। करीब घण्टे भर बाद मैत्रेयी वहाँ आई। उसके हाथमें परोसी हुई थाली थी, बोली—"फिरसे सब खाना बनाके लाई हूँ, खाने बैठिए। इसी कमरेमें पानी लाया हूँ?"

"यह आपसे किसने कहा ?"

"किसीने नहीं। कलसे आपने कुछ खाया-पीया नहीं, सो क्या मैं नहीं जानती ?"

"इतने लोगोंके रहते हुए आपको जाननेकी आवश्यकता ?"

मैत्रेयी सिर झुकाये चुपचाप खड़ी रही। जवाब न पाकर द्विजदासने कहा—"अच्छा, यहीं रख दीजिए। अभी भूख नहीं है, अगर लगी तो बादमें खा लूँगा।"

मैत्रेयी एक किनारे पाया बिछाकर, उसपर थाली रखकर, जलनके साथ उसे ढाँक-ढूककर चली गई। उसने ज्यादा आग्रह नहीं किया, पर भी नहीं कहा कि ठंडा हो जानेसे खाना अच्छा नहीं लगेगा।

रातके करीब बारह बजे होंगे, द्विजदास कुरसी छोड़कर उठ खड़ा हुआ। मामूली थोड़ा-सा खा-पीकर सो जाऊँ—यह सोचकर हाथ-मुँह धोनेके लिए जैसे ही बाहर गया, देखा कि दरवाजेके पास कोई खड़ा है। बरामदेमें बहुत कम प्रकाश था, पहचान न सकनेसे उसने पूछा—"कौन ?

"मैत्रेयी।"

द्विजदासके आश्चर्यकी सीमा न रही, बोला—"इतनी रातको आप यहाँ क्यों ?"

"खाते वक्त किसी चीजकी अगर जरूरत पड़ गई—इसीसे बैठी हूँ।"

"यह आपकी बहुत ज्यादती है। पहले तो जरूरत ही नहीं पड़ती और पड़ती भी तो क्या घरमें और कोई नहीं है ?"

मैत्रेयीने मृदु कण्ठसे कहा—"कई दिनोंके निरन्तर परिश्रमसे सब थके हुए हैं। कोई जाग नहीं रहा है, सब सो गये।"

द्विजदासने कहा—"आपने खुद भी तो कम मेहनत नहीं की है, तो फिर आप क्यों नहीं सोईं ?"

मैत्रेयीने कोई जवाब नहीं दिया, चुप रही।

द्विजदासका अपेक्षाकृत रूखा स्वर अब बहुत-कुछ मुलायम हो आया, बोला—"इस तरह बैठा रहना बड़ा दिखाई देता है। आप भीतर चलके बैठिए, जबतक खाऊँ—निरीक्षण करती रहें।"—यह कहकर वह हाथ-मुँह धोने पानीवाली कोठरीमें चला गया।

इसके पहले मैत्रेयीके साथ द्विजदास बहुत कम ही बोला है। जरूरत भी नहीं पड़ी, और इच्छा भी नहीं हुई। अब बातचीत किस ढंगसे करे, यह सोचता हुआ वह वापस आके देखता है कि न तो वहाँ माँजी हैं और न मैत्रेयी खुद। इस बीचमें क्या बात हो गई, इसका अनुमान लगानेसे पहले ही वह वापस आ गई। बोली—ढँकना उठाकर देखा कि सब सूखके कड़ी हो गया है, इसीसे फिरसे लाने गई थी। बैठिए।"

द्विजदासने कहा—'इसमेंसे भाप निकल रही है! इतनी रातको गरमागरम चीजें कहाँसे मिल गईं?"

मैत्रेयीने कहा—"सब कुछ तैयार रख छोड़ा था। जब आपने कहा कि खानेमें देर लगेगी तभी समझ लिया कि सब चीज तैयार न रखनेसे आपका खाना ही न होगा।"

द्विजदास खाने बैठा तो पहले उसने रन्धन-नैपुण्यकी प्रशंसा करते हुए जान लिया कि उनमेंसे कई चीजें खुद मैत्रेयीके हाथकी बनाई हुई हैं। उन्हें वह बार-बार अनुरोध करके ज्यादा-ज्यादा खिलाने लगी। इस विद्यामें वह कुशल है, जानती है कि कैसे खिलाया जाता है।

द्विजदासने हँसते हुए कहा—'ज्यादा खानेसे तबीयत खराब न हो जायगी?"

"नहीं, नहीं होगी। यत्नसे तैयार किये हुए हैं, इसे ज्यादा खाना नहीं कहते।"

"लेकिन मैं ही तो अकेला बगैर खाये नहीं हूँ, यहाँ और भी तो बहुत-से होंगे।"

मैत्रेयीने कहा—"बहुतोंकी बात मुझे नहीं मालूम, पर माँको मैं किस कठिनाईसे और कैसे कुछ खिला सकी हूँ सो मैं ही जानती हूँ। न रहती तो न जाने कितने दिनोंतक दरवाजा बन्द किये पड़ी रहतीं। सोचती हूँ, तो डर जाती हूँ। लेकिन आप मुझे 'आप' न कहा कीजिए। सुनती हूँ तो शरम आती है। मैं कितनी छोटी हूँ आपसे!"

द्विजदासने कहा—"सो ठीक है, तुमसे अब 'आप' न कहूँगा। लेकिन यह तो बताओ, तुमने भइया-भाभीकी भी कुछ खबर ली?"

मैत्रेयीने कहा—"उन्हें और क्या हो गया? वह भी क्या बगैर-खाये हैं?"

अबतक मैत्रेयीकी बातें उसे बहुत अच्छी लग रही थीं, एक तरहकी प्रसन्नताकी हवा इस दुःखमें भी मानो उसके मनको कुछ-कुछ स्पर्श कर जाती थी, परन्तु इस अन्तकी बातसे उसका चित्त एक क्षणमें विरूप हो उठा, बोला—"अनुदीदीके बारेमें इस तरह बात नहीं की जाती। शायद सुन रखा होगा कि वे हमारे यहाँकी दासी हैं, पर इस घरमें उनसे बढ़कर मेरा और कोई नहीं है। हम लोगोंको पाल-पोसकर उन्होंने इतना बड़ा किया है।"

मैत्रेयीने कहा—"सो सुना है। पर ऐसे तो कितने ही घरानोंमें पुरानी दासियाँ लड़के-बच्चोंको पालती-पोसती हैं। इसमें नई बात कौन-सी है? अच्छा, आपका भोजन हो चुकनेपर मैं उनकी खबर लूँगी।"

द्विजदास जवाब बगैर दिये क्षणभर उसके मुँहकी ओर देखता रहा। सहसा उसे ऐसा लगा कि ठीक ही तो है, ऐसा तो कितने ही परिवारोंमें हुआ करता है। जो भीतरकी बात नहीं जानता उसके निकट, फिर बाहरकी घटनामें, अत्यन्त आश्चर्यकी बात इसमें क्या है? उसकी कठोर विचारधारा हल्की हो आई। बोला—"अनु-दीदीने न भी खाया हो तो इसमें रात बीत न जायेगी। उनके लिए आज चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं।"

फिर कई मिनटतक कोई कुछ न बोला। द्विजदासने पूछा—"मैत्रेयी, गैरोंकी इस तरह सेवा करना तुमने सीखा किससे? अपनी माँसे?"

मैत्रेयीने कहा—"नहीं तो, अपनी जीजीसे। उनके समान पतिकी सेवा करते हुए मैंने किसीको नहीं देखा।"

द्विजदासने हँसकर कहा—"पति क्या गैर हुआ करते हैं? मैं गैरोंकी सेवा करनेकी बात पूछ रहा था?"

"ओह—गैरोंकी!"—कहकर तुरत ही मैत्रेयीने हँसकर शरमाके मुँह नीचे झुका लिया।

द्विजदासने कहा—"अच्छा खैर, कहो, अपनी जीजीकी ही बात कहो।"

मैत्रेयीने कहा—"जीजी अब जीती नहीं हैं। तीन साल हुए, एक लड़का और दो लड़कियाँ छोड़कर मर गई हैं। चौधरी-साहबने साल-भर भी धीरज नहीं धरा, फिर ब्याह कर लिया है। कितना बड़ा अन्याय है, बताइए तो!"

द्विजदासने कहा—"पुरुष ऐसा ही किया करते हैं। वे इसे अन्याय नहीं मानते।"

"आप भी ऐसा करेंगे क्या ?"

"पहले एक तो कर लूँ, उसके बाद दूसरीके बारेमें सोचूँगा ।"

मैत्रेयीने कहा—"ऐसा कहनेसे तो नहीं चलेगा । तब आपकी भाभी मौजूद थीं, पर अब वे यहाँ नहीं हैं । माँकी देख भाल कौन करेगा ?"

विप्रदासने कहा—"कौन देख-भाल करेगा, सो मैं नहीं जानता मैत्रेयी, शायद बहकी-कमाई ही उनकी देख भाल करे, या फिर और कोई आकर इसका भार ले,—संसारमें कितनी असंभव बातें संभव हो जाती हैं, कोई नहीं कह सकता । हम लोगोंकी बात जाने दो, तुम अपनी बात कहो ।"

"पर मेरी अपनी बात तो कुछ है नहीं ।"

"कुछ भी नहीं है ? बिलकुल ही कुछ नहीं ?"

मैत्रेयी पहले तो जरा सिकुड़-सी गई, उसके बाद जरा-सा हँसकर कहने लगी—"ओहो मैं समझ गई, आपने जीजाके ताल्लुककी बात किसीसे सुनी होगी शायद । छि छि, कैसे निर्लज्ज आदमी हैं, जीजीके मरते ही वहाँसे प्रस्ताव भिजवा दिया मुझसे ब्याह करनेके लिए ।"

"उसके बाद ?"

मैत्रेयीने कहा—"जीजाजीके पास धन बहुत है, माँ और बापूजी दोनों ही राजी हो गये । सोचा, और कुछ हो चाहे न हो जीजीके बाल-बच्चे तो सुखी रहेंगे । जैसे संसारमें मेरे लिए और कोई काम ही न हो जीजीके बाल-बच्चोंको पालनेके सिवा । मैंने कह दिया, ऐसी बात तुम लोग फिर जबानपर लाये, तो मैं फाँसी लगाकर मर जाऊँगी ।"

"क्यों, तुम्हें इतनी ज्यादा आपत्ति क्यों थी ?"

"आपत्ति नहीं होगी ? संसारमें इतनी बड़ी अशान्तिकी और कौन-सी बात है ?"

विप्रदासने कहा—"यह बात तुम्हारी सच नहीं है । संसारमें सभी लोगोंमें अशान्ति नहीं आती मैत्रेयी । मेरी माँने ही भाई-साहबका पालन-पोषण था ।"

मैत्रेयीने कहा—"पर आखिरमें उसका नतीजा क्या निकला ? आपके समान दुःखपूर्ण घटना इस घरमें और कभी हुई थी क्या ?"

विप्रदास चुप रह गया । इसकी बात झूठ नहीं है, किन्तु सच भी हरगिज नहीं । दो-तीन मिनटतक अभिभूतके समान बैठा रहा, फिर अकस्मात् मानो

उसे चेतना-सी हो आई, बोला—"मँझली भाभी, प्रतिवाद मैं नहीं करूँगा। इस परिवारमें महादुःख आ गया यह सच है, मगर फिर भी मैं जानता हूँ कि तुम्हारी यह बात साधारण स्त्रियोंके अति तुच्छ सांसारिक हिसाबसे बढ़कर और कुछ नहीं है।" इतना कहनेके बाद ही वह उठ खड़ा हुआ। उसका खाना समाप्त हो चुका था।

दूसरे दिन दोपहर-भर वह घर नहीं रहा, किस कामसे कहाँ चला गया था सो वही जाने। संध्याके अँधेरेमें चुपचाप वह घर वापस आया और सीधा वन्दना के कमरेके सामने जा खड़ा हुआ, आवाज दी—"भीतर आ सकता हूँ?"

"कौन, द्विजू बाबू? आइए, आइए।"

द्विजदासने भीतर जाकर देखा—वन्दनाने अपना बकस बकस सँभालकर तैयार कर लिया है, सफरकी तैयारियाँ लगभग पूरी हो चुकी हैं। बोला—"सचमुच ही चल दीं? एक दिन भी ज्यादा नहीं रखा जा सका?"

उसके चेहरेकी तरफ देखकर वन्दनाकी इच्छा नहीं हुई कि कुछ कहे, फिर भी कहना ही पड़ा—"जाना तो होगा ही, एक-आध रोज ज्यादा रहनेसे काम क्या है बताइए?"

द्विजदासने कहा—"कामकी बात तो मैंने सोची नहीं, सिर्फ सोचता हूँ—सभी चले जा रहे हैं, इतने बड़े घरमें मेरा अब कोई मित्र-बन्धु नहीं रह गया।"

वन्दनाने कहा—"पुराने मित्र जाते हैं और नये आते हैं—ऐसा ही संसार का नियम है द्विजू बाबू, उसी आशापर धीरज धरके रहना पड़ता है,—चंचल होनेसे काम नहीं चलता।"

द्विजदासने जवाब नहीं दिया, चुप रहा।

वन्दनाने कहा—"समय ज्यादा नहीं है, कामकी बातें दो-एक कह दूँ। सुना होगा शायद दादा बाबू कल्याणीको लेकर चले गये हैं।"

"नहीं, सुना तो नहीं, पर अनुमान कर लिया था।"

"जाते वक्त एक बूँद पानी भी उन्हें और नहीं पिला सका। दोनोंने माँको प्रणाम करके कहा—हम लोग जा रहे हैं। माँने कहा—जाओ। फिर दूसरी ओर मुँह फेरे रहीं।—" इतना कहकर वन्दना चुप हो गई। जिस दुःखसे उन लोगोंको जाना पड़ रहा है माँके सामने द्विजूने कल रातको जो बातें कही थीं उनका उल्लेखतक नहीं किया।

कुछ क्षण मौन रहकर वह फिर कहने लगी—"माँ बहुत ज्यादा मुरझा गई हैं। देखनेसे करुणा आती है,—लज्जाके मारे किसीके आगे मानो उनसे मुँह दिखाते नहीं बनता। मैं भी जितनी सेवा कर रही हूँ उतनी शायद उनकी अपनी लड़की भी नहीं कर सकती। माँ अगर किसी दिन स्वस्थ हो उठें तो वह उसीकी सेवा-टहलसे। लड़की बहुत अच्छी है, कुछ दिन उसे पकड़ रखनेकी कोशिश कीजिएगा यही मेरा अनुरोध है।"

"ऐसा ही होगा।"

"द्विजू बाबू, जानेसे पहले एक अनुरोध और करती जाऊँगी।"

"करिए।"

"आपको ब्याह करना पड़ेगा।"

"क्यों?"

बन्दनाने कहा—"नहीं तो यह विशाल परिवार यों ही छिन्न-भिन्न हो जायगा। आप लोगोंकी बहुत बड़ी क्षति हुई है यह मैं जानती हूँ, पर जो कुछ बचा है वह भी बहुत है। आप लोगोंका कितना दान है, कितने सत्कर्म, कितने आश्रित जन हैं, कितने दीन-दरिद्रोंके अवलम्बन हैं आप लोग —और सो भी क्या सिर्फ आजसे? कितने पुराने जमानेसे यह धारा बहती चली आ रही है आप लोगोंके परिवारमें—किसी दिन रुकी नहीं, वह क्या अब बन्द हो जायगी? माई-साहबको गलतीसे जो चला गया है, सो तो था बाहुल्य, प्रयोजनसे अतिरिक्त। वह गया तो जाने दीजिए। जो कुछ वह छोड़ गये हैं, प्रसन्न मनसे उसीको यथेष्ट समझके ग्रहण कीजिए। वह अपर्याप्त ही आपके लिए अक्षय और काफी हो, प्रतिदिनकी आवश्यकताओंमें भगवान् कमी न रखें, आज विदा लेनेसे पहले उनसे मेरी यही प्रार्थना है।'

द्विजदासकी आँखोंमें आँसू भर आये।

बन्दना कहने लगी—"आपके पिताजी अगाध विश्वाससे माई-साहबको अपना सर्वस्व सौंप गये थे, पर वह रहा नहीं। पिताके समान वे अपराधी हो गये। परन्तु यह त्रुटि अगर दैव आकर उन लोगोंके पुण्य-कर्मको बाधाग्रस्त करे, तो किसी भी दिन मुखर्जी-साहब अपनेको सान्त्वना न दे सकेंगे। इस अशान्तिसे आपको उनकी रक्षा करनी होगी।"

द्विजदास किसी तरह आँसुओंको पोंछकर बोला—"माई-साहबकी बात रह

तरह किसीने भी नहीं सोची वन्दना, मैंने भी नहीं। कैसे आश्चर्यकी बात है!"

भाग्य अच्छा था जो शामियानेकी छायाकी ओटमें उसे वन्दनाका चेहरा नहीं दीख पड़ रहा था। उसने कहा—"भाई साहबके लिए मैं सभी तरहका दुःख भुगत सकता हूँ पर उनके कार्योंका बोझ भला कैसे ढोऊँगा?—साहस नहीं होता। उन्हीं सबको देखने आज बाहर गया था। उनका स्कूल, उनका विद्यालय, उनकी संस्कृत-पाठशाला, मुसलमानोंके लिए स्थापित मकतब या मदरसे,—और वे भी क्या दो एक हैं? बहुत-से हैं। किसान रिआयाकी आब-पाशीके लिए एक नहर खुदाई जा रही है बहुत दिनोंतक उसके लिए रुपये जुटाने पड़ेंगे। कागजोंमें एक लम्बी सूची मिली है मुझे—उसमें लिखे दानके आँकड़े हैं। वे लोग जब माँगने आयेंगे तब क्या कहूँगा कुछ समझमें नहीं आता।"

वन्दनाने कहा—"कहिएगा, उन्हें मिलेगा। वह सब देना ही होगा। पर एक बात पूछती हूँ आपसे, क्या अबतक उन्होंने इस बारेमें किसीसे कुछ कहा सुना नहीं?"

"नहीं।"

"इसकी वजह?"

द्विजदासने कहा—"कुछ गोपन करनेके लिए नहीं, किन्तु कहते भी तो किससे? संसारमें उनका बन्धु तो कोई था नहीं। जब-जब दुःख आया है उसे अकेले ही झेला है, और जब आनन्द आया है उसका भी अकेले ही उपभोग किया है। अथवा बताया हो तो उनके उस एकमात्र बन्धुको।"—कहते हुए उसने ऊपरकी ओर देखा, और फिर कहना शुरू किया—"पर उस बातको आत्मीय-स्वजन कैसे जान सकते हैं? जानते होंगे सिर्फ वे और उनका वह अन्तर्यामी।"

वन्दनाने कुतूहलके साथ पूछा—"अच्छा द्विजू बाबू, आपको क्या मालूम होता है मुखर्जी साहबने किसी दिन किसीसे प्यार नहीं किया? किसी भी आदमीको?"

द्विजदासने कहा—"नहीं, वह बात उनकी प्रकृतिके विरुद्ध है। मनुष्यके संसारमें इतना बड़ा निःसंग एकाकी पुरुष और कोई भी न होगा।"

इसके बाद बहुत देरतक दोनों चुप रहे।

वन्दनाने जबरदस्ती मानो एक बात-सा धक्केसे फेंक दिया, कहा—"तो

होने दीजिए हिमू बाबू । उनका सारा काम आपको उठा लेना पड़ेगा,—एकको भी छोड़ नहीं सकेंगे ।"

"पर मैं तो मास्टर-साहब नहीं हूँ, अकेला उठा कैसे सकूँगा वन्दना ?"

"अकेले नहीं, दोनों जने मिलकर उठाइएगा । इसीसे तो कहती हूँ आपसे, आपको ब्याह करना होगा ।"

"मगर प्रेम हुए बिना मैं ब्याह कैसे करूँ ?"

वन्दना आश्चर्यसे उसके मुँहकी ओर देखने लगी, बोली—"यह क्या कह रहे हैं हिमू बाबू ? यह बात तो हमारे समाजमें सिर्फ हम ही लोग कहती रहती हैं । पर, आपके परिवारमें किसने कब प्रेम करके ब्याह किया है जो आपका उसके बगैर काम न चलेगा ? इस बहानेको छोड़ दीजिए ।"

हिमदासने कहा—"माना कि यह विधि हमारे घरकी नहीं है, किन्तु उसी लकीरको हमेशा मानना पड़ेगा, और उसीसे सुखी होऊँगा, यह विश्वास अब नहीं रहा है ।"

वन्दनाने कहा—"विश्वासके विरुद्ध तर्क नहीं चल सकता, और सुखकी जमानत भी नहीं दे सकती, कारण वह चल जिनके हाथमें है उनका पता मैं नहीं जानती । उनकी विचार-पद्धति अद्भुत है—इसमें सबकी लोच हुआ है । लेकिन, ब्याहके पहले नयन-मन-रंजन पूर्वानुरागका खेल मैं बहुत देख चुकी हूँ, और फिर एक दिन उस अनुरागने राह लगा दी न जाने किस गहन वनमें, वह भारवन भी बहुत देखा । मेरा कहना है कि उस चक्करमें पाँव रखनेकी जरूरत नहीं हिमू बाबू । जानेका मार्ग-भूला जिस वनमें भटका घोंसला हो, उसे वहीं चलने दीजिए, इस घरमें लाकर बुलानेकी कोई जरूरत नहीं ।"

हिमदास मुसकराता हुआ बोला—"इसके मानी हैं कि सुधीर बाबूने आपके मनको बुरी तरह बिगाड़ दिया है ।"

वन्दनाने भी हँसकर कहा, "हाँ । किन्तु मनका उस समय भी जितना कुछ बाकी था उसे बिगाड़ दिया आपने । और उसके बाद आये हैं अशोक । अब इन्हीं तस्वीरोंमें ये ही टिके रहें तो बच जाऊँ ।"

"ये कौन ? अशोक ? उनसे आपको किस बातका डर है ?"

"डर यह है कि उन्होंने भी अकस्मात् प्रेम करना शुरू कर दिया है ।"

"तो क्या आपका यही संकल्प है कि कोई प्रेम-प्यारके पाससे भी न

सकते ?"

"हाँ, यही मेरी प्रतिज्ञा है। ब्याह अगर कभी किया, तो यही संकल्प कर लिया है कि बड़े-भारी सुखकी आशामें किसी बड़ी-भारी विडम्बनामें पैर न दूँ। इसीसे अशोक बाबूको कल सावधान कर दिया है कि मुझे प्यार करते ही मैं भाग नहीं होऊँगी।"

"सुनके उन्होंने क्या कहा ?"

"कहा कुछ भी नहीं, सिर्फ मेरे मुँहकी तरफ टक लगाकर देखते रह गये। देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ द्विजू बाबू।"

"दुःख अगर सचमुच ही हुआ हो तो अब भी उम्मीद है। किन्तु जान रखिएगा यह सब बातोंके परकी थोरतर प्रतिक्रिया है,—महज सामयिक, टिकनेवाली नहीं।"

वन्दनाने कहा—"असम्भव नहीं, हो भी सकती है। मगर सोचा बहुत है। सोचती हूँ, भाग्यसे कलकत्ते आ गई, वरना बहुत-सी बातें तो अज्ञात ही रह जातीं।"

द्विजदास कुछ देर चुप रहकर बोला—"ज्यादा वक्त अब नहीं रहा, अन्तिम उपदेश मुझे क्या देना है सो दे जाइए—मुझे क्या करना होगा ?"

वन्दनाने परिहासकी भंगिमासे एक बार सिर हिलाते हुए कहा—"उपदेश चाहिए ? सचमुच ही चाहिए क्या ?"

द्विजदासने कहा—"हाँ, सचमुच ही चाहिए। मैं मास्टर-साहब नहीं हूँ, मुझे बन्धुकी जरूरत है और उपदेशकी भी। ब्याह करनेको मुझसे कहे जा रहे हैं, तो मैं करूँगा। मगर मुहब्बत न रहा, बन्धुत्व भी न पाया तो जो भार आप मुझे दिये जा रही हैं उसे वहन कैसे करूँगा ?"

द्विजदासके चेहरेपर परिहासका आभासतक न था, उसके कण्ठस्वरने वन्दनाको विचलित कर दिया, उसने कहा—"इसकी कोई बात नहीं द्विजू बाबू, बन्धु आयेगा, सचमुचका प्रयोजन होनेपर भगवान् उसे आपके दरवाजेके पास लाकर पहुँचा जायेंगे। इतना विश्वास रखिएगा।"

प्रत्युत्तरमें द्विजदास कुछ कहना ही चाहता था कि इतनेमें बाधा आ पड़ी। बाहरसे मैत्रेयीकी आवाज आई—"द्विजू बाबू भीतर हैं क्या ? माँ आपको बुला रही हैं।"

द्विजू उठके खड़ा हो गया बोला—"बारह बजे गाड़ी आती है, साढ़े-ग्यारह बजे यहाँसे रवाना होना पड़ेगा। ठीक वक्तपर आपको आकर आवाज दूँगा। याद रहे।"—इतना कहकर वह जल्दीसे बाहर चला गया।

× × ×

२५

वन्दनाके निर्विघ्न बम्बई पहुँच जानेके संवादके उत्तरमें कई दिन बाद विप्रदासका जवाब पहुँचा कि वह नाना कार्योंमें व्यस्त रहनेके कारण यथासमय चिट्ठी नहीं लिख सका। जैसा कि वन्दना अपनी आँखोंसे देख गई है सब वैसा ही चल रहा है। लिखने लायक कोई खास बात नहीं है। मैझलीके पिता तो कलकत्ते लौट गये हैं पर वह खुद यहीं है। माँकी सेवा-शुश्रूषामें उसकी त्रुटि नहीं पकड़ी जा सकती, पर-गृहस्थीका भार भी द्विजदास उसीपर आ पड़ा है। ठीक ही चल रहा है। घरके सब उससे खुश हैं। स्वयं विप्रदासकी तरफसे भी आशंका चिन्ताका कोई कारण उपस्थित नहीं हुआ। अन्तमें वन्दना और उसके पिताके प्रति शुभ कामना करके और यथाविधि नमस्कारादि लिखके उसने पत्र समाप्त किया है।

इसके बाद तीन महीनेसे भी ज्यादा समय बीत गया, किसी तरफसे पत्र लिखकर कोई आदान प्रदान नहीं हुआ। विप्रदासका, दीदीका, बासुका संवाद जाननेके लिए वन्दनाका मन बीच-बीचमें बहुत उत्कण्ठित हुआ है, पर जाननेका कोई उपाय उसे ढूँढे नहीं मिला। अपनी तरफसे उन लोगोंने आवश्यक खबर नहीं दी कि वे कहाँ हैं, कैसे हैं—सब-कुछ अज्ञात है। सिर्फ इसीकी जानकारीके लिए विप्रदासको अनुरोधपूर्वक चिट्ठी लिखनेमें वन्दनाको इतनी शरम मालूम होती है कि सौ-सौ इच्छायें होते हुए भी यह काम उसके लिए असाध्य-सा हो रहा है। अब तो बलरामपुरकी स्मृतिकी तीव्रता और वेदनाकी तीक्ष्णता दोनों ही बहुत हलकी हो गई हैं, परन्तु वहाँसे चले आनेके बाद तो उसकी हालत प्रायः शोचनीय हो गई थी। किन्तु दिनपर दिन क्षणभंगुर विक्षुब्ध चित्त धीरे धीरे जितना ही शान्त हो रहा है उतना ही यह अनुभव होता है कि उन लोगोंके साथ उसका ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है; एकदम निराशके वे भूल-चूकसे भरे अनिर्वचनीय दिन विचित्र मधुरतासे मनमें कितना ही क्यों न निविड़ताका संचार

करें, उनकी आयु थोड़ी है। यह समझना उनके लिए बाकी नहीं रहा कि इस आचारनिष्ठ प्राचीनपन्थी मुखर्जी-परिवारके लिए यह आवश्यक भी नहीं है। दोनों पक्षोंमें शिक्षा संस्कार और सामाजिक परिवेशनने जो व्यवधान बना रखा है वह जैसा ही सत्य है वैसा ही कठिन भी।

इतनेमें पतिके कर्मस्थल पंजाबसे मौसीजी आ पहुँचीं। उनकी तबीयत अच्छी नहीं है। पंजाबकी अपेक्षा बम्बईकी आब-हवा अच्छी है यह सलाह उन्हें किस डाक्टरने दी है सो तो वे ही जानती हैं, पर आई हैं, स्वास्थ्यके ही बहाने। बम्बई आनेके पहले वन्दना उनसे मिलके नहीं आई, यह शिकायत उनके मनके अन्दर मौजूद थी, परन्तु बहनोईजीके मिजाजका भी कुछ थोड़ा-बहुत परिचय उन्हें मिला है उससे बहनोईके रेस्टोरेण्ट दरबारमें प्रकट रूपसे नालिश रुजू करनेकी उन्हें हिम्मत नहीं पड़ रही थी, फिर भी खानेकी टेबिलपर बैठकर इशारेसे उन्होंने यह बात छेड़ ही दी। बोलीं—"मिस्टर रे, आपने एक बातपर गौर किया है या नहीं, मैं नहीं कह सकती, पर मैंने बहुत जगह देखा है कि माँ-बापके इकलौते लड़के-लड़की इतने ज्यादा ज़िद्दी हो जाया करते हैं कि उनके साथ निभना मुश्किल हो जाता है।"

साहबने इस बातको उसी क्षण स्वीकार कर लिया, और देखा कि दृष्टान्त उनके हाथके पास ही मौजूद है। आनन्दके साथ उसका उल्लेख करते हुए बोले—"जैसे यह पगली लड़की। एक बार 'ना' कर दिया तो, किसकी मजाल कि 'हाँ' करा ले! बचपनहीसे देखता आ रहा हूँ—"

वन्दनाने कहा—"इसीसे शायद अपनी ज़िद्दिन लड़कीको प्यार नहीं करते होंगे, क्यों बापूजी?"

साहबने ज़ोरके साथ प्रतिवाद किया, बोले—"तू मेरी ज़िद्दिन लड़की है! हरगिज नहीं। कोई नहीं कह सकता।"

वन्दना हँस दी, बोली—"अभी अभी तो तुम कह रहे थे बापूजी!"

"मैं! हरगिज नहीं।"

सुनकर मौसीतक बगैर हँसे न रह सकीं।

वन्दनाने पूछा—"अच्छा बापूजी, तुम्हारी तरह माँको भी क्या मैं देखे न सुहाती थी?"

साहबने कहा—"तेरी माँको! इस विषयको लेकर तो कितनी ही बार उनसे

मेरा झगड़ा हो जाया करता था। एक बार बचपनमें तूने मेरी घड़ी तोड़ दी थी। तेरी माँने गुस्सेमें आकर तेरा कान ऐंठ दिया और तू रोती हुई दौड़ी आई मेरे पास। मैंने गोदमें उठा लिया और फिर उस दिन तेरी माँके साथ दिन भर नहीं बोला।"—कहते-कहते वे पूर्वस्मृतिके आवेगमें उसके पास आ गये और लड़की का माथा छातीसे लगाकर धीरे धीरे हाथ फेरने लगे।

वन्दनाने कहा—"बचपनकी तरह अब क्यों नहीं प्यार करते बापूजी!"

साहबने मौसीको बताया—"सुना मिसेज घोषाल, पगलीकी बात सुनी!"

वन्दनाने कहा—"क्यों फिर अब तक कहते रहते हो कि तेरा ब्याह करके झंझट मिटा देना चाहता हूँ। मैं क्या तुम्हारी आँखोंकी किरकिरी हूँ!"

"सुनती हैं मिसेज घोषाल, लड़कीकी बात सुनी!"

मौसीने कहा—"सच है वन्दना। लड़की बड़ी हो जाती है, तो माँ-बापको कैसी जबरदस्त चिन्ता हो जाती है, सो खुदके लड़की होनेपर ही एक दिन समझोगी।"

"मैं समझना नहीं चाहती मौसी।"

"पर किसीके आगे तो कहना है बेटी। माँ-बाप तो चिरजीवी नहीं होते, सन्तानका भविष्य न सोचें तो उनके लिए अपराधकी बात होगी। क्यों तुम्हारे पिताजीके मनमें शान्ति नहीं मिल रही है, इस बातको सिर्फ वे ही समझ सकते हैं जो खुद माँ-बाप हैं। तुम्हारी बहन प्रकृतिका जबतक मैं ब्याह न कर सकी तबतक मुझसे भर-पेट रोटी नहीं खाई गई। सोना छूट गया था मेरा। कितनी रातें मुझे यों ही जाग-जागके बितानी पड़ी हैं, सो तुम नहीं समझोगी, तुम्हारे पिता समझ सकते हैं। तुम्हारी माँ जिन्दा होतीं तो उनकी भी मेरी जैसी दशा होती।"

रे साहबने सिर हिलाते हुए आहिस्तेसे कहा—"बिलकुल सच है मिसेज घोषाल।"

मौसी उन्हींकी तरफ मुखातिब होकर कहने लगी—"आज इसकी माँ जीती होतीं तो वन्दनाके लिए वे आपको परेशान कर डालतीं। मैंने खुद ही क्या कम किया है उनको। अब तो उनकी बातसे भी शरमा जाती हूँ।"

साहबने अनुमोदन करते हुए कहा—"इसमें आपका दोष नहीं। ऐसा ही हुआ करता है।"

मौसी कहने लगीं—"यही मैं जानती हूँ। सिर्फ यही चिन्ता बनी रहती थी कि अपनी भी तो उमर बढ़ती आ रही है,—आदमीके मरने जीनेकी तो कोई निश्चितता नहीं, छोटी-सी लड़कीका कुछ उपाय न कर सकी और अचानक कुछ हो गया तो क्या होगा। मारे चिन्ता और डरके ये तो सूख-से गये थे।"

वन्दनासे अब न सहा गया, उसने देखा कि उसके बापूजीका भी मुँह सूखने लगा है, खाना बन्द हो गया है। उसने कहा—"मौसाजीको बेमतलब बहुत ज्यादा डर दिलाया है मौसी, और अब मेरे बापूजीको भी दिला रही हो। ऐसा क्या हो गया, बताना भला! बापूजी अभी बहुत दिन जीयेंगे। अपनी लड़कीकी भलाईके लिए जो कुछ करना होगा उसके लिए उन्हें बहुत समय मिलेगा। तुम झूठमूठकी चिन्तामें मत डालो बापूजीको।"

मौसी कोई दबनेवाली थी नहीं। खासकर, रे साहबने जब कि उन्हींका समर्थन करते हुए कहा—"तुम्हारी मौसीजी ठीक ही कह रही हैं वन्दना। वास्तवमें मेरी तबीयत अब ठीक नहीं रहा करती, और यह तो ठीक ही है कि शरीरका कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। ये अपनी आत्मीय हैं, समय रहते ये अगर सावधान न करें तो कौन करेगा बताओ?"—इतना कहकर वे दोनोंके मुँहकी तरफ देखने लगे। मौसीने तिरछी निगाहोंसे देखा कि वन्दनाका चेहरा अप्रसन्न-सा हो रहा है, वे तुरन्त अतिशय-कण्ठसे व्यस्तताके साथ कह उठीं—"यह कहना आपका बिलकुल अनुचित है मिस्टर रे। आपकी सौ सालकी परमायु हो, हमारी सबकी यही प्रार्थना है। मैंने तो सिर्फ यही कहना चाहा था—"

साहब बीचमें ही बोल उठे—"नहीं, आप ठीक ही कह रही हैं। सचमुच स्वास्थ्य मेरा ठीक नहीं है। समयपर सावधान न होना, कर्तव्यकी उपेक्षा करना सचमुच ही अनुचित है।"

वन्दनाने अपने गूढ़ क्रोधको दमन करते हुए कहा—"आज बापूजी कुछ खा-पी ही न सकेंगे मौसीजी।"

मौसीने कहा—"रहने दीजिए इन सब बातोंको मिस्टर रे। आपका खाना पीना पूरा न हुआ तो मुझे बहुत कष्ट होगा।"

साहबकी खाने-पीनेमें रुचि जाती रही थी फिर भी अदबसे उन्होंने मांसका एक टुकड़ा काटके मुँहमें डाला। इसके बाद खाने-पीनेका काम कुछ देरतक चुपचाप ही चलता रहा।

साहबने पूछा—"जमाई साहबकी प्रैक्टिस कैसी चल रही है मिसेज घोषाल ?"

मौसीने जवाब दिया—"अभी तो शुरू ही है। सुना है बुरी नहीं चलती।"

फिर कुछ देर सन्नाटा रहा। मौसीने मुँहका पान निगलते हुए कहा—"प्रैक्टिस कैसी भी चले मिस्टर दे, मैं उसको बहुत महत्त्व नहीं देती। मेरा तो कहना है कि उससे भी बहुत बड़ा है आदमीका चरित्र। उसके निर्मल हुए बगैर कोई भी स्त्री कभी यथार्थ सुखी नहीं हो सकती।"

"इसमें क्या सन्देह !"

मौसी कहने लगीं—"मेरी एक मुश्किल यह है कि मेरे अन्दर मायकेके शिक्षा संस्कार मौजूद हैं। उन लोगोंके दृष्टान्त मनमें गुँथे हुए हैं। उससे एक तिल भी कहीं कम-बेश देखती हूँ तो मुझसे सहा नहीं जाता। अपने अशोकको देखती हूँ तो उसी नैतिक आन-बानकी बात याद आ जाती है जिसमें मेरा बचपन बीता है। मेरे पिता, मेरे भाई जैसे थे—यह अशोक भी ठीक वैसा ही उतरा है। वैसा ही सरल, वैसा ही उदार, वैसा ही चरित्रवान्।"

दे साहबने सब-कुछ मान लिया, कहने लगे—"मुझे भी ठीक ऐसा ही लगा है मिसेज घोषाल। लड़का बड़ा सदाचारी है। दस-पाँच दिन वह यहाँ था, उसके व्यवहारसे मैं मुग्ध हो गया हूँ।"—इतना कहकर उन्होंने कन्याको साक्षी मानते हुए कहा—"क्यों ठीक कह रहा हूँ न पगली, अशोक हम लोगोंको कैसा अच्छा लगा था ? जिस दिन वह यहाँसे गया, मेरा तो दिन भर मन उदास रहा।"

वन्दनाने स्वीकार करते हुए कहा—"हाँ बाबूजी, वह अच्छे आदमी हैं। जैसे विनयी वैसे ही भद्र। मेरे तो किसी भी अनुरोधपर उन्होंने 'ना' नहीं कहा। मुझे वे बम्बई आकर न पहुँचा जाते तो बड़ी आफत होती।"

मौसीने कहा—"और एक बात शायद तुमने देखी होगी वन्दना, उसमें स्नॉबरी बिलकुल नहीं, जो कि आजकलके दिनोंमें खेदके साथ कहना ही पड़ेगा कि हममेंसे बहुतोंके अन्दर पाई जाती है।"

वन्दनाने हँसते हुए कहा—"तुम्हारे घरपर तो किसी दिन किसी स्नॉबको देखा नहीं मौसीजी।"

मौसीने हँसके कहा—"देखा क्यों नहीं बेटी। तुम अत्यन्त बुद्धिमती हो, तुम्हें वे कैसे धोखा दे सकते हैं।"

सुनकर रे साहब भी हँस दिये। यह बात उन्हें बहुत अच्छी लगी। बोले —"इतनी बुद्धि साधारणतः पाई नहीं जाती मिसेज घोषाल। आपके मुँहसे यह बात गर्वकी-सी सुनाई पड़ेगी, पर बिना कहे भी रहा नहीं जाता।"

वन्दनाने कहा—"इस प्रसंगको तुम बन्द करो मौसीजी, नहीं तो फिर बापूजीको सँभालते न बनेगा। तुमने इकलौती लड़कीके बापोंको ही देखा है पर यह नहीं देखा कि इकलौती लड़कीके बापोंकी तरह दाम्भिक आदमी भी संसारमें कम होते हैं। मेरे बापूजीकी धारणा है कि उनकी लड़की जैसी लड़की संसारमें दूसरी नहीं है।"

मौसीने कहा—"उस धारणामें मैं भी बड़ी हिस्सेदार हूँ वन्दना। सच मिलनेवाली हो तो वह मुझे भी मिलनी चाहिए।"

पिताके मुँहपर अनिर्वचनीय परितृप्तिकी मन्द-मन्द हँसी चमक उठी, उन्होंने कहा—"मैं दाम्भिक हूँ या नहीं यह तो नहीं जानता पर इतना जानता हूँ कि कन्या रत्नकी दृष्टिसे मैं सचमुच ही भाग्यवान् हूँ। ऐसी लड़की बहुत कम बापोंको मिलती है।"

वन्दनाने कहा—"बापूजी, यह क्या, आज तो तुमने भी 'सन्देश' नहीं खाया! अच्छे नहीं बने शायद!"

साहबने प्लेटमेंसे आधा 'सन्देश' तोड़कर मुँहमें [illegible] हुए कहा—"सब कुछ बिटियाने अपने हाथसे बनाया है। [illegible] इसने सारा का सारा खाना बदल दिया। रसेदार तरकारी, भजिया, मछलीका झोल, दही सन्देश और भी न जाने क्या-क्या बनाया करती है। किससे सीख आई है मालूम नहीं, घरमें मांस तो आने ही नहीं देती। कहती है उससे मेरी तबीयत खराब हो जाती है। देखिए मिसेज घोषाल, ये सब बंगाली खाने खाते-खाते मालूम होता है जैसे बुढ़ापेमें मैं बच्चा ही हूँ। अब जरा कुछ भूख भी लगने लगी है।"

वन्दनाने कहा—"मौसीजीको आदत नहीं है, शायद तकलीफ होती हो।"

मौसीने इस गूढ़ व्यंग्यपर कुछ ध्यान नहीं दिया, बोलीं—"नहीं-नहीं, [illegible], वह तो मुझे अच्छा ही लगता है। सिर्फ आब-हवा बदलना ही तो चेंज नहीं है, खाने-पीनेमें भी चेंज होना जरूरी है। इसीसे शायद मैं इतनी जल्दी स्वस्थ हो उठी हूँ।"

"अच्छी होने लगी हो, न मौसीजी ?"

"जरूर। इसमें शक थोड़े ही है।"

"तो और भी कुछ दिन रह जाओ। और भी अच्छी हो जाओगी।"

"लेकिन ज्यादा दिन रहना भी मुश्किल है वन्दना। अशोकने लिखा है कि इस महीनेके आखिरमें ही वह पंजाब मेलके लिए आनेवाला है। उसके आनेके पहले ही मुझे वहाँ पहुँच जाना है।"

भोजन-व्यापार समाप्त हो रहा था। साहब उठना ही चाहते थे कि मौसी मन-ही-मन घबरा उठीं। वे प्रस्ताव पेश करनेके पक्षमें जो अनुकूल वातावरण तैयार कर चुकी थीं उसे आलोक विहारसे बाद कर देनेसे फिर पैदा करना दुस्तर हो जायगा, यह सोचकर उन्होंने संकोच छोड़कर कहा—"मिस्टर रे, एक बात कहनी थी अगर समय—"

साहब उसी क्षण बैठ गये और बोले—"नहीं नहीं, समय क्यों नहीं है। कहिए, क्या बात है ?"

मौसीने कहा—"मैंने सुना है कि वन्दनाकी भी असम्मति नहीं है। अशोक धनवान् नहीं है, पर अपनी सुविधा और चरित्र-बलसे स्ट्रगल (Struggle = संघर्ष) करके एक दिन वह उन्नति करेगा ही, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। आप अगर उसे अपनी लड़कीके अयोग्य न समझें तो—"

साहब आश्चर्यमें आकर बोले—"लेकिन यह कैसे हो सकता है मिसेज घोषाल! अशोक आपका अपना भतीजा है, तो रिश्तेमें वन्दनाका भाई हुआ !"

मौसीने कहा—"सिर्फ कहनेके लिए, नहीं तो बहुत दूरका नाता है। मेरी माँ और वन्दनाकी नानी दोनों बहनें थीं, उसी रिश्तेसे वन्दनाकी मैं मौसी लगती हूँ। यह विवाह निषिद्ध नहीं हो सकता मिस्टर रे।"

साहब कुछ देर चुप रहे, शायद मन-ही-मन कुछ हिसाब लगाते रहे, फिर कहने लगे—"अशोकको जितना भी मैंने देखा है और वन्दनाके मुँहसे जो भी कुछ सुना है उससे मैं उसे अयोग्य नहीं समझता। लड़कीका ब्याह तो एक-न-एक दिन मुझे करना ही है, मगर उसकी अपनी राय भी तो जान लेना जरूरी है।"

मौसीने स्नेहके स्वरमें वन्दनाको उत्साह देते हुए कहा, "शरमाओ मत

बेटी, कह दो अपने बाबूजीसे क्या तुम्हारी इच्छा है ?"

वन्दनाका चेहरा क्षण भरके लिए सुर्ख हो उठा, किन्तु दूसरे ही क्षण स्वच्छ स्वरमें उसने कहा—"अपनी इच्छाको मैं विसर्जन कर चुकी हूँ मौसीजी, उसकी खोज करनेकी जरूरत नहीं।"

साहबने हँसते हुए कहा—"इसके मानी ?"

वन्दनाने कहा—"मानी मैं ठीक-ठीक समझाके बता नहीं सकती बाबूजी। लेकिन इसीसे यह न सोच लेना कि मैं बाधा दे रही हूँ।"—फिर जरा ठहरकर कहा—"मेरी बड़ी दीदीका ब्याह हुआ था नौ सालकी उमरमें। बाप-माँने जिनके हाथ उन्हें सौंप दिया उन्हींको दीदीने अंगीकार कर लिया, अपनी बुद्धिसे उन्होंने चुनाव नहीं किया। फिर भी, भाग्यसे जिस पतिको पाया वह संसारमें दुर्लभ है। मैं उसी भाग्यपर ही विश्वास करूँगी बाबूजी। विप्रदास बाबू साधु पुरुष हैं, आनेके पहले उन्होंने मुझे आशीर्वाद देते हुए कहा था—जहाँ मेरा कल्याण है, भगवान् मुझे वहीं पहुँचा देंगे। उनकी वह बात कभी झूठी नहीं होनेकी। तुम मुझे जो आदेश दोगे मैं उसीका पालन करूँगी। मनमें किसी प्रकारका क्षोभ, किसी तरहका डर भय मैं न रखूँगी।"

साहब आश्चर्यसे दंग रह गये और उसके मुँहकी तरफ देखते रहे, मुँहसे उनके एक शब्द भी न निकला।

मौसीने कहा—"ब्याहके समय तुम्हारी बड़ी दीदी थीं बालिका इससे उनके मतामतका कोई सवाल ही नहीं उठा। मगर तुम तो बच्ची नहीं हो, बड़ी हो गई हो, अपनी भला-बुराईकी जिम्मेदारी अब तुम्हींपर है, इस तरह आँख मींचके भाग्यके भरोसे खेल खेलना तो अब तुम्हें नहीं सोहता वन्दना।"

"सोहता है या नहीं, मैं नहीं जानती मौसीजी, परन्तु उन्हींकी तरह, वैसे ही, भाग्यको प्रसन्न मनसे मान लूँगी।"

"मगर इस तरह उदासीनकी तरह बात करोगी तो तुम्हारे बाबूजी अपना मन कैसे स्थिर करेंगे ?"

"जिस तरह इनके बड़े भाईने किया था बड़ी-दीदीके सम्बन्धमें, जिस तरह इनके समस्त पूर्व पुरुषोंने अपनी-अपनी सन्तानोंका विवाह किया था—मेरे सम्बन्धमें भी उसी तरह बाबूजी अपने मनको स्थिर करें।"

"तुम खुद कुछ भी न देखोगी, कुछ भी न सोचोगी ?"

"सोचा-सोची, देखा-देखी बहुत देख चुकी मौसीजी। अब और नहीं। अब भरोसा करूँगी बापूजीके आशीर्वादपर और उस भाग्यपर जिसका अन्त आजतक कोई नहीं देख सका।"

मौसीने हताश होकर जरा-कुछ कडुए स्वरमें कहा—"भाग्यको हम भी मानती हैं, लेकिन अपने समाज अपनी शिक्षा, और अपने संस्कार, सबको भुलाकर मुसलिमोंका उन कई दिनोंका संसर्ग ही तुम्हें इतना ज्यादा आच्छन्न कर डालेगा—यह मैंने नहीं सोचा था। तुम्हारी बात सुनकर अब ऐसा नहीं मालूम होता कि तुम हमारी वही वन्दना हो। मानो हम लोगोंके लिए तुम बिलकुल ही पराई हो गई हो।"

वन्दनाने कहा—"नहीं मौसीजी, मैं पराई नहीं हो गई। उन लोगोंको अपनानेके लिए मुझे किसीको पराया नहीं बनाना होगा, यह बात निश्चित रूपसे जान आई हूँ। मेरे विषयमें तुम लोग किसी तरहकी आशंका मत करो।"

मौसीने पूछा—"तो अशोकको बुलानेके लिए एक तार भेज दिया जाय?"

"भेज दो। मुझे कोई आपत्ति नहीं।"—इतना कहकर वन्दना कमरेसे बाहर चली गई।

"मिस्टर रे, तो फिर आपके नामसे ही तार भेज दिया जाय?"—कहते हुए मौसीने मुँह उठाकर आश्चर्यके साथ देखा कि अकस्मात् रे साहबकी आँखें भर आई हैं। इसका कारण उन्हें ढूँढे न मिला और साहबने धीरे-धीरे जब यह कहा कि टेलिग्राम आज रहनेदो मिसेज घोषाल, तब भी हेतु न समझ सकनेके कारण उन्होंने पूछा—"क्यों, रहने क्यों दें मिस्टर रे, वन्दना तो सम्मति दे ही गई है?"

"नहीं।" उनके आँसुओंने भीतर-ही-भीतर मौसीको क्रुद्ध कर दिया। एक प्रवीण और पदस्थ व्यक्तिका इस तरहकी सेण्टिमेण्टैलिटी (भावुकता) उनके लिए असह्य हो उठी। मगर आगे जिद करनेका भी उन्हें साहस न हुआ। दो-एक मिनट चुप रहनेके बाद साहबने कहा—"उसके बापके करनेकी चिन्ता तो मैंने की है पर उसकी माँ नहीं है सो उसकी भी चिन्ता मुझे करनी पड़ेगी मिसेज घोषाल। इसके लिए थोड़ा समय चाहिए।"

मौसीने मन-ही-मन कहा, यह और एक स्टुपिड सेण्टिमेण्टैलिटी (मूर्खतापूर्ण भावुकता) हुई। साहबने इसे ताड़ा या नहीं सो नहीं मालूम, पर अबकी बार

उन्होंने जबरदस्ती जरा म्लान हँसी हँसते हुए कहा—"मुश्किल तो यह है कि उसकी बात हम कोई अच्छी तरहसे समझ नहीं पाते। सिर्फ आपकी बात नहीं, बंगालसे आनेके बादसे ऐसा लग रहा है कि उसे ठीक-ठीक मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। उसने सम्मति दी जरूर है, पर वह उसकी अपनी है या उसके नये रिलीजनकी, कुछ समझमें ही न आया।"

"नया रिलीजन! मानी?"

"मानी मैं भी नहीं जानता। किन्तु साफ देख रहा हूँ कि बंगालसे वह न-जाने क्या एक चीज अपने साथ लेती आई है जो दिन-रात उसको घेरे रहती है। उसका खाना-पीना बदल गया है, बातचीत बदल गई है, चाल-चलन और हँसना-खिलखिलाना मालूम होता है पहले जैसा नहीं रहा। तड़के ही उठकर नहा-धोकर मेरे कमरेमें पहुँच जाती है और पाँव छूती है। कहता हूँ, बिटिया पहले तो तू यह सब कुछ न करती थी! जवाब देती है तब जानती न थी बाबूजी। अब जो तुम्हारे पाँवोंकी धूल माथेसे लगाकर दिन शुरू करती हूँ तो अच्छी तरह समझ लेती हूँ कि वह मुझे दिन-भरके सब कामोंमें राह करेगी।"—कहते-कहते उनकी आँखें फिर डबडबा आई।

मौसी मन-ही-मन अत्यन्त नाराज होकर बोलीं—"यह सब नया ढंग सीख आई है उसी मुखर्जियोंके घरसे। आप तो जानते हैं कि वे कैसे दकियानूस ब्राह्मण कट्टर हैं। मगर इसे रिलीजन नहीं कहते, कुसंस्कार कहते हैं। वह पूजा-पाठ भी करती है!"

साहबने कहा—"मालूम नहीं, करती है या नहीं। शायद नहीं करती। कुसंस्कार मुझे भी लगा है, मना भी किया करता, पर वह पगली पहलेकी तरह अब तो बहस ही नहीं करती, चुपचाप सिर्फ सुनती और देखती रहती है। मेरा भी मुँह बन्द हो जाता है—कुछ कहते नहीं बनता।"

मौसीने कहा—"यह आपकी कमजोरी है। पर इतना निश्चित समझ लीजिए कि इसे रिलीजन नहीं कहते, इसका नाम है सुपरस्टिशन, अन्धश्रद्धा। इसको प्रश्रय देना अन्याय है, अपराध है।"

साहब मुस्कानके साथ धीरे-धीरे कहने लगे—"यही तो शायद। रिलीजन शब्द सुनते ही डरता रहा हूँ, कभी खोज या चर्चा की नहीं उसकी, उसका नेचर, स्वरूप, क्या है सो भी नहीं जानता। सिर्फ कभी-कभी अवाक् होकर सोचा करता—"

है कि लड़कीको इस तरह ऊपरसे नीचेतक बदल किसने दिया ?" वह हँसी नहीं, आनन्दकी चंचलता नहीं, वर्षाऋतुके खिलते हुए फूलकी तरह उसकी पँखुड़ियाँ मानों पानीसे भीगी हुई हैं। कभी उसे बुलाकर कहता हूँ पगली, मुझसे छिपा मत, भीतर-ही-भीतर तुझे किसी बीमारीने तो नहीं घेर लिया है ? पहले हँसके सिर हिलाकर कह देती है नहीं बापूजी, मैं बिलकुल अच्छी हूँ, मुझे किसी बीमारीने नहीं घेरा। हँसती हुई वह तो फ़ौरन काममें लग जाती है, पर मेरी छातीके पंजर ढीले पड़ जाते हैं मिसेज़ घोषाल। यही एक लड़की है, माँ नहीं, अपने हाथसे इतना बड़ा किया है इसे,—अपना सर्वस्व देकर भी अगर अपनी उसी वन्दनाको वैसीकी वैसी वापस पा जाता—"

मौसीने धीरज बँधाकर कहा—"पायेंगे। मैं वचन दे रही हूँ, ज़रूर पायेंगे। यह सिर्फ़ एक सामयिक व्यवधान है, वर्षोंतक भी रह सकती है पर है बिल-कुल निस्सार। सिर्फ़ उन लोगोंके संसर्गमें आनेका क्षणिक विकार है। ब्याह कर दीजिए, सब दो दिनमें ठीक हो जायगा। इमेधकी छिपा ही आदमीमें रह जाती है मिस्टर रे, जो दिनकी चमक दो ही दिनमें ख़तम हो जाती है।"

साहबने उसाँसे हुए, पर सन्देह नहीं मिटा। बोले—"उसको कहाँसे किससे क्या प्रेरणा मिली, मुझे नहीं मालूम, किन्तु सुना है, यदि यह जाती है, तो फिर सच्चे मनुष्यके मनसे उसे हर्गिज़ नहीं मिटाया जा सकता। मनुष्यके चिर दिनके अभ्यासको यह एक क्षणमें बदल देती है। नशा सा मिलता है इसकी बातमें, जीवन-भर फिर इसकी खुमारी नहीं जाती। इसी बातका मुझे डर है मिसेज़ घोषाल।"

प्रत्युत्तरमें मौसी ज़रा अवज्ञाकी हँसी हँस दीं, कहने लगीं—"वाहियात है वाहियात। मैंने बहुत देखा है मिस्टर रे, दो-चार दिन बाद फिर कुछ नहीं रह जाता। फिर परीक्षा नहीं। लेकिन इसे बढ़ने देना भी ठीक नहीं,—आज ही अशोकको एक तार कर दूँ—वह आ जाय।"

"आज ही भेजोगी ?"

"हाँ आज ही। और आपके नामसे।"

साहबने मृदु कंठसे सम्मति जताते हुए कहा—"ऐसा ठीक समझें करिए। मैं जानता हूँ, अशोक अच्छा लड़का है। परिचयात् है, उदाराशय है—नहीं तो वन्दना उसके साथ आनेको हर्गिज़ राज़ी न होती।"

मौसीने इसी बातको ज़रा घुमा-फिराकर कहना चाहा पर इतनेमें एक विघ्न आ खड़ा हुआ। वन्दनाने कमरेके भीतर आकर कहा—'बापूजी, आज हाजी साहबके यहाँकी औरतोंने मुझे चायके लिए निमंत्रण दिया है। दोपहरको जाऊँगी,—शामको आफिससे लौटते वक्त मुझे साथ लेते आना।"

मौसीने पूछा—"उनके घर तो तुम कुछ खाओगी पीओगी नहीं वन्दना?"

"नहीं।'

"क्यों?"

"मेरी तबीयत नहीं होती।—बापूजी, तुम भूल तो न जाओगे?"

"नहीं बेटी, तुम्हें लाना भूल जाऊँ, ऐसा भी कभी हो सकता है?" कहते हुए राय साहब ज़रा हँस दिये। फिर बोले—"अशोक आ रहे हैं। उन्हें आज एक तार भेज दूँगा।"

"अच्छी बात है, भेज दो।"

मौसीने कहा—"मैं ही ज़बरदस्ती उसे बुलवा रही हूँ। वन्दना, आनेपर उसका असम्मान न होने पाये।'

"डरो मत मौसीजी, हमारे यहाँ किसीका असम्मान नहीं किया जाता। अशोक बाबू खुद जानते हैं।"

लड़कीकी बात सुनकर राय साहबने प्रसन्न होकर कहा—"आफिस जाते वक्त रास्तेमें आज ही तार कर दूँगा दिदिया। आज शुक्रवार है, सोमवारको वह यहाँ पहुँच सकता है अगर कोई विघ्न न आया।"

इतनेमें दरबान डाक लेकर आ पहुँचा। ढेरके ढेर अखबार हैं, जगह-जगहकी चिट्ठी-पत्री भी कुछ कम नहीं। इधर कुछ दिनोंसे डाकके प्रति वन्दनाका औत्सुक्य नहीं था। वह समझ गई थी कि प्रतिदिन आशा करके प्रतीक्षा करना वृथा है। उसकी याद करके चिट्ठी लिखनेवाला है ही कौन। पर आज हो रहा था कि राय साहबने उसका नाम लेकर कहा—"तेरे नामकी भी दो चिट्ठियाँ हैं वन्दना। और, लो फिर, एक आसामकी भी है मिसेज़ घोषाल।"

अपनोंसे भी दूसरेकी चिट्ठीपर मौसीका ज़्यादा कुतूहल है। मुँह बढ़ाकर देखती हुई बोलीं—"एक तो अशोकके हाथकी लिखी हुई मालूम होती है। दूसरी किसकी है?"

इस अकारण प्रश्नका वन्दनाने कोई उत्तर नहीं दिया, दोनों चिट्ठियाँ

हाथमें लेकर वह अपने कमरेकी तरफ चल दी।

राय साहबने मुसकराते हुए कहा—"अशोकके साथ मालूम होता है चिट्ठी पत्री चल रही है। तार कर दूँ वह चला आवे। लड़का वास्तवमें अच्छा है। उसपर विश्वास न होता तो वन्दना कभी चिट्ठी न लिखती।'

प्रत्युत्तरमें मौसी भी गर्वके साथ जरा हँस दीं। अर्थात् 'जानती बहुत कुछ हूँ।'

शामके वक्त आफिससे लौटते वक्त हाजी-साहबके घर होते हुए वे आकर बरामदे पर बैठे। वन्दना वहाँ नहीं गई। मौसी सामने ही पड़ गईं, मुँह बनाकर बोलीं—"वन्दना चिट्ठी लेकर जो उसकी घुसी है अपने कमरेमें, सो अब तक निकली ही नहीं।"

राय साहबने उद्विग्न-मुखसे पूछा—"खाया नहीं?"

"नहीं सवेरे वही दो-चार कौर खाये थे, फिर कुछ नहीं खाया।"

राय साहबने धीरेसे वन्दनाके कमरेके सामने जाकर दरवाजा खटखटाया, बोले—"बिटिया!"

वन्दनाने किवाड़ खोल दिये। उसके चेहरेकी तरफ देखते ही राय साहब सन्न रह गये, पूछा—"क्या हुआ री?"

वन्दनाने कहा—"बापूजी, आज रातकी गाड़ीसे मैं बलरामपुर जाऊँगी।"

"बलरामपुर! क्यों?"

"द्विजदास बाबूने एक चिट्ठी लिखी है,—पढ़ोगे बापूजी?"

"तू पढ़, मैं सुनता हूँ।"—कहते हुए वे एक कुरसी खींचकर बैठ गये। वन्दना उनसे सटकर खड़ी हो गई और चिट्ठी पढ़कर सुनाने लगी,—

"सुचरितासु

आपके जानेका दिन याद आता है। स्टेशनमें गाड़ी खड़ी थी और आपने कहा था कभी-कभी चिट्ठी देनेके लिए। मैंने कहा था—आलसी आदमी ठहरा, चिट्ठी पत्री लिखनेकी ज्यादा आदत नहीं, और अच्छी तरह लिखना भी नहीं जानता। यह भार बल्कि और किसीपर छोड़ जाइए।

सुनकर आप सन्न होकर मुँहकी तरफ देखने लगीं। उसके बाद गाड़ीपर जा बैठीं, दुबारा अनुरोध नहीं किया। शायद आपने सोचा होगा कि अशोभन

जिसे ऐसे समयमें भी एक भाव अच्छी बात मुँहपर नहीं आने देता, उससे आगे और कहा भी क्या जा सकता है।

मैं ऐसा ही हूँ। फिर भी आशा थी कि अगर कभी मिलना ही हो तो ऐसा कुछ मिले जो रागी-सुखोंकी नजरसे अधिक हो और वह मिलना अनायास ही मेरे समस्त अपराधोंकी क्षमा माँग ले।

मनमें सोचा करता कि मनुष्यके लिए क्या अनहोना कुछ भी है? अनहोना सुख क्या संसारमें होता ही नहीं?

भाई साहबके इस रुखसे क्या बराबर आँखें मींचे ही रहेंगे, आँख खोलकर कभी देखते ही नहीं? अपमान जो परिचित हो गया वही चिरस्थायी बना रहेगा, उसे मिटाने-मिटानेकी शक्ति क्या कहीं भी नहीं है?

देखा गया कि नहीं है,—वह शक्ति कहीं भी नहीं है। न तो भगवान् ही किये, न उसका भक्त ही उसका भक्त हुआ। निर्धूम निष्कम्प दीप-शिखा आज भी ज्योंकी त्यों ऊर्ध्वमुखी होकर जल रही है, क्योंकि कहीं भी रंचमात्र नष्ट नहीं हुई है।

यह प्रसंग क्यों छेड़ा, सो बतलाता हूँ। तीन दिन हुए भाई साहब घर वापस आ गये हैं। सवेरे जब वे गाड़ीसे उतरे तो उनके पीछे-पीछे उतरा बासू। उसके पाँव नंगे थे और कमरेमें उत्तरीय[1] पड़ा था। गाड़ी वापस चली गई, और कोई नहीं उतरा। सवेरेकी धूप छतपर लगी थी, आँखोंके आगे सारी दुनिया अन्धकारमय हो उठी,—ठीक अमावस्याकी रातकी तरह। शायद दो ही मिनट बीते होंगे, उसके बाद सब चमकने लगा, फिर सब स्पष्ट हो आया। ऐसा भी हुआ करता है इसके पहले मैं नहीं जानता था।

नीचे उतर आया। भाई साहबने कहा—तेरी भाभी कल सवेरे मर गईं दिनू। हाथमें रुपये-पैसे ज्यादा नहीं हैं, उसके लिए मामूली-सा श्राद्धका आयोजन कर दे। माँ कहाँ हैं?

मैंने कहा—ढाका गई हैं, अपनी भतीजीके घर।

'ढाका?'—जरा चुप रहकर बोले—क्या जानें, शायद आ न सकेंगी, पर मातृदाय जानकर बासू उन्हें चिट्ठी जरूर लिख दे।

---

१ उत्तरीय — माता या पिताकी मृत्यु होनेपर, अशौच दूर होनेतक, जनेऊकी भाँति डाला जानेवाला कपड़ेका एक टुकड़ा।

मैंने कहा—मिलेगा क्यों नहीं!

बासू थोड़ा आया और मेरी गरदनसे लिपटकर उसने अपना मुँह छिपा लिया। उसके बाद रो उठा। जैसे हम दोनोंको कोई भाषा नहीं, वैसे ही चिट्ठीमें प्रकट करनेकी भी भाषा नहीं! शिकारका जानवर मरनेके पहले अपनी अन्तिम नालिश जिस भाषामें छोड़ जाता है बहुत-कुछ वैसा समझो। उसे गोदमें उठाकर भाग आया सीधा अपने कमरेमें। वह वैसा ही रोता रहा मेरी छातीमें मुँह छिपाकर। मैंने मन-ही-मन कहा—ओ रे बासू, नुकसानकी दृष्टिसे तैंने ही कुछ ज्यादा खोया हो सो बात नहीं, और भी एक आदमीकी क्षतिकी मात्रा तुझसे कहीं अधिक बढ़ गई है। और फिर तुझे समझानेवाला तो कोई है, पर उसके कोई भी नहीं है। सिर्फ एक भाषा है—सान्त्वना अगर समझ सके।

इस तरह बहुत देर बीत गई। अन्तमें उसकी आँखें पोंछते हुए मैंने कहा—तू डरे मत रे, माँ न रहीं, बाप न रहें पर मैं तो हूँ। काम तो उनका न चुका सकूँगा, पर उसे अस्वीकार कभी नहीं करूँगा। आज सबसे बढ़कर लाभ और सबसे बढ़कर नुकसानके दिन यही रही तेरे काकाकी शपथ।

किन्तु इस विषयको लेकर अब बातें न बढ़ाऊँगा। बातोंमें है ही क्या। बचपनमें पिताजी कहा करते थे मुझे गँवार, माँ कहती थीं जंगली। भाई साहब भी कितनी ही बार गुस्सा हुए हैं—अनादर और अवहेलनासे कितने ही दिन जब मन घर पर विरक्त हो उठा है, तब भाभी ही आई हैं मेरे पास और उन्होंने कहा है—बबुआजी, क्या चाहिए तुम्हें बताओ तो! गुस्सेमें मैंने जवाब दिया है—कुछ नहीं चाहिए भाभी, मैं चला जाऊँगा यहाँसे।

'कब?'

'आज ही।'

सुनकर हँसके कहतीं—हुकम नहीं है जानेका। जाओ तो देखूँ मेरे हुकमके खिलाफ।

फिर नहीं जा सका। पर यह जानेका दिन जब सचमुच ही आ गया तो वे ही चली गईं। सोचता हूँ सिर्फ मेरे ही लिए था हुकम, उनको हुकम देनेवाला कोई नहीं था दुनियामें!

भाई साहबने पूछा—कैसे मरीं वे? बोले—कलकत्तेमें ही तबीयत खराब हो गई थी—शायद भीतर-ही-भीतर बहुत सोचा करती थी—फिर ले गया

पहाड़ोंकी तरफ। पर कहीं भी सुविधा नहीं हुई। अन्तमें हरिद्वारमें बुखार आ गया, लेकर चम्पा आया काशी। वहीं देहान्त हो गया। बस।

पूछा—इलाज हुआ था भाई-साहब?

बोले—यथासम्भव हुआ ही था।

पर वह 'यथा' कितना-सा था, सो भाई साहबके सिवा और कोई नहीं जानता।

इच्छा हुई कि कहूँ मुझे इतनी बड़ी सजा क्यों दी? क्या किया था मैंने? पर उनके मुँहकी तरफ देखकर इस प्रश्नको जबानपर न ला सका।

पूछा—वे किसीसे कुछ कह नहीं गईं भाई साहब?

बोले—हाँ। मरनेके आठ-दस घण्टे पहलेतक होश था। पूछा कि सती, माँसे कुछ कहना है?

बोली—नहीं।

'मुझसे?'

'नहीं।'

'विजूसे?'

'हाँ। उससे मेरा आशीर्वाद कह देना। कहना, सब रहा।'

मैं भागकर भाभीके सूने घरमें आ गया। फोटो उतरवानेमें उन्हें बड़ी शरम लगती थी। सिर्फ एक तसवीर उनकी आलमारीमें छिपी हुई रखी थी। मेरी ही उतारी हुई थी वह। उसके सामने खड़ा होकर बोला—धन्य हो गया मैं भाभी समझ गया आज तुम्हारा हुकम। इतनी जल्दी चली जाओगी, यह मैंने नहीं सोचा था। मगर, कहीं भी अगर हो तुम तो देखोगी कि तुम्हारे आदेशकी मैंने उपेक्षा नहीं की। सिर्फ इतनी शक्ति दो कि तुम्हारे शोकमें किसीके सामने आँसू न गिरें। पर आज यहींतक रहने दो उनकी बात।

अब रह गया मैं। जाते वक्त आपने अनुरोध किया था ब्याह करनेके लिए। कारण, इतना भार अकेला मैं नहीं ढो सकता—संगी-साथीकी जरूरत है। वह संगी होगी मैत्रेयी—यही आपके मनमें था। मैंने आपत्ति नहीं की, सोचा कि संसारमें पन्द्रह आना आनन्द ही जब मिट चुका, तब बाकी एक आनेके लिए खींचातानी न करूँगा। किन्तु वह भी आज नहीं होता दीखता—भाभीकी मृत्युने ला दी अलंघनीय बाधा। बाधा किस बातकी? मैत्रेयीके भार

ढो ले सकती है, पर यह बोझ नहीं ढो सकती। यह बात मालूम कर ली है। पर मेरे लिए अबकी बार यह बोझ ही हो गया है भारी। फिर भी कहूँगा कि विपत्तिके दिनोंमें उसने हम लोगोंके लिए बहुत किया है उसके लिए मैं उसका कृतज्ञ हूँ। समय अगर कभी आया तो उसका ऋण भूलूँगा नहीं।

एक बहुत रात बीते बासु रो उठा। उसे किसी तरह सुला-सुलाकर मैं चला गया भाई साहबके कमरेमें। देखा कि वे जागकर किताब पढ़ रहे हैं। मैंने पूछा—कौन-सी किताब है भाई साहब? भाई साहबने किताब बन्द करके हँसते हुए कहा—क्या करने आया तू बता? उनकी तरफ देखकर, जो कुछ कहने गया था सो न कह सका। सोचा, सोते-सोते बासु रो उठा है, उसमें विप्रदासका क्या है? दूसरी बात मनमें उठ आई, बोला—श्राद्धके बाद आप कहाँ रहेंगे भाई साहब? कलकत्ते?

उन्होंने कहा—तीर्थयात्रा करने जाऊँगा।

'लौटेंगे कबतक?'

भाई साहब जरा हँसके बोले—लौटूँगा नहीं।

स्तब्ध होकर उनके मुँहकी ओर ताकता देखता रहा। सन्देह न रहा कि उनका संकल्प टल नहीं सकता। भाई साहबने गृहस्थाश्रम छोड़ दिया।

परन्तु, अनुनय विनय रोना-धोना आखिर किसके आगे? इस निष्ठुर संन्यासीके आगे? इससे बढ़कर और अपमान क्या हो सकता है?

मैंने कहा—लेकिन बासु?

भाई साहबने कहा—हिमालयके पास एक आश्रमका पता जमा किया है, वहाँवाले छोटे बच्चोंका भार उठा लेते हैं। शिक्षा भी वे ही देते हैं।

'इन लोगोंके हाथ सौंप देंगे उसे? और मैंने उसे पाल-पोसकर बड़ा किया है जो?'

उसके बाद मैं दोनों हाथोंसे कान दबाकर भाग आया वहाँसे। उन्होंने क्या जवाब दिया, मैंने नहीं सुना।

बासुके पास बैठकर सारी रात सोचता रहा हूँ। कहाँ इसका किनारा है, किसी भी तरह पता नहीं पा सका। याद उठ आई आपकी। आप कह गई थीं कि मनुष्यकी जब सचमुच ही जरूरत होगी तब भगवान् अपने आप ही पहुँचा देंगे उसे दरवाजेके सामने। कहा था आपने कि इस बातपर विश्वास रखना।

कौन वस्तु है, कब वह आयेगा मालूम नहीं, फिर भी विश्वास किये हुए बैठा हूँ कि मेरे इस अत्यन्त प्रयोजनके समय एक दिन वह आयेगा ही।

—विश्वास।"

पढ़ना खतम होनेपर देखा गया कि राय साहबकी आँखोंसे आँसू बह रहे हैं। रूमाल निकालकर उन्हें पोंछने लगे, बोले—"आज ही जाना बेटी, मैं बाधा नहीं दूँगा। दरबान और तुम्हारा वह बूढ़ा हिमू भी साथ जायगा।"

वन्दनाने झुककर पिताके पाँव छुए और सिरसे हाथ लगाती हुई बोली—"जानेकी तैयारी करूँ बापूजी, जाती हूँ।"

× × ×

२६

मैनेजर विराजदास मोटर लेकर स्टेशनपर उपस्थित थे। उन्होंने वन्दनाको सम्मानके साथ ट्रेनसे उतारकर गाड़ीमें बिठाया।

वन्दनाने पूछा—"माँ अभीतक घर नहीं आईं दत्तजी?"

"नहीं दीदी।"

"मैत्रेयी?"

"नहीं, उन्हें तो कोई लाने नहीं गया।"

"बासू अच्छी तरह है?"

"हाँ।"

"मुखर्जी साहब? द्विजू बाबू?"

"बड़े बाबू अच्छी तरह हैं, पर छोटे बाबू देखनेमें वैसे अच्छे नहीं मालूम होते।"

वन्दनाने पूछा—"बुखार-उखार तो नहीं आया?"

दत्तजीने कहा—"ठीक मालूम नहीं दीदी, पर काम-काज तो सब कर रहे हैं।"

वन्दना कुछ देर चुप रहकर बोली—"दत्तजी, मुझे ऐसा लगता है कि माँ शायद इस दुःखके बीच अब न आयेंगी। पर दुःख चाहे जितना भी क्यों न हो, श्राद्धका आयोजन तो करना ही पड़ेगा। कुछ हो रहा है क्या?"

"हो क्यों नहीं रहा है दीदी। बूढ़े बाबूके श्राद्धके लिए जैसा कुछ च

लगभग वैसा ही इन्तजाम हो रहा है।"

बात अच्छी तरह समझ न सकनेके कारण बन्दनाने विस्मयके साथ पूछा—"किसके जैसा कहा आपने, मुखर्जी साहबके पिताके श्राद्धके समान? उतनी बड़ी तैयारियाँ हो रही हैं?"

दत्तजीने कहा—"हाँ, लगभग वैसी ही। जाकर देख लीजियेगा। बड़े बाबूने छोटेको बुलाकर कहा—द्विजू, पागलपन मत कर, सब चीजोंकी एक मात्रा होती है। छोटे बाबूने जवाबमें कहा—मात्रा होती है यह जानता हूँ, पर मात्राज्ञान तो सबका एक-सा नहीं होता भाई साहब। बड़े बाबूने हँसके कहा—पर तू तो सभीकी मात्राको लाँघे जा रहा है द्विजू। छोटे बाबू ने कहा—तो आप लोगोंसे मेरी यही विनती है कि एक बारके लिए मुझे क्षमा कर दीजिए। मैं मात्रा लंघन कर सकूँगा, पर माँजीकी मर्यादाका लंघन नहीं कर सकूँगा। इसके बाद फिर कोई कुछ नहीं बोला। अब आप अगर कुछ कर सकें तो करें। खर्च बीस पचीस हजारसे कम न बैठेगा।"

"सब क्या सब छोटे बाबूका हो रहा है?"

"हाँ, वे ही कर रहे हैं।"

बन्दनाने पूछा—"इतना खर्च उनके लिए बहुत ज्यादा मालूम होता है दत्तजी?"

"बहुत ज्यादा न होनेपर भी—इसमें खर्च भी तो बहुत लगा है दीदी। अब सँभलकर चलनेकी जरूरत है। और फिर इसके ऊपर नई आफत आनेमें क्या देर लगती है?"

"अब और नई आफत कैसी?"

दत्तजी क्षण-भर चुप रहकर बोले—"आपने क्या सुना नहीं कि [illegible] साहबके साथ मुकदमा चल रहा है? इन सब बातोंका नतीजा तो आप जानती ही हैं, फलाफल इसका कोई नहीं बता सकता।"

"तो मना क्यों नहीं किया?"

"मना? वे तो बड़े बाबू नहीं हैं दीदी, जो मनाही मान लेंगे। इनको मना करनेवाली सिर्फ एक ही थीं, जो स्वर्गमें चली गईं।"—इतना कहकर दत्तजीने एक गहरी साँस ले ली और चुप रह गये।

बन्दनाने फिर कोई प्रश्न नहीं किया। मकानके पास आकर देखा कि

सामनेवाले मैदानमें एक तरफ लकड़ियाँ काट-काटकर उनका बड़ा भारी ढेर लगा दिया गया है। जो झोपड़ियाँ दयामयीके व्रत और अनुष्ठानके अवसरपर बनवाई गई थीं उनकी मरम्मत हो रही है। बाहरवाले आँगनमें विशाल मण्डप बनाया जा रहा है बहुतसे लोग कामपर लगे हुए हैं। वन्दना इस बातको समझ गई कि विप्रदासने अत्युक्ति कुछ भी नहीं की।

गाड़ीसे उतरते ही वह सीधी ऊपर चली गई। पहले द्विजदासके कमरेमें पहुँची। एक मोटे तकियेके सहारे वह बिस्तरपर पड़े हुए थे। परदा हटाये जानेकी आवाजसे आँख खोलके उठ बैठे और बोले—"सचमुच अपने आप ही चला आया मेरे दरवाजेपर!"

वन्दनाने कहा—"हाँ आया ही तो। पर इस वक्त पड़े कैसे हो?"

द्विजदासने कहा—"आँखें मींचकर तुम्हारा ही ध्यान कर रहा था, और मन-ही-मन कह रहा था, वन्दना मेरे दुःखकी सीमा नहीं है। देहमें बल नहीं, मनमें भरोसा नहीं, शायद अब खेवेसे न बनेगा, नाव बीच धारमें ही डूबेगी। उस पार पहुँचना अब न हो सकेगा।"

वन्दनाने कहा—"पहुँचना ही होगा। तुम्हें छुट्टी देकर अब नाव चलानेका भार लूँगी मैं खुद।"

"सो ले लो। पर नाराज होकर अब चली मत जाना।"

वन्दनाने उनके पास आकर धोक देके प्रणाम किया, उनके पाँवकी धूल माथेसे लगाकर उठके खड़ी हुई तो देखा कि दोनों आँखोंसे आँसू बह रहे हैं। इस तरह प्रणाम करना उसका यह पहले पहल था। उसने कहा—"तुम्हारी आँखोंमें भी आँसू आते हैं, यह मैं पहले नहीं जानती थी।"

द्विजदासने कहा—"मैं भी नहीं जानता था। शायद उनके आनेका रास्ता अबतक बन्द था। पहले-पहल खुला उस दिन जिस दिन तुम [illegible] कर उनपर इस घर-गृहस्थीका भार देनेके लिए कहकर चली गईं। आड़में छिपकर आँख पोंछ डाली और मन-ही-मन कहा—इतनी बड़ी मार्मिक चोट जो आसानीसे हँसते खेलते पहुँचा सकती है उससे आगे कभी भीख न माँगूँगा। पर वह प्रतिज्ञा मेरी न निभ सकी। भाभी चली गईं सच, भार भाइने स्वीकार किया सम्पत्ति-त्यागका संकल्प, एक मिनटके भूकम्पमें मानो सब कुछ धूलमें मिल गया। यह भी सह सका था, पर जब यह सुना कि घर छोड़कर माँ चली

क्या चीज है यह,—पर रुपये-पैसेका बोझ अनायास ही फेंक-फाँककर चल दूँगा।"

अन्नदाने वन्दनाके दोनों हाथ थामकर कहा—"रुकोगी नहीं दीदी, विपिन की राय बदलवा नहीं सकोगी? बाबूको घर नहीं रख सकोगी?"

"रख सकूँगी अनु-दीदी।"

"और यह जो कल्याणीसे मामला चल रहा है जमाई-बाबूके साथ—रुकवा नहीं सकोगी इसे?"

"हाँ, उसे भी रुकवा सकूँगी अनुदीदी!"—क्षणभर स्तब्ध रहकर फिर कहने लगी—"ये भी मेरे अबाध्य न होंगे, इसी भरोसेपर मैं इस घरकी छोटी-बहू बननेको राजी हुई हूँ अनु-दीदी।"

बातको अच्छी तरह न समझ सकनेसे अन्नदा चुपचाप उसके मुँहकी ओर देखती रही। वन्दनाने कहा—'जो गया सो तो आ चुका। ऊपरसे क्या माँको भी खोना पड़ेगा? मुकदमा बगैर उठाये उन्हें वापस कैसे लाया जा सकता है?"

द्विजदासने तकियेके नीचेसे चाबियोंका गुच्छा निकालकर वन्दनाके पैरोंके पास फेंक दिया और कहा—"यह लो। अबाध्य न होऊँगा कभी—आज यही सब मंजूर करता हूँ तुम्हारी।"

वन्दनाने चाबियोंका गुच्छा उठाकर आँचलसे बाँध लिया।

अब अन्नदाको सारा तात्पर्य समझमें आ गया। वन्दनाको छातीसे लगाकर देरतक वह स्थिर खड़ी रही, उसकी आँखोंसे सिर्फ बड़ी-बड़ी बूँदें टपकने लगीं।

× × ×

वन्दनाने विप्रदासके कमरेमें आकर उन्हें प्रणाम किया। बोली—"भाई साहब आ गई मैं।"

यह नया सम्बोधन विप्रदासके कानोंको कुछ अटपटा-सा लगा। पर इस बारेमें कुछ न कहकर उन्होंने पूछा—"सुन लिया था तुम आ रही हो, तुम्हारे पिताजीका तार मिला था। रास्तेमें तकलीफ तो नहीं हुई?"

"नहीं।"

"साथ कौन आया है?"

"हमारे यहाँका दरबान और बूढ़ा नौकर दिनू।"

"बापूजी तुम्हारे अच्छी तरह हैं?"

"हाँ।"

विप्रदास ज़रा-सा चुप रहकर बोले—"द्विजू कैसा पागलपन कर रहा है, देखा?"

वन्दनाने कहा—"आप आदरके विषयमें कह रहे हैं? पर यह पागलपन क्यों है? आयोजन तो इतना ही बड़ा होना चाहिए था। नहीं तो उनकी मर्यादाको धक्का पहुँचेगा।"

"पर यह सँभाल कैसे सकेगा वन्दना?"

"वे नहीं, तो मैं तो सँभाल सकूँगी भाई साहब?"

विप्रदासने हँसते हुए कहा—"शक्ति तुममें है, मैं मानता हूँ, पर मिजाज बिगड़ जानेसे तो मुश्किल होगी। अचानक नाराज होकर चली न गईं तो समझूँगा कि हाँ बच गया।"

वन्दनाने कहा—"उस दिन आई थी पराई-सी, सिरपर कोई भार नहीं था। पर आज आई हूँ घरकी छोटी-बहू होकर। गुस्सा दिलानेसे गुस्सा हो भी सकती हूँ, पर अब चली कैसे जा सकती हूँ? वह रास्ता तो बन्द हो चुका है।"—इतना कहकर उसने चाबियोंका गुच्छा दिखाते हुए कहा—"यह देखिए, इस घरकी सब आलमारियों और सन्दूकोंकी चाबियाँ ये रहीं। अपने-आप उठाकर इन्हें मैंने आँचलसे बाँध लिया है।"

आनन्द और आश्चर्यसे विप्रदास चुपचाप देखते रह गये। वन्दना कहने लगी—"आपसे छलभरी बात कहनेकी—छिपा-छिपाके कहनेकी कोई बात नहीं मेरी। भगवान्‌के सामने जैसे आदमीकी छिपाने योग्य कोई बात नहीं होती ठीक वैसे ही। याद है आपको अपने आशीर्वादकी? जाते समय मुझसे कहा था आपने कि तुम्हारा जो यथार्थमें अपना है उसीको तुम पाओगी एक रोज़। उस दिनसे मेरी चंचलता जाती रही है, शान्त मनसे सिर्फ यही बात सोचती हूँ कि जो जितेन्द्रिय हैं, जो आजन्म शुद्ध-सत्यवादी और साधु हैं उनके आशीर्वादसे अब मुझे कोई डर नहीं रह गया। जो मेरे पति हैं उन्हें मैं पाऊँगी ही।"—कहते-कहते उसकी आँखें आँसुओंसे भर आईं।

विप्रदासने पास आकर उसके माथेपर हाथ रखकर मौन-आशीर्वाद दिया, और आज यह पहला दिन है, कि वन्दना उनके पाँवोंपर बहुत देरतक मस्तक रखकर प्रणाम करती रही। उसके उठकर खड़े होनेपर विप्रदासने कहा—"आज

जिसे तुमने पाया है बन्दना, उससे बढ़कर दुर्लभ धन और कुछ नहीं। यह बात मेरी हमेशा याद रखना।"

बन्दनाने कहा—"याद रखूँगी भाईसाहब, एक दिनके लिए भी न भूलूँगी।"

फिर जरा ठहरकर कहा—"एक दिन बीमारीमें आपकी सेवा की थी, आपने पुरस्कार देना चाहा था। पर उस दिन मैंने नहीं लिया था,—याद है वह बात?"

"है।"

"आज वही पुरस्कार लेना चाहती हूँ। बासुको मैंने ले लिया।"

विप्रदासने मुसकराते हुए कहा—"ले लो।"

"उसे सिखाऊँगी 'माँ' कहके पुकारना।"

"ऐसा ही करना। उसकी माँ और उसके बाप—दोनोंको ही आज सौंपे जाता हूँ तुम्हारे अन्दर। और सौंपे जाता हूँ इस मुखर्जी-घरानेकी महती मर्यादा तुम्हारे हाथमें।"

बन्दनाने क्षण भर सिर झुकाये चुपचाप मानो यह भार ग्रहण कर लिया। उसके बाद वह बोली—"और एक याचना है। अपनेको पहचान न सकनेके कारण एक दिन आपके आगे मैंने अपराध किया था। आज वह भूल जाती रही, आज उसके लिए क्षमा चाहती हूँ।"

"क्षमा बहुत दिन पहले ही कर चुका बन्दना। मैं जानता था, तुम्हारी अन्तरात्माने जिसे एकाग्र मनसे चाहा है उसे तुम एक-न-एक दिन पहचानोगी ही। इसीसे, मेरे पास तुम्हें कोई शरम नहीं।"

बन्दनाकी आँखोंमें फिर आँसू भर आये, बरबस उन्हें रोकती हुई बोली—"और भी एक भिक्षा है। हम लोगोंके घर-संसारमें क्या एक दिन भी न रहेंगे आप? अभिमान और संकोचके वश किसी भी दिन मन भरकर आपकी सेवा नहीं कर पाई हूँ, पर वह बाधा तो अब जाती रही अब तो मुझे संकोच नहीं रहा—रहिए न कुछ दिन हमारे पास? दो-चार दिन पूजा कर लूँ।"—कहकर वह छलछलाती हुई आँखोंसे उनकी ओर देखती रही, उसका व्याकुल कण्ठस्वर मानो अन्तःकरणको भेदकर बाहर निकला हो।

विप्रदास मुसकराते हुए चुप रहे।

बन्दनाने कहा—"इस मुसकराहट-भरी मौनको ही मैं सबसे ज्यादा डरती हूँ भाई साहब। कैसा कठोर है आपका मन, इसे न तो गलाया जा सकता है

और न छिपाया ही जा सकता है। देंगे नहीं जवाब ?"

विप्रदास अबकी बार हँस पड़े। उनकी हँसी जितनी स्निग्ध थी उतनी ही सुन्दर और निर्मल। उन्हें इस तरह हँसते हुए वन्दनाने आज पहले ही पहल देखा। बोली—"जवाब पा गई, अब आपको मैं परेशान न करूँगी। पर मनको शान्त कैसे करूँ, सो बता दीजिए। वह तो भीतरसे बार-बार रो उठता है।"

विप्रदासने कहा—"मन आप ही शान्त हो जायगा वन्दना, जिस दिन तुम निःसंशय होकर यह समझ जाओगी कि तुम्हारे 'भाई साहब' दुःखके गड्ढेमें कूद पड़नेके लिए घर नहीं छोड़ रहे हैं। उससे पहले नहीं।"

"पर इसे मैं समझूँगी किस तरह ?"

"सिर्फ मुझपर विश्वास करके। जानती हो बहन, मैं झूठ नहीं बोलता।"

वन्दना चुप रही। फिर दो-एक मिनट बाद एक गहरी साँस लेकर बोली—"वही होगा। आजसे ही जानसे समझाऊँगी अपनेको, भाई साहब सच कह गये हैं, सत्यवादी हैं वे, झूठी बातोंमें बहला नहीं गये मुझे। जहाँ मनुष्यका परम श्रेय है, उसी खोजके लिए उन्होंने यात्रा की है।"

विप्रदासने कहा—"हाँ। अपने मनको समझाकर कहना कि जो सबसे बढ़कर सुन्दर है, सबसे बढ़कर सत्य है, सबसे बढ़कर मधुर है, 'भाई साहब' उसी मार्गकी खोजमें निकले हैं। उन्हें बाधा नहीं देनी चाहिए, उन्हें भ्रान्त नहीं कहना चाहिए, उनके लिए शोक करना अपराध है।"

वन्दनाकी आँखोंमें फिर आँसू उमड़ आये जल्दी उन्हें पोंछकर बोली—"ऐसा ही होगा। ऐसा ही होगा। इस जीवनमें अगर फिर कभी भेंट न हुई, तो भी कहूँगी—वे भ्रान्त नहीं हुए, उनके लिए शोक करना अपराध है।"

परदेकी संधिसे मुँह निकालकर दयामयीने कहा—"दीदी, एक जरूरी बात कहनी है, एक बार बाहर आना होगा।"

"आती हूँ द्विजू बाबू। भाई साहब, जाती हूँ अब।"—इतना कहकर वन्दना बाहर चली गई।

सतीका श्राद्ध समारोहके साथ समाप्त हो गया। निमन्त्रित दीन-दुःखी सब सती-साध्वीका यशगान करते वापस चले गये। सभीने कहा—पुण्यवती-मरनेका प्रारब्ध ऐसा ही हुआ करता है। उसमें छोटा-बड़ा नहीं होता।

सवेरे नहा-धोकर वन्दना जब विप्रदासके कमरेमें उन्हें प्रणाम करने पहुँची

रखना जानते हैं। जबतक शत्रु पूरी तरह परास्त नहीं हो जाता तबतक वे किसी तरह घर-कलहमें प्रवृत्त नहीं होते। यही उनका सबसे बड़ा बल है। लेकिन हम लोगोंमें! जयचन्द पृथ्वीराजको लेकर सिराजुद्दौला, मीरजाफरतक भी यह अस्थि-मज्जागत अभिशाप बना ही रहा—इससे छुटकारा नहीं मिला। इस [illegible]में धर्मी-बौद्धोंने क्रुद्ध होकर अपने धर्म-देवताका यश गाते हुए, 'धर्म-गाह' (एक धार्मिक पुस्तक) में लिखा—

"धर्म्म हइला यवनरूपी
माथाय दिला कालो टूपी
धर्मेर शत्रु करिते विनाश।"

[अर्थात् धर्मके शत्रुओंका विनाश करनेके लिए धर्मने यवन-रूप धारण किया और मत्थेपर काली टोपी लगाई।]

अर्थात् विरोधी इस्लामपर मुसलमान जो हिन्दू धर्मावलम्बी पड़ोसी बंगालियोंको दुःख देने लगा, इसीसे उन्हें परम आनन्द हुआ। अभी कलकी ही बात है—अपने लोगोंसे झगड़ते-झगड़ते ही इतने बड़े विराट् पुरुष चित्तरंजन दासकी सारी उम्र बीत गई। और आज भी क्या वह बन्द है! वह तो कुरुक्षेत्र है। इसके भीतर भी पद पानेके लिए दल-दल पड़ेंगे। किसीका किसीसे मेल नहीं है—इसके कितने ही प्रकारके मतभेद हैं, कितने प्रकारके मान अभिमानोंकी अनबन है—कमलके पत्तेमें पानीकी बूँदकी तरह यह अस्थिर है, कब गिरकर कौन अलग हो जायगा। इस तरह बाहरसे इकट्ठा की गई भीड़ करनेका नाम क्या organization (संगठन) है। organic (संघटित या जीवित) देह-वस्तुकी तरह क्या इसने पैरके नाखूनमें सुई चुभानेसे सिरके मस्तक सिहर उठते हैं! किन्तु जिस दिन देखा होगा—पैरकी चोटका दर्द सिरतक पहुँचेगा, उस दिन कमसे कम संगठनमें, उपाय-हीनताकी शिकायत न सुन पड़ेगी।

सोचता हूँ यही तो हम लोगोंका सनातन संस्कार है। शत्रु आकर दरवाजा खटखटा रहा है, तो भी हम-भाइयोंका झगड़ा नहीं मिटा। अपना, इन्हींके ऊपर आज देशकी सारी आशा और अपेक्षा है! कब इसकी मीमांसा होगी, सो जगदीश्वर ही जानें।

पहले जमानेमें दिग्विजयका गौरव प्राप्त करनेके लिए प्रधानतः राजा लोग [illegible] निकलते थे। किन्तु अब समय बदल गया है। अब राजा नहीं हैं,

है राजशक्ति। और वह शक्ति कुछ बड़े-बड़े व्यवसायियों (या पूँजीपतियों) के हाथमें है। या तो अपने हाथसे करते हैं, नहीं तो अपने आदमियोंसे कराते हैं। वणिक्-वृत्ति ही इस समय मुख्यरूपसे राजनीति है। योरपके लिए ही शासन हो रहा है। नहीं तो उसकी ओर विशेष प्रयोजनीयता नहीं है। दस-पन्द्रह साल पहले जो विश्वव्यापी महायुद्ध (योरपका प्रथम महायुद्ध) हो गया है, उसके मूलमें भी यही एक बात थी—यही बाजारों और खरीदारोंके लिए दूकानदारोंकी छीना-झपटी। वास्तवमें इस जगहपर चोट मारनेके समान बड़ा आघात वर्तमान युगमें और नहीं है। नानाविध अपमानसे उत्तेजित या पागल होकर कांग्रेसने ब्रिटिश मालके बायकाटका संकल्प ग्रहण किया है। उन लोगोंका संकल्प पूरा हो। बंगालके युवकवृन्द, इस तपमें तुम लोग जी-जानसे सहायता करो। किन्तु अन्धेकी तरह नहीं, महात्माजीके हुक्म करनेसे भी नहीं, कांग्रेस तमाम स्वरसे उसकी प्रतिध्वनि करती घूमे—सो भी नहीं। भारतकी बीस लाख रुपयेकी खादी से अस्सी करोड़ रुपयोंकी कमी पूरी नहीं की जा सकती। लाखों चरखोंसे लंकाशायरकी मशीनको भी हराया नहीं जा सकता और अगर ऐसा हो भी जाय तो उससे मनुष्यके कल्याणका मार्ग प्रशस्त नहीं होता। विशेष कर, इस समय यह अर्थ-नीतिका विवाद नहीं है, राजनीतिका विवाद है—यह बात किसी तरह नहीं भूलनी चाहिए। सुतराम् जापानी सूतसे देशके करघेमें बुने हुए कपड़ेसे हो या देशके कल-कारखाने तैयार कपड़ोंसे हो अथवा जापानी लोगोंके व्यवहारसे ही हो, इस व्रतको पूरा करना ही चाहिए। बंगालमें तो यह नया व्यापार नहीं है। उस दिन (बंगभंगके आन्दोलनके समय) बंगालके मनीषी नेताओंने जो मार्ग दिखलाया था, उसी मार्गसे चलकर यह संकल्प सार्थक होगा। British cloth (विलायती कपड़ा) की जगह foreign cloth (विदेशी वस्त्र) लिख देकर अर्थनीतिकी पताका दिखाई जा सकती है, किन्तु असहयोगकी ओटमें आत्मवंचना करनेसे केवल बंधनोंका बोझा ही ढेर होगा, और कुछ न होगा। आगामी ३१ दिसम्बरका इन्द्रजाल उस दशाकी तरह ही आँखोंमें धूल झोंककर मजेमें बिना विघ्न-बाधाके निकल जायगा।

बंगालके देहातमें मेरा घर है। बंगालको मैं नहीं जानता, यह अपवाद शायद मेरा बड़ेसे बड़ा शत्रु भी मुझे नहीं देगा। मैंने घर घर जाकर देखा है, पर यदि प्यार नहीं पाया कहीं। हा-प्यार स्वदेशभक्त युवक इसका निर्णय चाहे जैसे ही

कर लें, लेकिन औरतोंका काम तो चलता ही नहीं। अन्य प्रदेशोंकी बात मैं जानता, लेकिन इस देशकी स्त्रियोंको दिनके अन्तमें कई बर्तनोंकी जरूरत होती इस प्रदेशकी सामाजिक रीति और इस देशका आदिम अभ्यागत संस्कार ही यह समाजमें जाके होकर सहरकी महिमामें गाथा फाड़नेपर भी वह चीत्कार किसी तरह भी देहातके एकान्त अन्तःपुरमें नहीं पहुँचेगा। सम्पन्न अवसर, पीछे गृहस्थकी ही बात नहीं करता, गरीब दोशिहर-मजदूरोंकी बात भी मैं है—यह मेरी बात सत्य है और इसे स्वीकार करना ही अच्छा है। किसी एक खास स्व-हितीसनमें दो-एक मत पत्रोंका कथा सत तैयार, नजीर शामिल करके इसका जवाब नहीं दिया जायगा। वह तो हुआ विवरण। पत्तोंकी भी यही दशा है। उधर हमारे किसान-मजदूरोंके करीब औरतोंको सवेरेसे पाससक मेहनत करनी पड़ती है। उसीमें बीच-बीच एक घण्टेका समय अगर वे पा जाती हैं तो महाराजजीके आदेशको अक्षरशः— लम्बा हाथमें उनके जमा देनेपर भी वे सो जाती हैं। मैं उनको दोष नहीं रखता। जान पड़ता है, उनका प्रयोजन न होनेके कारण ही ऐसा होता है।

इस प्रसंगमें और एक बात कहना मैं अच्छी समझता हूँ। इस देशके शिष्ट व्यक्तियोंका मत यह है कि मनुष्यकी जीवन-यात्राकी जरूरतें नित्य ही क्रमशः कम कर आनेकी आवश्यकता है। अभाव मालूम पड़ना ही दुःख है। अतएव दस हाथके बदले पाँच हाथकी धोती और पाँच हाथके बदले पहली कम—और चूँकि विलासिता पाप है, इसी कारण सब प्रकारका पालन (या तकलीफ उठाना) ही मनुष्यत्वके विकासका सबसे उत्तम उपाय है। या पुण्यभूमि त्यागके माहात्म्यसे ही भरपूर है। ऊँचे दर्जेके दर्शनशास्त्रकी क्या है, नहीं जानता; किन्तु सहजबुद्धिसे जान पड़ता है कि यह त्यागका मत किन दिन सर्वसाधारणको मनुष्यके दर्जेसे गिराकर पशुके दर्जेमें खींच लाता है। आकाश क्या करेंगे, अभावका बोध ही उनमें नहीं रहा। छोटी जातियाँ अछूत है—इससे क्या! ऐसा तो भगवान्‌ने उन्हें बना दिया है। एक जूतेसे अधिक उन्हें भय नहीं नसीब होता—यह उनकी तकदीरमें लिखा है। उन्हें इसीमें सन्तुष्ट रहना चाहिए। जो लोग और थोड़ा अधिक मान रखते हैं, वे उदार दृष्टिसे देखकर कहते हैं—यह संसार तो माया है—दो दिनका खेल। इस जन्ममें सन्तुष्ट चित्तसे दुःख सह जानेसे दूसरे जन्ममें भगवान् उनकी ओर कृपा-दृष्टिसे

। एक माल्गके सिवा और किसीके खिलाफ उनकी शिकायत नहीं है।
ा (या दावा करना) वे जानते नहीं माँगते वे डरते हैं। भय नहीं है,
नहीं है, शक्ति नहीं है, अभावपर अभाव निरन्तर जितना ही उन्हें दबाता
है, उतना ही वे उसे सहनेका वरदान माँगते हैं। उससे भी जब पूरा नहीं
, तब आकाशकी ओर देखकर चुपचाप आँखें मूँद लेते हैं।
एक बात पुरातन-पंथियोंके मुखसे प्रायः ही दुःख करके कहते सुनी जाती
; उस पुराने जमानेमें ऐसा नहीं था। अब सेकिंडहैंड कुरता पहनते हैं,
ने जूते डालना चाहते हैं, सिरपर टोपी लगाते हैं उनकी औरतें साबुनसे देह
ी हैं, बाबूगिरीसे देश तबाह हो गया! इसके जवाबमें उनसे तुमको यही बात
ी चाहिए कि अगर यह सच है तो आनन्दकी बात है! देशने तबाह न
र उन्नतिकी ओर मुँह फेरा है और उसीका यह आभास दिखाई दिया है।
जितना चाहता है उतनी ही उसको प्राप्त करनेकी शक्ति बढ़ती है।
त्तर विजय पाना ही जीवनकी सफलता है। उसे स्वीकार करके उसकी
ामी करना ही कायरपन है। एक दिन जो नहीं था, उसे अकारण बाबूगीरी
कर धिक्कार देने फिरना ही देशके कल्याणकी कामना नहीं है।
पिछले दिसम्बरमें कलकत्तेमें बुलाये गये All India youth league
(ल इण्डिया यूथ लीग) के सम्मिलनके सभापति श्रीयुक्त नारीमन साहबके
नसे एक जगहका मैं उल्लेख करना चाहता हूँ। उन्होंने उच्छ्वसित आवेग
साथ बार-बार यह बात कही थी कि बारडोलीमें हमने अँगरेजोंके शासन
को पछाड़ दिया है। ब्रिटिश-सिंह अब लज्जाके मारे सिर ऊँचा नहीं कर पा
है। अतएव Bardolise the whole country (सारे देशको
रडोली बना दो।) बारडोलीके गौरवकी हानि करनेका मेरा इरादा नहीं है।
र यह भी मैं सम्पूर्ण स्वीकार करता हूँ कि वहाँने त्याग भारी और दर्शनीय
। और ठीक ऐसा ही काम अगर मुझको कभी बंगालमें करना पड़ा तो अवश्य
ऐ मगर पश्चिम-भारतके कांग्रेसी नेताओंकी तरह दुनियाभरमें इस तरह ताल
ठोंक-ठोंककर घूमते न फिरो। थोड़ी-सी नम्रता अच्छी होती है। वहाँ बात क्या
थी, संक्षेपमें कहता हूँ। ग्रामवासियोंने कहा—"हुजूर एक रुपयेकी मालगुजारी
। रुपया हो गए है, हम और इसे नहीं दे सकेंगे—मर जायेंगे। हमारा यह
हना सच है कि नहीं, जाँच कर लीजिए।" अभियोग ८

तक और कोई गति नहीं है, हमारी मुक्तिका द्वार बिल्कुल ही बन्द है और इसी लिए सब काम छोड़कर लिखना-पढ़ना लेकर ही जो व्यस्त हैं, वे अच्छे आदमी हैं, इसमें सन्देह नहीं, लेकिन उनके ऊपर मुझे कम ही भरोसा है। अब वक्तव्य समाप्त करता हूँ। मुसल्मान भाइयोंके सम्बन्धमें अलगसे कहके कुछ भी कहनेकी आवश्यकता मैंने नहीं समझी; क्योंकि वे भी देशके इस तरुण-संघके अन्तर्गत हैं। तरुण लोग एक ही तरुण-जातिके हैं—उनका और कोई दूसरा नाम नहीं है।

तुम लोग प्यार करके मुझे इतनी दूर खींच लाये हो, इसके लिए मैं धन्यवाद देता हूँ।

सत्य समझकर मैंने अनेक अप्रिय बातें कही हैं। उनका पुरस्कार रख छोड़ा गया है। इसी कान्फ्रेंस-मण्डपमें दो दिन बाद तिरस्कारकी बाढ़ उमड़ आवेगी। किन्तु उस समय मैं हावड़ाके एकान्त गाँव 'बाजे' में जाकर साहित्यके दरबारमें भिड़ जाऊँगा, वहाँपर तर्जन-गर्जन मेरे कानोंतक नहीं पहुँचेगा—इतनी ही कुशल है।[1]

---

[1] सन् १९२९ में ईस्टरकी छुट्टियोंमें बंगीय प्रादेशिक राष्ट्रीय महासभाके कुछ ही दिन बाद बंगीय मुसल्मिमानोंकी सभाकी समाप्ति-सभामें दी हुई वक्तृता।

कहा—"ना, यह
करेंगे।" रिआया
किया—यह सार्
गवर्नमेन्टमें एक
कुछ-कुछ वैसा ही
छोटे-बड़े कामों के
आई। कामों
यह युद्ध तकतक
प्रश्न सचमुच
थोड़ी-सी Inq
करना— केव
बंगालमें इसे
संघमको ecc
उस repre
अवतीर्ण होर
सेवक संगठ
आत्म-बंधन
यहाँ उपस्थि
मभी मौरि
इतनी बा
मैंने
गया है।
कैम्पमें
शिक्षाक
होता।
(पश्चि
बम्बईं
किन्तु

एक और कोई गति नहीं है, हमारी मुक्तिका द्वार बिलकुल ही बन्द है और इसी लिए सब काम छोड़कर लिखना-पढ़ना लेकर ही वे व्यस्त हैं, वे अच्छे आदमी हैं, इसमें सन्देह नहीं, लेकिन उनके ऊपर मुझे कम ही भरोसा है। अब वक्तव्य समाप्त करता हूँ। मुसलमान भाइयोंके सम्बन्धमें अलहदा करके कुछ भी कहनेकी आवश्यकता मैंने नहीं समझी; क्योंकि वे भी देशके इस तरुण-संघके अन्तर्गत हैं। तरुण लोग एक ही तरुण-जातिके हैं—उनका और कोई दूसरा नाम नहीं है।

तुम लोग प्यार करके मुझे इतनी दूर खींच लाये हो, इसके लिए मैं धन्यवाद देता हूँ।

सत्य समझकर मैंने अनेक अप्रिय बातें कही हैं। उसका पुरस्कार रख छोड़ा गया है। इसी कांग्रेस-मण्डपमें दो दिन बाद तिरस्कारकी बाढ़ उमड़ आयेगी। किन्तु उस मैं हावड़ाके एकान्त गाँव 'बाजू' में आकर शान्तिके दरबारमें भिड़ जाऊँगा, वहाँका तर्जन-गर्जन मेरे कानोंतक नहीं पहुँचेगा—इतनी ही कुशल है।[1]



[1] सन् १९२९ में हैदराबाद (सिंध)में बंगीय प्रादेशिक राष्ट्रीय कांग्रेसके कुछ ही पहले पटेल युव-सम्मिलनीके सभापति-पदसे दी हुई वक्तृता।